x| f'k[kj

ch-,- I

nwjLFk f'k{kk funs'kky;
egf"kZ n;kuUn fo'ofo|ky;
jksgrd&124 001

Copyright © 2002, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT LTD, A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

भाग–क : कहानी

- **बूढ़ी काकी** – *प्रेमचन्द* 3–18
  1. प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय
  2. बूढ़ी काकी का सारांश
  3. बूढ़ी काकीः तात्त्विक विवेचन
  4. बूढ़ी काकी में वृद्ध–समस्या का चित्रण
  5. बूढ़ी काकी कहानी की भाषा–शैली

  व्याख्या
- **आकाशदीप –** *जयशंकर प्रसाद* 19–31
  1. जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय
  2. आकाशदीप कहानी की संवेदना
  3. आकाशदीप की कहानी–कला
  4. आकाशदीप की नारी का त्याग और लोक कल्याण भावना
  5. आकाशदीप कहानी की भाषा–संरचना

  व्याख्या
- **करवा का व्रत** – *यशपाल* 32–43
  1. यशपाल का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
  2. करवा का व्रत कहानी की प्रमुख समस्या
  3. करवा का व्रत का तात्त्विक विवेचन
  4. करवा का व्रत का उद्देश्य
  5. करवा का व्रत का भाषा–पक्ष

  व्याख्या
- **पराया शहर –** *कमलेश्वर* 44–56
  1. कमलेश्वर का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
  2. पराया शहर नमकरण की सार्थकता
  3. पराया शहर में चित्रित संबंधों का बिखराव और आत्मनिर्वासन समस्या
  4. पराया शहर में भाषा का अभिनव प्रयोग
  5. पराया शहर का तात्त्विक विवेचन

  व्याख्या
- **दोपहर का भोजन** – *अमरकांत* 57–68

1. अमरकांत का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
2. दोपहर का भोजन में निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की त्रासदी
3. दोपहर का भोजन कहानी का कथ्य–विवेचन
4. दोपहर का भोजन का तात्त्विक विवेचन
5. दोपहर का भोजन की भाषा–शैली

व्याख्या

भाग–ख : निबन्ध

- **आत्मनिर्भरता** – *बालकृष्ण भट्ट* 71–85

निबन्ध का सार

सप्रसंग व्याख्या

1. बालकृष्ण भट्ट का जीवन और साहित्यिक परिचय
2. आत्मनिर्भरता का कथ्य
3. आत्मनिर्भरता का तात्त्विक विवेचन
4. आत्मनिर्भरता की प्रमुख समस्या
5. आत्मनिर्भरता की भाषा–शैली

- **पीछे मत फेंकिये** – *बाल मुकुन्द गुप्त* 86–102

निबन्ध का सार

सप्रसंग व्याख्या

1. बालमुकुन्द गुप्त का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
2. पीछे मत फेंकिये की मूल संवेदना
3. पीछे मत फेंकिये की निबन्ध–कला
4. पीछे मत फेंकिये में चित्रित राष्ट्रीय चेतना
5. पीछे मत फेंकिये की भाषा और व्यंग्य–शैली

- **श्रद्धा–भक्ति** – *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल* 103–121

निबन्ध का सार

सप्रसंग व्याख्या

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जीवन और साहित्यिक परिचय
2. श्रद्धा–भक्ति का मूल–भाव
3. श्रद्धा–भक्ति की निबंधकला
4. श्रद्धा–भक्ति और प्रेम की चिन्तन दृष्टि

5. श्रद्धा–भक्ति की शैली

- **शिरीष के फूल** – *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी* 122–133

निबन्ध का सार

सप्रसंग व्याख्या

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जीवन और साहित्यिक परिचय
2. शिरीष के फूल की मूल चेतना
3. शिरीष के फूल की निबन्धकला
4. शिरीष के फूल की लालित्य–चेतना
5. शिरीष के फूल की भाषा–शैली

- **निन्दा–रस** – *हरिशंकर परसाई* 134–144

निबन्ध का सार

सप्रसंग व्याख्या

1. हरिशंकर परसाई का जीवन और साहित्यिक परिचय
2. निन्दा–रस का प्रतिपाद्य
3. निन्दा–रस का तात्त्विक विवेचन
4. निन्दा–रस की व्यंग्य–योजना
5. निन्दा'रस की भाषा–शैली

भाग–ग : द्रुत पाठ

- मोहन राकेश 147–154
- मालती जोशी 155–164
- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 165–173
- सरदार पूर्ण सिंह 174–182

बूढ़ी काकी

प्रेमचन्द

प्र०1 मुंशी प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **जीवन–परिचयः** हिन्दी साहित्य की आधुनिक गद्य–विधा के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार एवं उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द जन्मजात प्रतिभासम्पन्न थे। इनका जन्म 31 जुलाई, सन् 1880 ई० को काशी के निकट लमही नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम अजायबराय था। इनका प्रारम्भिक नाम धनपतराय था, लेकिन इनकी रचनाएं प्रारम्भ में नवाबराय के नाम से छपती थीं। अल्पायु में ही प्रारम्भ हुआ संघर्षपूर्ण जीवन का दौर निरन्तर इनका साथी बना रहा। शिक्षा–विभाग के अध्यापन–कार्य करते हुए स्कूल–निरीक्षक पद तक कार्य किया छप्पन वर्ष की आयु में इनका देहान्त 8 अक्टूबर सन् 1936 को हुआ।

साहित्यिक–रचनाएंः नवाब राय के नाम से उर्दू में लिखने वाले मुंशी प्रेमचन्द का साहित्य सफर काफी व्यापक रहा है। सन् 1907 में प्रकाशित इनकी रचना 'सोजे–वतन' को तत्कालीन सरकार द्वारा जब्तकर लिया और उसके बाद मुंशी प्रेमचन्द के नाम से हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं इस प्रकार हैं–

1. ***उपन्यास*** **–** वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, कर्मभूमि, गबन, गोदान एवं मंगलसूत्र।
2. ***कहानी–संग्रह*** **–** 'मानसरोवर' नामक कहानी–संग्रह मुंशी प्रेमचन्द की 224 कहानियां संगृहीत हैं। इसके अलावा अन्य कहानी–संग्रह – सप्त–सरोज, नवनिधि, प्रेत–द्वादशी, प्रेम पूर्णिमा, प्रेमतीर्थ, प्रेम–प्रसून एवं अग्नि–समाधि।
3. ***नाटक*** **–** प्रेम की बेटी, कर्बला, संग्राम आदि।

साहित्यिक विशेषताएंः मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में सामाजिक समस्याओं का ज्वलन्त रूप चित्रित हुआ है। उनका कथा–साहित्य अपने ध्येय की ओर अग्रसर रहा है। साधारण से साधारण पात्र भी अपने मनोभावों को सजीव रूप में प्रस्तुत करते जान पड़ते हैं। समाज समस्याओं को लेकर कहानीकार का स्वर उग्र हो उठा है। यही कारण है कि उनकी कहानियां सामाजिक बुराई से मुक्ति दिलाने की दिशा में प्रयासरत रही हैं। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मुंशी प्रेमचन्द की साहित्यिक विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं–

1. ***समाज–सुधार की भावना*** **–** मुंशी प्रेमचन्द समाज के कमजोर वर्ग की दयनीय जिन्दगी को सुधारना चाहते थे। उनकी अधिकांश कहानियों में समाज के भीतर व्याप्त बुराइयों को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' भी इसी तरह की कहानी है जिससे कहानीकार ने समाज में वृद्धों की प्रति उपेक्षा की भावना को प्रमुखता से उठाया है। उनका विचार था कि मनुष्य की व्यवहारपरक सोच में स्वार्थ की अधिकता नहीं होनी चाहिए, तभी हम समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह से निभा सकते हैं।

2. ***मानवीय करुणा की भावना*** – कहानीकार ने मानव–जीवन से जुड़े उन पहलुओं को अपनी कहानियों में चित्रित किया है, जिनसे पता चलता है कि हम मानव के साथ पशु से भी बुरा व्यवहार कर रहे हैं। 'बूढ़ी काकी' कहानी इस प्रकार की भावना का जीवंत उदाहरण है। वह बुढ़िया जो विश्वास में अपनी सारी जायदाद जिस व्यक्ति के नाम पर कर देती है, वही व्यक्ति स्वार्थ में डूबकर उसे भोजन तक के लिए अपमानित करने में नहीं चूकता। लेकिन उस बुढ़िया से जूठी पत्तलों के टुकड़े उठवाकर मानवीय करूणा का सटीक चित्रण किया है। स्वयं बुढ़िया की अनदेखी करने वाली रूपा का हृदय उसकी दयनीय हालत को देखकर करूणा से भर जाता है।

3. ***गांधीवादी दर्शन का प्रभाव*** – मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य पर गांधीवादी–दर्शन का पूरा प्रभाव रहा है। स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय रहे कहानीकार ने नौकरी तक से त्यागपत्र दे दिया था। कहानीकार ने मनुष्य के भीतर उसकी गलती की अनुभूति कराने तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु उसके विचारों में परिवर्तन लाकर छोड़ता है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में उन्होंने जिन मनोभावों का चित्रण किया है, वे इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। उनका विश्वास है कि जब तक मनुष्य अपनी भूल को नहीं मानेगा, पश्चाताप नहीं करेगा, तब तक सुधारने की बात करना न्यायसंगत नहीं है।

4. ***आत्मबोध एवं आत्मचिंतन की प्रवृति*** – मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में आत्मबोध एवं आत्मचिंतन की प्रवृति प्रमुखता से मिलती है। उनका मानना था कि जब तक मानव स्वयं नहीं समझेगा तब तक उसे सही राह पर ला पाना संभव नहीं है। 'बूढ़ी काकी' कहानी की रूपा के आचरण एवं व्यवहार से इस तर्क की पुष्टि होती है। उसकी आंखें तब खुलती हैं, जब वह अपने अत्याचारों से प्रताड़ित एवं भूखी बुढ़िया को जूठन के टुकड़े उठाकर खाती देखती है। उसका हृदय ईश्वर के भय से कांप उठता है। यही कारण है कि तुरन्त थाल में भोजन सजाकर देती है और क्षमा–याचना करती है।

5. ***यथार्थ और आदर्श का समन्वय*** – मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में समाज के यथार्थ रूप के चित्रण के माध्यम से समाज में आदर्श व्यवहार स्थापित करने का प्रयास किया गया है। वैसे भी वे यथार्थ और आदर्श के मध्य समन्वय स्थापित करने के पक्षधर रहे हैं। यथार्थ के नाम पर नग्नता से उन्हें परहेज था। समझदारी उनकी प्रमुख अस्त्र थी। यही कारण है कि उनके पात्र स्वयं संघर्ष की राह पर चलकर समाज के भीतर आदर्श स्थापित करते दिखायी पड़ते हैं। मानवीय मूल्यों की रक्षा यथार्थ और आदर्श के समन्वय द्वारा ही संभव है।

6. ***कलात्मक भाषा*** – कहानीकार की रचनाओं में लोक–जीवन के अनुभव प्रमुखता से उजागर हुए हैं, जिन्हें उन्होंने सहज कलात्मक ढंग से कहानियों में व्यक्त किया है। उन्होंने जो कुछ कहा, वह सब चित्त पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम रहा है। भाषा की कलात्मकता पाठक को पकड़कर सरोबार करने में सक्षम है। उनकी भाषा में मानवतावादी भावना स्वतः प्रस्फुटित हो जाती है। तत्सम–तद्भव–देशज शब्दों के साथ उर्दू–शब्दों की सहजता और स्वभाविकता जीवंत बन पड़ी है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से कहानीकार की वर्णन–शैली मानव–जगत पर अपनी अमिट छाप छोड़ती जाती है। 'बूढ़ी काकी' कहानी की रोचकता में कलात्मक भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्र०2 बूढ़ी काकी के कथानक पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'बूढ़ी काकी' कहानी का सारांश लिखिए।

उत्तरः आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास सम्राट के नाम से प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचन्द की कहानी बूढ़ी काकी 'मानवीय करूणा' की भावना से ओत–प्रोत कहानी है। इसमें लेखक ने 'बूढ़ी काकी' के माध्यम से समाज परिवार की उस समस्या को उठाया है, जहां वृद्धजनों से उनकी जायदाद–सम्पत्ति लेने के बाद उनकी उपेक्षा होने लगती है। केवल इतना ही नहीं, बात–बात पर उन्हें अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है, भरपेट भोजन तक भी नहीं मिलता। सामाजिक यथार्थ के माध्यम से मुंशी प्रेमचन्द ने मनुष्य की स्वार्थी भावनाओं का घृणित एवं वीभत्स रूप चित्रित किया है।

कहानी का प्रारम्भ करते हुए लेखक ने मानव–जीवन के वृद्धावस्था और बाल्यावस्था को एक दृष्टि से देखा है। इसमें कोई शक भी नहीं है। बूढ़ी काकी में जीभ के स्वाद के अलावा अन्य कोई इच्छा नहीं थी। उसे विधवा हुए पांच वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है। उसके जवान बेटे भी असमय मर चुके थे। इस संसार में ऐसा कोई नहीं था, जिसे बूढ़ी काकी अपना कह सके। था तो केवल उसका दूर का भतीजा बुद्धिराम। भलेमानुष पण्डित बुद्धिराम ने बूढ़ी काकी के सामने लम्बे–चौड़े वायदे कर उसकी सब सम्पत्ति अपने नाम लिखवालीं पैसे का लालची बुद्धिराम बहुत जल्दी ही बदलने लगा। बुद्धिराम की पत्नी रूपा भी व्यवहार से कठोर थी लेकिन ईश्वर से अवश्य उसे डर लगता था। इसलिए वह बूढ़ी काकी से दुर्व्यवहार करते समय डरती थी।

बुद्धिराम और उसकी पत्नी का व्यवहार बूढ़ी काकी के प्रति दिनोंदिन कठोर होता चला गया। यहां तक कि जिस बुढ़िया की जायदाद से सौ–डेढ़ सौ रूपये प्रतिमाह की आमदनी थी, वह भोजन तक के लिए तरसने लगी। बूढ़ी काकी जीभ के स्वाद के आगे विवश होकर रोने–चिल्लाने लगती थी। हाथ–पैरों से लाचार बुढ़िया जमीन पर पड़ी रहती और अपने प्रति उपेक्षा भरे व्यवहार पर चीखती–चिल्लाती। बुद्धिराम के दोनों बेटे भी उसे चिढ़ाने–परेशान करने में खुश होते थे। यहां तक कि वे दोनों उस बुढ़िया के ऊपर अपने मुंह का पानी भी उड़ेल देते थे। लेकिन बुद्धिराम की बेटी लाडली 'बूढ़ी काकी' से बहुत प्यार करती थीं लाडली भाइयों से तंग होकर बूढ़ी काकी की कोठरी में आ जाती थी और चना–चबाना जो कुछ भी होता था, मिल–बांटकर बूढ़ी काकी के साथ खाती थी।

कुछ समय बाद बुद्धिराम के बेटे मुखराम की सगाई थी जिसमें भाग लेने के लिए काफी मेहमान आए हुए थे। सारे गांव में खुशी का माहौल था। चारपाइयों पर आराम कर रहे मेहमानों की नाई सेवा कर रहे थे। कहीं भाट प्रशंसा में यश–गान कर रहे थे। रूपा को भी औरतों से फुरसत नहीं थी। दौड़–दौड़कर इधर से उधर भाग रही थी। हलवाई भट्टियों पर काम कर रहे थे। कहीं सब्जियां पक रही थीं तो कही मिठाइयां बन रही थीं। खाना पकने की सुगन्धि सारे घर में फैल चुकी थी। भीतर ही भीतर बूढ़ी काकी का मन भी लालचा रहा था। परन्तु वह सोच रही थी कि जब उसे भरपेट भोजन ही नहीं मिलता तो मिठाई ओर कचौड़ी कौन खिलाएगा। रह–रहकर उसकी जीभ लपलपा रही थी। और दिन होता तो वह रो–चीखकर सभी का ध्यान अपनी ओर खींच लेती लेकिन अपशकुन के भय से वह चुपचाप बैठी थी। धीरे–धीरे उसका मन बेकाबू होता चला गया। और उकडू बनकर हलवाई के कहाड़े

के पास जाकर बैठ गई। अचानक रूपा की नजर बूढ़ी काकी पर पड़ी तो आग बबूला हो उठी और बूढ़ी काकी को खूब भला–बुरा कहा। अपमानित होकर भी बूढ़ी काकी कुछ नहीं बोली और रेंगती हुई चुपचाप अपनी कोठरी में चली गयी।

काफी समय बीत जाने के बाद भी बूढ़ी काकी की किसी ने सुध नहीं ली तो उसका मन बेचैन हो उठा। तरह–तरह के विचार उसके मन में आने लगे। सभी लोग खा–पी चुके होंगे। तेरी याद किसी को नहीं आएगी। इसी बीच उसकी भूख जोर पकड़ने लगी और हाथो के बल सरकती हुई लोगों के बीच जाकर पत्तल पर बैठ गयी। लोग आश्चर्य से देख ही रहे थे कि बुद्धिराम की नज़र उस पर पड़ गयी। उस दयनीय बूढ़ी काकी को बुद्धिराम ने दोनों हाथों से उठाकर कोठरी में लाकर पटक दिया और खूब भला–बुरा कहा। वह यह भूल गया कि आज उसे जो सम्मान मिल रहा है, वह सब बूढ़ी काकी की सम्पत्ति के कारण ही है।

रह–रहकर बूढ़ी काकी स्वयं को कोसती रही। कभी सोचती कि वहां नहीं जाना चाहिए था। बिना खाए मैं मर तो नहीं जाती। इतना दुर्व्यवहार होने पर भी बूढ़ी काकी का मन दावत में रखा हुआ था। कभी कचौड़िया याद आतीं तो कभी स्वादिष्ट रायता, लेकिन लाड़ली के अलावा बूढ़ी काकी के प्रति किसी के मन में कोई सहानुभूति नहीं थी।

रात के ग्यारह बज चुके थे। सभी मेहमान आराम कर रहे थे। हारी–थकी रूपा भी सो चुकी थी, लेकिन लाडली थी जो जाग रही थी। वह उस समय की प्रतीक्षा में थी जब अपने हिस्से का मिला हुआ खाना बूढ़ी काकी को जाकर खिलाए। रूपा को पता लगने पर पिटाई होने का डर था। माँ को सोता देखकर लाडली चुपके से अपने हिस्से की पूड़िया लेकर काकी के पास पहुंची। बेसब्री से इंतजार कर रही बुढ़िया एक ही झटके में सब खा गयी परन्तु इससे उसकी भूख और बढ़ चुकी थी। उसने लाड़ली से मेहमानों के भोजन करने के स्थान पर ले चलने को कहा परन्तु वहां पड़े टुकड़ों को चुन–चुनकर खाने के बाद भी उसकी भूख नहीं मिटी। अंत में उसने लाडली से जूंठी पत्तलों के पास ले चलने को कहा। इसी बीच रूपा की आंख खुल चुकी थीं। लाडली को अपने पास न पाकर रूपा ने इधर–उधर देखा तो वह पत्तलों के पास खड़ी थी। रूपा बूढ़ी काकी को पत्तलों की जूठन चाटते देखकर आत्मग्लानि एवं पश्चाताप से भर उठी। आज उसे अपने किये पर भारी पछतावा हो रहा था। उसकी सोई आत्मा जाग उठी थी। आज उसने बूढ़ी काकी को धमकाया नहीं अपितु उठकर साथ चलने को कहा। उसने सोचा जिस बुढ़िया की जायदाद से हमें इतनी आमदनी हो रही है, उसके लिए मैं भरपेट भोजन भी नहीं दे सकी।

ईश्वर से अपने अपराध के लिए क्षमा मांगती हुई रूपा अपने कमरे में गयी और पकवान तथा मिठाई का थाल लेकर बूढ़ी काकी के पास पुहंची। कहानीकार कहता है कि भोजन के उस थाल को देखकर काकी का मन आनन्दित हो उठा। रूपा ने बड़े ही प्यार से भोजन करने के लिए कहा और विनती की कि वह ईश्वर से प्रार्थना कर दे कि वह हमारा अपराध क्षमाकर दे। बूढ़ी काकी को उस समय स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति हो रही थी।

प्र०3 कहानी–कला के तत्त्वों के आधार पर 'बूढ़ी काकी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः हिन्दी कहानीकारों में मुंशी प्रेमचन्द का प्रमुख स्थान है क्योंकि उनकी कहानियों में समाज के निम्न वर्ग को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। साथ ही उन्होंने ऐसे विषयों को कहानी की कथावस्तु में शामिल किया है, जो सर्व–साधारण से जुड़े हुए हैं। मानव–समाज और जीवन की यथार्थ स्थिति का चित्रण प्रेमचन्द की कहानियों में जीवंत बन पड़ा है। साहित्य–समीक्षकों ने

कहानी–कला के जो छह तत्त्व – कथानक, पात्र एवं उनक चरित्र–चत्रिण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल या वातावरण, उद्देश्य तथा भाषा–शैली निर्धारित किये हैं, उनके आधार पर मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' की समीक्षा इस प्रकार की जा सकती है–

1. ***कथानक या कथावस्तु –*** कथानक कहानी का मूल तत्त्व माना गया है, क्योंकि इसके अभाव में कहानी–लेखन संभव ही नहीं है। यह ठीक है कि कहानी का कथानक अन्य गद्य–विधा उपन्यास के कथानक की उपेक्षा संक्षिप्त होता है, लेकिन उसकी मौलिक प्रस्तुति एवं शिल्पगत नवीनता पाठक के मन में जिज्ञासा और कौतूहल की भावना जगाने में सक्ष्म होती है।

   मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानी 'बूढ़ी काकी' का कथानक सामाजिक समस्या पर केन्द्रित होते हुए भी रोचक, जिज्ञासापूर्ण, उत्सुकता भरा, करूणामय तथा प्रभावोत्मकता से परिपूर्ण है। इसमें कहानीकार ने बूढ़ी काकी के माध्यम से कथानक का सृजन करते हुए मानव की स्वार्थी और कृतध्नतापूर्ण मानसिकता का चित्रण किया है। पं० बुद्धिराम और उसकी पत्नी के घृणित व्यवहार का वर्णन कर लेखक बूढ़ी काकी के प्रति सहानुभूति पैदा करने में भी सफल रहा है। साथ ही उनकी बेटी लाडली को बुढ़िया के प्रति सहानुभूति रखने वाली बताकर कथानक को एकपक्षीय नहीं होने दिया है। कथानक की पूर्णता बुद्धिराम की पत्नी द्वारा बूढ़ी काकी को जूठन चाटते हुए देखने पर उत्पन्न आत्मग्लानि एवं पछतावे के साथ कर प्रेमचन्द ने समाज में सुधार की भावना लाने की कोशिश करते हैं। वह ईश्वर से भी डरती है और बूढ़ी काकी से प्रार्थना करती है कि वह भोजन कर ईश्वर से उन्हें क्षमाकर देने की प्रार्थना कर दे। कहने का अभिप्राय है कि 'बूढ़ी काकी' की कथावस्तु क्रमशः विकसित होती है और सम्पूर्ण होती है। साथ ही उसकी कथा मानव के मन और हृदय को झकझोरने में सक्षम रही है। समाज और मनोविज्ञान के स्तर पर लिखी गयी यह कहानी कथानक की दृष्टि से एक सफल कहानी मानी जा सकती है।

2. ***पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण –*** मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानी 'बूढ़ी काकी' में पात्रों की संख्या भले ही कम है लेकिन वे अपने दायित्व–निर्वाह के प्रति सजग रहे हैं। उनका आचरण एवं व्यवहार समाज की यथार्थ स्थिति का आकंलन करने में सफल रहा है। 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी में बूढ़ी काकी मुख्य पात्र रूप में सामने आती है और सारी कहानी उसी के आसपास घूमती रहती है। एक ओर कहानीकार ने उसकी वृद्धावस्था की ओर संकेत किया है तो दूसरी ओर स्वादिष्ट भोजन को उसकी कमजोरी बताया है। उसके आचरण में किसी प्रकार का छल या बनावटीपन नहीं है। इसके बाद पंडित बुद्धिराम दूसरा मुख्य पात्र है, जो बूढ़ी काकी का भतीजा है। पैसों का लालची है और बातें करने में काफी तेज और चालाक है। कहानी में उसका चरित्र स्वार्थी और लोभी का है, जो बूढ़ी काकी की जायदाद तो अपने नाम लिखवा लेता है। बाद में उसे रोटी भी नहीं खिलाता। यहां तक कि अपमानित और बेइज्जत भी करता है। तीसरी मुख्य पात्रा रूपा है, जो बूढ़ी काकी के भतीजे पंडित बुद्धिराम की पत्नी है। स्वभाव में तीखापन है, परन्तु भगवान से डरती है। प्रारम्भ में बूढ़ी काकी के प्रति उसका व्यवहार अपमान और प्रताड़ना से भरा रहता है, लेकिन बूढ़ी काकी को जूठी पत्तलें चाटते देखकर उसके भीतर आत्मग्लानि और पछतावे का भाव जाग्रत हो उठता है। अपनी

भूल को स्वीकार करती है और बूढ़ी काकी को भोजन कराती है। ईश्वर से भी अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करती है।

इनके अलावा इस कहानी में पंडित बुद्धिराम के दो बेटे भी हैं, जिनका व्यवहार बूढ़ी काकी के प्रति शरारत से भरा हुआ है। कहानी में एक लाडली नाम की पात्रा है, जिसके मन में बूढ़ी काकी के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। काकी को भी उससे लगाव था। लाडली अपने भाइयों से बचकर बूढ़ी काकी को कोठरी में ही पहुंचती थी। इस तरह पात्र एवं उनके चरित्र–चित्रण की दृष्टि से बूढ़ी काकी एक सफल कहानी है।

3. ***कथोपकथन या संवाद–योजना*** – कथोपकथन कहानी की रीढ़ होते हैं। इनसे ही कहानी में स्वाभाविकता एवं वास्तविकता का भाव आता है। यद्यपि 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी में पात्रों के पारस्परिक संवाद कम ही हैं, लेकिन मन ही मन बात कहना या आत्म–वार्तालाप इस तत्व को पुष्ट करने में सक्षम रहा है। बूढ़ी काकी, बुद्धिराम और रूपा जब भी बोलते हैं, दूसरा पात्र चुप रहता है। कुछ भी नहीं बोलता, लेकिन बूढ़ी काकी और लाडली का वार्तालाप अवश्य इस दृष्टि से देखा जा सकता है, जैसे–

बूढ़ी काकी – क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं?

लाडली ने कहा – नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।

लाड़ली ने पूछा – काकी पेट भर गया।

काकी बोली – नहीं बेटी जाकर अम्मां से और मांग लाओ।

लाडली ने कहा – अम्मां सोती हैं, जगाऊंगी तो मारेंगी।

4. ***देशकाल या वातावरण*** – कोई भी कहानी समय के अनुसार प्रासंगिक है या नहीं, इसका निर्णय कहानी में चित्रित देशकाल और वातावरण के आधार पर किया जाता है। इससे कहानी की विश्वसनीयता भी बनती है। मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में एक ऐसे सामाजिक वातावरण का दृश्य खड़ा किया है, जो एक अकेली बूढ़ी काकी के जीवन में ही नहीं, कितने ही वृद्धों के जीवन में ऐसा होता है। 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी में देशकाल सजीवता किये हुए है। भले ही वह पण्डित बुद्धिराम और रूपा द्वारा उसे अपमानित और प्रताड़ित करने का हो, सगाई–तिलक समारोह का हो, जूठी पत्तल चाटने का हो या रात्रि के वातावरण का; कहानी का वातावरण प्रभावोत्पादक रहा है। जैसे ही रूपा स्वादिष्ट पकवानों से भरा हुआ थाल लेकर बूढ़ी काकी के सामने आती है, उस वातावरण का चित्रण तो मन को रोमांचित कर देता है।

5. ***उद्देश्य*** – कहानी ही नहीं, मानव का प्रत्येक कर्म कोई न कोई उद्देश्य लिए रहता है। कहानी का उद्देश्य केवल पाठक या श्रोता के मन को आनन्दित करना ही नहीं होता, अपितु जीवन से जुड़ी किसी न किसी समस्या की ओर ध्यान खींचना होता है। उसका एक निश्चित लक्ष्य होता है। मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' एक उद्देश्यपूर्ण कहानी है। इसमें कहानीकार ने बुद्धिराम जैसे लालची और स्वार्थी लोगों के प्रति समाज में घृणा की भावना पैदा की है और बूढ़ी काकी जैसे वृद्धों के प्रति मानवता का व्यवहार जगाया है। लेखक ने वृद्धों के स्वभाव में खान–पान की प्रवृति दिखाकर बूढ़ी

काकी को दोषयुक्त सिद्ध किया है। कहानी का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है कि वृद्धजनों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार अनुचित है। इस प्रकार बूढ़ी काकी सोद्देश्य कहानी है।

6. ***भाषा–शैली*** – भाषा–शैली भावभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा के अभाव में या उसकी सम्यक प्रस्तुति के अभाव में कथ्य को उजागर करना कठिन हो जाता है। मुंशी प्रेमचन्द की भाषा सर्वथा पात्र, देशकाल एवं विषयवस्तु के अनुरूप रही है। यही कारण है कि उनकी कहानियों की भाषा–शैली व्यावहारिक अधिक होती है। साधारण से साधारण पाठक भी उनकी भाषा को समझने में सफल रहता है। शैली की दृष्टि से भी मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' सफल कहानी है। पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे सब कुछ आंखों के सामने ही घटित हो रहा है। वर्णनपरक शैली भावात्मकता के साथ–साथ चित्रात्मकता की प्रवृति लिये रही है। कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग प्रेमचन्द की भाषा–शैली को और भी स्वाभाविक बनाने में सक्षम रहा है।

प्र०4 'बूढ़ी काकी' कहानी में वर्तमान समाज की ज्वलन्त वृद्ध–समस्या का यथार्थ चित्रण हुआ है – स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से उठाया गया है। बूढ़ी काकी नामक कहानी भी इसी कोटि की कहानी है, जिसमें वृद्धजनों के प्रति समाज में उपेक्षा की पनपती समस्या को स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया गया है। लेखक ने गंभीरता के साथ बूढ़ी काकी के साथ होने वाले जिस उपेक्षापूर्ण व्यवहार को उठाया है, वह अकेली काकी के ही साथ नहीं हैं, अपितु समाज में ऐसे कितने ही वृद्ध हैं। पंडित बुद्धिराम जैसे लालची लोग मीठी–मीठी बातों में बहला–फुसलाकर बूढ़ों से उनकी सम्पत्ति अपने नाम लिखवा लेते हैं। खूब लम्बे–चौड़े वायदे करते हैं, लेकिन बहुत जल्दी ही उनका घिनौना रूप सामने आ जाता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुढापा आते ही मानव के स्वभाव में बचपन के गुण आने लगते हैं। बूढ़ी काकी के आचरण में भी इसके लक्षण थे, लेकिन कहानीकार कहता है कि यह सब बात पंडित बुद्धिराम को उस समय सोचनी चाहिए थी, जब वह आश्वासनों पर विश्वास बूढ़ी काकी ने डेढ़–दो सौ रूपये प्रतिवर्ष की आय वाली जायदाद उसके नाम लिख दी थी। यह ठीक है कि बूढ़ी काकी अपनी इच्छा पूरी न होते देख रोने–चीखने लगती थी, परन्तु इसके सिवा वह कर भी क्या सकती थी।

कहानीकार कहता है कि पंडित बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा का व्यवहार एक दम बदल गया और वे यह भी भूल गये कि वे आज जिस सम्पत्ति के मालिक हैं, वह सब इसी बूढ़ी काकी की दी हुई है। गांव में मिली प्रतिष्ठा सम्पत्ति की आय के कारण है, लेकिन जिसकी जायदाद है उसके लिए भरपेट भोजन तक भी नहीं है। भूख के कारण बूढ़ी काकी की इच्छाएं अतृप्त रहती है। साथ कहानीकार ने ध्यान आकर्षित किया है कि भूख और जीभ का स्वाद मनुष्य को कहां तक गिरा सकता है। मार खाती है, अपमानित होती है, भला–बुरा सुनती है; परन्तु मन में भूख की लालसा रह–रहकर उसे बेचैन करती रहती है। इसके पीछे मुंशी प्रेमचन्द ने समाज में व्याप्त उस समस्या की ओर ध्यान खींचा है, जहां बूढ़ों की भावनाओं की कद्र नहीं होती। आज की नयी पीढ़ी वृद्धों को अपनी आधुनिकता के मार्ग में बाधक समझती है। यहां तक कि उनका भद्दा मजाक भी उड़ाया जाता है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में लेखक ने बुद्धिराम के लड़कों द्वारा न केवल उसे चिढ़ाया जाता है, अपितु उसके ऊपर मुंह के जूठे पानी के कुल्ले करना आम बात है। कभी काकी को नोंचकर भाग जाते हैं तो कभी बालों को खींचकर चले

जाते हैं, लेकिन बुद्धिराम या उसकी पत्नी रूपा अपने लड़कों को डांटना तो दूर, मना तो नहीं करते। इस तरह के व्यवहार से भी परिवार के वृद्धजन टूट जाते हैं। यह स्थिति अकेली बूढ़ी काकी की नहीं, अपितु समूचे समाज की है जिसमें युवाओं द्वारा वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार किया जाता है।

इसी तरह लेखक ने स्वयं बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा के व्यवहार को उस समय घृणास्पद बना दिया है, जब वह काकी पकवानों की खुशबू से अधीर होकर हलवाइयों के पास कड़ाहे के पास जा बैठती है। रूपा एक तरफ तो मेहमानों के इशारों पर नाच रही है, वहीं दूसरी तरफ कड़ाहे के पास बूढ़ी काकी को बैठी देख आग बबूला हो जाती है। अपशब्द बोलती है और कहती है कि उसकी इसी में भलाई है कि चुपचाप अपनी कोठरी में चली जाए। विवश और लाचार काकी के पास जाने के सिवा कोई रास्ता नहीं होता। मन मारकर सोचती रहती है। इसके माध्यम से कहानीकार कहना चाहता है कि आखिर बड़े–बूढ़ों की भी इच्छा होती है। जिस तरह सगाई–विवाह समारोहों में शामिल होकर आप आनन्द लेना चाहते हैं, उसी प्रकार उन्हें क्यों नहीं शामिल करते। झूठा–प्रदर्शन करने से कोई लाभ नहीं। बाहर से अतिथियों की तो हर इच्छा पूरी करने का प्रयास किया जाता है लेकिन अपने घर के वृद्धों की उपेक्षा की जाती है, जो किसी भी तरह उचित नहीं माना जा सकता।

मुंशी प्रेमचन्द ने इस कहानी के माध्यम से वृद्धों की उपेक्षा करने वाले स्वार्थी बुद्धिराम जैसे लोगों को समाज के भीतर उस समय नंगाकर दिया है, जब बूढ़ी काकी अधीर होकर दावत खा रहे लोगों के बीच आ बैठती है और सभी लोग उसकी बदहाली को देखकर 'कौन है–कौन है' कहकर चिल्लाने लगते हैं। यहां तक कि उसका भतीजा बुद्धिराम आकर उसे दोनों हाथों से उठाकर कोठरी में ले जाकर पटक देता है और खूब खरी–खोटी सुनाता है। बुढ़िया चुपचाप पड़ी रहती है और कोई उसे खाने तक की नहीं पूछता। उस समय समाज की दशा और भी दयनीय हो जाती है, जब वह बुढ़िया लाडली का हाथ पकड़कर पत्तलों की जूठन चाटने लगती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी 'बूढ़ी काकी' में वर्तमान समाज की ज्वलन्त वृद्ध–समस्या को सहजता और स्वाभाविकता के साथ प्रभावी ढंग से उठाया है। बूढ़ी काकी की दुर्दशा को देखकर मानवीय हृदय न केवल करूणा एवं सहानुभूति से भर उठता है अपितु, आत्मचिंतन के लिए बाध्य–सा कर देता है।

प्र०5 'बूढ़ी काकी' कहानी की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन होती है और उनकी प्रस्तुति को शैली या स्टाइल कहा जाता है। बूढ़ी काकी मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित सामाजिक कहानी है। बूढ़ी काकी ग्रामीण परिवेश से जुड़ी महिला है और उसका सारा जीवन उसी परिवेश में बीता है। प्रस्तुत कहानी की विवेच्य सामग्री भी उसी परिवेश की देन है। परिवार में वृद्धजनों के साथ जुड़ी उपेक्षा की भावना को कहानीकार ने बड़ी ही सजगता के साथ प्रस्तुत किया है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए प्रसाद जी ने वर्णन को स्वाभाविक बना दिया है। कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'बूढ़ी काकी' की भाषा–शैली का वर्णन निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है–

1. ***जन–साधारण की भाषा*** – मुंशी प्रेमचन्द ने 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी को साधारण पाठक तक के लिए पठनीय बनाने हेतु सरल भाषा का प्रयोग किया है। वैसे भी कहानी

की जीवंतता तभी संभव है, जब उसमें प्रयुक्त भाषा जन–साधारण की भाषा हो। 'बूढ़ी काकी' अकेली वृद्ध महिला नहीं है जिसके साथ अपमान और तिरस्कार से भरा व्यवहार किया गया हो, अपितु वह तो प्रतीक है। न जानें ऐसे कितने ही वृद्ध है जिन्हें बुद्धिराम जैसे स्वार्थी पुत्रों–भतीजों द्वारा दुत्कारा जाता है। इसी भावना को उजागर करते हुए कहानीकार ने जनभाषा का प्रयोग किया है।

2. ***सहज एवं सरल भाषा –*** मुंशी प्रेमचन्द ने सहज एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है। कहानी को पढ़ते समय ऐसा लगता है मानों कहानीकार के स्थान पर स्वयं पात्र लिख रहा हो। कहीं भी कहानीकार ने क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। भाषा को पढ़ने पर पता चलता है कि उसमें बनावटीपन का सर्वत्र अभाव है। बूढ़ी काकी के मनोभावों के चित्रण में भी लेखक की शब्दावली सहज एवं सरल रही है, जैसे ''काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करने चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ।''

3. ***लोकोक्तियों एवं मुहावरों का सहज प्रयोग –*** बूढ़ी काकी कहानी की भाषा में लेखक ने लोक–कहावतों एवं मुहावरों का सहज प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों से भाषा में सहजता के साथ–साथ प्रभावोत्मकता का गुण भी उपस्थित हुआ है। इस प्रकार के प्रयोगों से वाक्य भी छोटे और भावोत्पादक रहे हैं। लोकोक्ति या मुहावरा अपनी सार्थकता के साथ भाषा में प्रयुक्त हुए हैं–

   जैसे – बुढ़ापा अक्सर बचपन का पुनरागमन हुआ करता है, रोना–सिसकना, मुंह में पानी आना, गला फाड़ना, सब्जबाग दिखाना, अपना–अपना राग अलापना, इशारों पर नाचना, पेट में आग लगना, स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लेना, आंखें भर आना, गर्दन पर छुरी चलना, बे सिर–पैर की बात करना, आंच न आये आदि।

4. ***विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग –*** कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी कहानी में वर्ण्य विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा अभीष्ट अर्थ को उजागर करने में सर्वथा सफल रही है। इसी प्रकार पात्र के अनुसार भाषा–प्रयोग करना मुंशी प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते हैं। बूढ़ी काकी, बुद्धिराम, रूपा और लाडली की भाषा का रूप देखा जा सकता है। रूपा की भाषा में कठोरता का स्वर देखा जा सकता है – 'पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जलजाय ऐसी जीभ। × × × × × डायन न मरे, न मांचा छोड़े नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूंसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है।

5. ***तत्सम्–तद्भव शब्दों का प्रयोग –*** 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी के अन्तर्गत तत्सम् एवं तद्भव शब्दों का खुलकर प्रयोग मिलता है, लेकिन इससे भाषा की सजीवता एवं सार्थकता की स्वाभाविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इस प्रकार के शब्दों में – बहुधा, पुनरागमन, स्वाद, सिवा, प्रतिकूल, परिभाषा, सज्जन, कोष, आंच, आये, खलती, भलमनसाहत, अनुराग, बृहद, गवार, आरोपण, दीर्घाहार, गगनमण्डल, प्रभाव, स्वादेन्द्रिय, स्वर्गीय, दृश्य आदि।

6. ***उर्दू शब्दों का प्रयोग*** – मुंशी प्रेमचन्द का प्रारम्भिक लेखन उर्दू भाषा में था, इसलिए उनकी भाषा में हिन्दी लिखते समय उर्दू शब्दों का प्रयोग स्वभावतः ही हुआ है। इस प्रकार के शब्दों में दलाल, वायदे, सब्जबाग, सिसकना, बेसिरपैर, जवाब, खलती आदि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'बूढ़ी काकी' नामक कहानी की भाषा सहज, सरल, सुबोध, एवं भावानुकूल है। उसे पढ़ते समय पाठक आसानी से उसका भाव समझता चला जाता है। चित्रात्मक शैली आकर्षण लिये रही है। ऐसा लगता है मानों भाषा में बूढ़ी काकी और उसके साथ होने वाला व्यवहार आंखों के सामने घटित हो रहा हो। स्वाभाविक गतिशीलता से परिपूर्ण भाषा ने कहीं भी कथानक को नीरस या उबाऊ नहीं बनने दिया है। वाक्यों की सरलता अन्तर्मन को छूती चली जाती है।

0;k[;k

x/&vorj.kk dh lçlx 0;k[;k

1

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिव्हा–स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही? समस्त इन्द्रियां, नेत्र, हाथ, और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिणामपूर्ण न होता, अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो वे रोने लगती थी। उनका रोना–सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़–फाड़ कर रोती थीं।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर वृद्धों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इस अवतरण में बूढ़े लोगों की मानसिकता का चित्रण करते हुए वे कहते हैं कि–

व्याख्याः मुंशी प्रेमचन्द जी कहते है कि वृद्धावस्था में मनुष्य का बचपन पुनः आता हुआ दिखाई देता है। बूढ़ी काकी के जिव्हा–स्वाद के अलावा कोई दूसरी इच्छा न थी अपने दुःख को प्रकट करने के लिए रोने के सिवा बूढ़ी काकी के पास कोई दूसरा सहारा नहीं था। बूढ़ी काकी के समस्त ज्ञान साधन–इन्द्रियां, नेत्र, हाथ और पैरों में कोई ताकत नहीं रह गई थी। अर्थात् वे असमर्थ हो चुकी थी। हर समय वह जमीन पर पड़ी रहती और अपनी इच्छा के विपरीत काम होता हुआ देखकर जोर–जोर से रोने लगती। भले ही खाने में देरी हो जाये या बाजार से लाई हुई चीज देने में देरी हो जाये। बूढ़ी काकी का रोना–चिल्लाना साधारण न होकर जोर–जोर से चीखना–चिल्लाना होता था।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने बूढ़ी काकी के माध्यम से वृद्धों के मन की अधीरता का वर्णन किया है।
2. भाषा मुहावरेदार, तत्सम् प्रधान, उर्दू मिश्रित है।
3. वाक्य–विन्यास लम्बा होते हुए भी सहज और सरल है।

2

यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सचेष्ठा को दबाये रखता था। यहां तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं, तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डांटते।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

इस अवतरण में कहानीकार ने बुद्धराम जैसे लालची और स्वार्थी लोगों के व्यवहार पर सवाल खड़ा किया है। कहानीकार कहता है कि–

व्याख्याः बुद्धराम बूढ़ी काकी को संतुष्ट करने के लिए झूठे वायदों में कोई कमी नहीं छोड़ता था लेकिन बूढ़ी काकी के लिए पैसे खर्च करना उसे मंजूर नहीं था। अगर कभी बूढ़ी काकी की चीख–चिल्लाहट के समय घर के बाहर कोई ओर आदमी बैठा होता तो बुद्विराम घर के भीतर आकर बूढ़ी काकी को डांटने में भी कोई संकोच नहीं करता था।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने बुद्धिराम के लालची, और क्रोधी स्वभाव का मार्मिक चित्रण किया है।
2. भाषा विषयानुकूल है जिसमें संस्कृत और उर्दू के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग है।
3. लोकोक्ति और मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया गया है।
4. भाषा में चित्रात्मकता है।

3

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भांति बैठी हुई थीं। यह स्वाद–मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन ही मन विचार कर रही थीं सम्भवतः मुझे पूंडियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गई, कोई भोजन लेकर नहीं आया मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। सोचकर उन्हें रोना आया; परन्तु अशकुन के भय से वह रो न सकीं।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इस अवतरण में कहानीकार ने बूढ़ी काकी की सोच–समझ का सुन्दर चित्रण किया है। कहानीकार कहता है कि–

व्याख्याः बूढ़ी काकी कोठरी में अकेली बैठी सोच–विचार कर रही थी। घर में भिन्न–भिन्न प्रकार के पकवानों की खुशबू बूढ़ी काकी के मन में बैचनी पैदा कर रही थी। बूढ़ी काकी अपने मन ही मन सोच रही थी कि उसे पूंडियां नहीं मिलेगी। बूढ़ी काकी सोच रही थी कि इतनी देर हो गई है अब तक तो सभी ने भोजन कर लिया होगा। मेरे लिए भोजन बचा ही नहीं होगा। यह सोचकर बूढ़ी काकी मन ही मन रोने लगी लेकिन शुभ अवसर पर रोने के अपशकुन के भय से वह रोई नहीं और मन ही मन सोचती रही।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने बूढ़ी काकी को जो पकवानों की खुशबू आ रही थी वह उसके मन में बेचैनी पैदा कर रही थी।

2. मानसिक भावनाओं का संजीव चित्रण किया गया है।

3. देशज, तदभव तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

4

जिस प्रकार मेंढक कंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झटककर बोली–ऐसे पेट में आग लगे। पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाय ऐसी जीभ। दिनभर खाती न होती तो न जाने किसकी हांड़ी में मुंह डालतीं? गांव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खाने को नहीं पाती, तभी तो इस तरह मुंह बाए फिरती है। डायन न मरे, न मांचा छोड़े नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा कर दम लेगी।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इसमें बुद्धराम की पत्नी रूपा द्वारा बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी हुई देख लेने पर गुस्सा होने का वर्णन किया गया है। रूपा के क्रोध का भयावह चित्रण वे कहते हैं कि–

व्याख्याः बूढ़ी काकी को बाहर देखकर रूपा का खून खौल उठता है और वह बूढ़ी काकी पर इस प्रकार झपटी जिस प्रकार मेंढ़क केंचुए पर झपटता है उसी प्रकार रूपा ने दोनों हाथों से बूढ़ी काकी को झटक दिया और खींचती हुई अन्दर ले गई। और वह कहती है कि ऐसे पेट में आग लगे। इस बूढ़ी का पेट है या भाड़? इसका कमरे में बैठे हुए तो दम घुटता है। अभी तक आऐ हुए मेहमानों ने भोजन किया नहीं है और भगवान् को भी भोग नहीं लगा है, तब तक भी इस बूढ़ी काकी पर रूका नहीं जा रहा, आकर हमारी छाती पर सवार हो गई, ऐसी जीभ में आग लगे, अगर चौबीसों घण्टे खाना ना मिलता तो ना जाने किस–किस के घर पर खाना खाती फिरती है। गांव के सभी लोग सोचेगें के बुढ़िया को भरपेट भोजन भी नहीं देते है तभी तो इस तरह भूखे पेट इधर–उधर घूम रही है, न तो डायन मरती है, और ना ही खाट में लगती है इससे हमारा नाम बदनाम तो नहीं होगा, इस बूढ़ी काकी ने तो हमारी नाक कटवा दी।

विशेषः

1. इस अवतरण में रूपा काकी पर इस तरह झपटती है जिस प्रकार मेंढ़क केंचुए पर झपटता है।

2. बूढ़ी काकी को प्रताड़ना दी जाती है। रूपा के व्यवहार से पता चलता है कि आदमी कितना झूठा व्यवहार करता है।

3. इसमें प्रश्नवाचक, देशज एवं ग्रामीण आंचल में बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग किया गया है।

5

दीन, क्षुधातुर, हत–ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन–चुनकर भक्षण करने लगी। ओह दही कितना स्वादिष्ट था, कचौड़ियां कितनी सलौनी, खस्ता कितने सुकोमल। काफी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अन्तिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी उनकी तृष्णा का केन्द्र स्वादेन्द्रिय में प्रमुख हो गया था।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया हैं। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इस अवतरण में बूढ़ी काकी वहां आकर बैठ जाती है जहां पर मेहमानों ने भोजन किया था क्योंकि भूख के कारण उस पर बैठा भी नहीं जा रहा था और वह मेहमानों की पत्तलों की जूंठीन चाट रही थी। इस पर कहानीकार कहता है कि–

व्याख्याः लाडली दीन, कमजोर, हत–ज्ञान बूढ़ी काकी को मेहमानों की जूठी पत्तलों तक पहुँचा देती है। भूख से पीड़ित बुढ़िया जूठी पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन–चुनकर खाती हैं। और कहती है कि दही कितना स्वाद था कचौड़ियां कितनी बढ़िया खस्ता और मुलायम थीं। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी जानती थीं कि जो काम वह कर रही है उस काम को उसे कभी नही करना चाहिए, लेकिन जब उसे भोजन नहीं मिला तो उसे ऐसा करना पड़ा। मैं दूसरों लोगों की जूठी पत्तल पर से खाना खा रही हूँ। लेकिन बुढ़ापा मनुष्य की इच्छा का अन्तिम समय होता है। जब सभी इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आकर खड़ी हो जाती है। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र केवल खाने–पीने की चीजों तक ही सीमित था।

विशेषः

1. इस अवतरण मे बूढ़ी काकी भूख के कारण कमजोर व क्षुधातुर है। वह जूठी पत्तलों पर से खाना चुन–चुनकर खाती है।
2. इसमें विस्मयादि बोधक चिह्न का प्रयोग किया गया है।
3. इसमें ग्रामीण आंचल में बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग किया गया है।

6

वह सोचने लगी–हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रूपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के सैकड़ों रूपये व्यय कर दिये परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रूपये खाये, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इस अवतरण में कहानीकार रूपा के पश्चाताप् एवं आत्मग्लानि भरे व्यवहार का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्याः रूपा ने सोचा कि मेरा व्यवहार कितना दयाहीन और कठोर है। जिस बूढ़ी काकी के द्वारा दी गई सम्पत्ति से मुझे दो सौ रूपये महीने की आमदनी हो रही है, उसकी इतनी बुरी हालत और वह भी मेरे कारण। हे ईश्वर! तुम दयामय हो, मुझसे भारी गलती हुई है। आप मुझे क्षमा कर देना। आज मेरे बेटे के सगाई समारोह के अवसर पर सैकड़ों लोगों ने भोजन किया और मैं उनकी आवभगत करती रही। सामाजिक दिखावा करने के लिए सैकड़ों रुपये खर्च किये, परन्तु जिस काकी की सम्पत्ति से मुझे हजारों रुपये मिले उसे मैं भरपेट भोजन भी नहीं करवा सकी। इसके पीछे मेरे मन में एक ही भाव था कि इस दुनिया में उस बुढ़िया का सहायक नहीं है।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने रूपा के आत्मग्लानि एवं पश्चाताप भरे मन का यथार्थ चित्रण किया है।
2. कहानीकार ने मनुष्य की स्वार्थ भरी मानसिकता का उल्लेख किया है।
3. भाषा में सहजता, सरलता एवं स्वाभाविकता है।
4. सम्बोधन शैली का प्रयोग है।

7

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसी को वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था, जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कंठावरूद्व स्वर में कहा – काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'बूढ़ी काकी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द हैं।

इस कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज के भीतर बूढ़ों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। इस अवतरण में कहानीकार रूपा के पश्चाताप एवं आत्मग्लिानी भरे व्यवहार का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्याः जैसे ही बूढ़ी काकी ने थाल में लगे हुए अच्छे व्यंजनों को देखा तो उस समय ऐसा लगा जैसे उसे सारा सुख मिल गया हो आधी रात के समय तारागणों से भरा आकाश थाल में भरे व्यंजनों की तरह चमक रहा था। उस भोजन को देखकर काकी को वह सुख मिल रहा था, जो देवताओं को स्वर्ग के सुन्दर पदार्थ देखकर होता है। रूपा ने अपने रूके हुए गले से बूढ़ी काकी को पुकारते हुए कहा – उठो और भोजन कर लो। आज मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई है, लेकिन आप बुरा मत मानना। मैं चाहती हूँ कि आप ईश्वर से भी प्रार्थना कर दें कि वह आज मेरे द्वारा हुए अपराध को माफ कर दे।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने रात्रिकालीन प्राकृतिक दृश्य के माध्यम से बूढ़ी काकी की मानसिक प्रसन्नता का चित्रण किया है।
2. कहानीकार ने मनुष्य के मन में बैठे ईश्वर के भय का भी सटीक चित्रण किया है।
3. भाषा में आत्म अपराध का बोध स्पष्ट झलकता है।
4. भाषा में कहानीकार ने रूपक का प्रयोग करते हुए दार्शनिक शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है।

आकाशदीप

जयशंकर प्रसाद

प्र०1 जयशंकर प्रसाद का संक्षिप्त परिचय देते हुए साहित्यिक विशेषताएं लिखिए।

उत्तरः **जीवन–परिचयः** छायावाद के प्रमुख स्तम्भ एवं राष्ट्रीय चेतना के अमर गायक जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व पूरे छायावादी युग पर छाया रहा। प्रसाद, पन्त और निराला को मिलाकर जो वृहतत्रयी बनती है, उसमें जयशंकर प्रसाद को ब्रह्म कहा जा सकता है। छायवादी युग के एकमात्र महाकाव्य 'कामायनी' के रचयिता के रूप में ही जयशंकर को याद नहीं किया जाता, बल्कि छायावादी युग की चेतना को गढ़ने वाले अमर कवि के रूप में भी उन्हे याद किया जाता है।

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म वाराणसी (उ०प्र०) के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में सन् 1889 में हुआ था। आपके पितामह श्री शिवरत्न जी तथा पिता देवी प्रसाद जी काशी में तम्बाकू, सुंघनी तथा सुर्ती के मुख्य विक्रेता थे। आपका परिवार काशी में सुंघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध था। जिस समय प्रसाद जी सातवीं कक्षा में पढ़ते थे, उस समय उनके पिता का देहान्त हो गया था। घर को चलाने की जिम्मेवारी उनके बड़े भाई पर आ पड़ी। भाई ने जयशंकर की पढ़ाई का तो प्रबन्ध घर पर ही कर दिया, साथ ही उनको वेद, उपनिषद् तथा अंग्रेजी की शिक्षा भी दी गई। प्रसाद जी को उन दिनों तीन कार्य करने पड़ते थे – व्यायाम करना, पढ़ना और दुकान की देखभाल करना। प्रसाद जी मन दुकानदारी में नहीं लगता था। प्रायः तम्बाकू की दुकान पर बैठे बही में कविताएं लिखा करते थे। भाई की डांट–फटकार का भी उन पर काई असर नहीं पड़ता था। कुछ ही समय में उनके द्वारा भेजी गई समस्या पूर्तियों का प्रभाव पड़ने लगा था। भाई ने उन्हें कविता लिखने की छूट दे दी। कुछ समय पश्चात् शम्भु रत्न जी की मृत्यु हो और गृहस्थी चलाने की जिम्मेवारी जयशंकर प्रसाद जी पर आ पड़ी।

प्रसाद जी अत्यन्त उदार, सरल, मृदुभाषी, साहसी एवं स्पष्ट वक्ता थे। उन्हें साहित्य पर जो भी पुरस्कार मिले, उन्होंने वे सभी दान कर दिये। प्रसाद जी एकान्तप्रिय तथा भीड़–भाड़ से बचने वाले व्यक्ति थे। 22 जनवरी, 1937 को वे बीमार पड़े और डॉक्टरों ने उन्हें राजयक्ष्मा का रोगी घोषित कर दिया था। वे प्रायः जीवन से उदासीन हो गए थे और 1937 में उनका देहान्त हो गया। अड़तालीस वर्ष की अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गई। हिन्दी जगत् को प्रसाद जी ने अमूल्य साहित्य–रत्न दिए।

रचनाएं – जयशंकर प्रसाद जी ने 27 से अधिक रचनाएं लिखी। प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं।

काव्य–संग्रह – 'चित्राधार', करूणालय, 'महाराणा का महत्त्व', 'प्रेम–पथिक', कानन–कुसुम, झरना, लहर, आंसू और कामायनी।

नाटक – 'राज्यश्री', 'एक घूंट', 'कामना', अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।

कहानी–संग्रह – 'छाया' प्रतिध्वनि, 'आकाशदीप', आंधी और इन्द्रजाल।

उपन्यास – 'कंकाल', 'तितली' तथा अधूरा उपन्यास 'इरावती'।

निबन्ध – काव्यकला और अन्य निबन्ध।

साहित्यिक विशेषताएं: प्रसाद की आकाशदीप कहानी के आधार साहित्यपरक निम्नलिखित विशेषताएं मानी जा सकती हैं–

1. ***अतीत के प्रति आकर्षण*** – जयशंकर प्रसाद ने 'आकाशदीप' कहानी में इतिहास और कल्पना का सममिश्रण कर अपने गौरवशाली अतीत का चित्रण किया है। वे अतीत की मर्यादाओं का समर्थन करते थे। उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य धर्म, सम्प्रदाय और जातिवाद से ऊपर उठकर एक आदर्श समाज और गौरवशाली राष्ट्र की प्रतिष्ठा करना है। वे अतीत की मर्यादाओं का समर्थन करते थे। इसके साथ–साथ समाज में फैली बुराईयों का भी विरोध किया।

2. ***राष्ट्रीय भावना*** – प्रसाद जी की कहानियों में राष्ट्रीय प्रेम की भावना का बढ़–चढ़कर वर्णन किया गया है। राष्ट्र प्रेम के लिए जयशंकर प्रसाद व्यक्ति के बलिदान और त्याग के पक्षधर रहे हैं। उनकी कहानियों में नारी एवम् पुरूष पात्र युद्ध के बिगुल बजते ही राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हो जाते हैं। उनकी कहानियों में बलिदान, त्याग, समर्पण और करुणा का सदा संचार रहता है। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में राष्ट्रीय प्रेम की भावना का महत्वपूर्ण वर्णन है।

3. ***मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा*** – प्रसाद ने सदा मानव का मूल्यांकन गुणों और चरित्र के आधार पर किया है। प्रसाद के अनुसार ऊच–नीच, जाति–पाति सभी मनुष्य द्वारा निर्मित संकीर्ण प्रवृत्तियां समाज में कोई स्थान नहीं रखती। वह मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण के सदैव विरोधी हैं। उनकी कहानियों में राजा–रानियों से लेकर दीन–दुःखियों तक को स्थान मिला है। उनके लिए मानवता ही सर्वोपरि धर्म है।

4. ***गद्य में काव्यपरकता*** – उनके गद्य में भी काव्य के जैसी भाषा और भावों का चित्रण अंकित किया है। उनकी कहानियों में मन व तन को स्पर्श करने वाली अभिव्यक्ति है। उनकी भाषा संकेत देने वाली तथा काव्यात्मक होने के कारण पाठक के मन को मधुर स्वप्नलोक में ले जाती है।

5. ***प्रेम और त्याग भावना का वर्णन*** – जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में प्रेम और त्याग–भावना का उदान्त चित्रण मिलता है। आकाशदीप कहानी भी इसी प्रकार की भावनाओं से आपूरित है। चम्पा और बुद्धगुप्त में प्रेम की पराकष्ठा भी है लेकिन परिणय के बाद जब बुद्धगुप्त उससे द्वीप को छोड़कर भारत चलने का आग्रह करता है तो वह अपने द्वीपवासियों के साथ रहने की इच्छा प्रकट करती है। उसमें प्रेम के नाम पर केवल वासना नहीं है अपितु त्याग की भावना है।

6. ***तत्सम्–तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग*** – जयशंकर प्रसाद की गद्य–भाषा पर उनकी कवित्व–प्रतिभा का प्रभाव रहा है। उनकी गद्य–भाषा में हिन्दी की खड़ी बोली का संस्कृत निष्ठ रूप प्रयुक्त हुआ है। उनके द्वारा लिखित कहानी 'आकाशदीप' में प्रयुक्त शब्दावली से स्पष्ट है कि उन्होंने तत्सम्–तद्भव शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है, जैसे–दस्यु, वृत्ति, बन्दीगृह, पोत, जलयान, आलोक, शैलमाला, सिन्धु, निविड़तम्, तारिका आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी कहानीकार जयशंकर प्रसाद की कहानियों में मानव, समाज और राष्ट्र सर्वोपरि रहा है। बार–बार कहानीकार का मानस इन्हीं तत्वों के प्रति आकर्षित होता चला गया है। मूल संवेदना को पकड़कर उसके अनुकूल भाषा और अन्य तत्वों का सम्यक् सृजन करना प्रसाद जी की प्रमुख विशेषता रहा है। उनके पात्र भले ही इतिहास–सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर काल्पनिक हैं, लेकिन देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में सक्षम हैं। सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करना ही कहानीकार का मूल ध्येय रहा है।

प्र०2 आकाशदीप कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तंभ, कवि, नाटककार, उपन्यासकार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद मानव–मन की भावनाओं को चित्रित करने में कुशल शिल्पी रहे हैं। उनके द्वारा लिखित कहानी आकाशदीप भी इस भावना से पृथक् नहीं है। कहानीकार ने बड़े ही नाटकीय ढंग से भाव तथा अनुभूतियों को साकार बनाने का सफल प्रयास किया है। बुद्धगुप्त को जलदस्यु और चम्पा को बंदिनी कहकर प्रसाद जी ने पाठक को उस मूल संवेदना के साथ जोड़ा है, जिससे पता चलता है कि मानव के आचरण और व्यवहार को प्रेम तथा त्याग के रास्ते पर चलाकर काफी बदला जा सकता है। वैसे भी प्रसाद जी इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय करने में सिद्ध हस्त रहे हैं।

इस कहानी की मूल संवेदना एक घटना से जुड़ी हुई है जिसके अनुसार दिखाया गया है कि प्रेम किस प्रकार कर्म पर विजय प्राप्त कर लेता है। जलदस्यु बुद्धगुप्त को दुर्दान्त बनाने में परिस्थितियों की अहम भूमिका थी, अन्यथा वह भी क्षत्रिय था। अब जलपोतों को लूटना और विरोध करने वालों की नृशंस हत्याकर देना है। उसका कर्म बन चुका था। चम्पा अपनी माँ की मृत्यु के बाद अपने पिता के साथ पोत में ही रहने लगी, जिसका उसने बार–बार उल्लेख भी किया है। एक बार जलदस्युओं ने उसके पिता के जलपोत पर हमला किया। अन्य प्रहरियों के साथ उसके पिता मणिभद्र की भी हत्या हो जाती है। मणिभद्र की कुदृष्टि चम्पा पर पड़ती है और वह उसे बन्दी बना लेता है। उसी जहाज पर बन्दी बुद्धगुप्त भी था, जो मौका लगते ही चतुराई से बन्धनमुक्त हो जाते है। जैसे ही चम्पा बुद्धगुप्त को देखती है तो समझ जाती है यही जलदस्यु मेरे पिता की मौत का कारण है। बुद्धगुप्त से घृणा करने लगती है।

इस बीच उनकी नाव एक सुनसान द्वीप से जा टकराती है। बुद्धगुप्त उस द्वीप का नाम चम्पाद्वीप रख देता है और चम्पा को समझाता है कि वह उसके पिता की मौत का कारण नहीं है। इससे चम्पा के प्रेम में और वृद्धि होती है। दोनों परिणय–सूत्र बंधते हैं। बुद्धगुप्त चाहता है कि परिणय के बाद दोनों स्वदेश वापस लौटें। लेकिन चम्पा इंकार कर देती है और बताती है कि वह संसार से विरक्त हो चुकी है। संसार की किसी वस्तु के प्रति उसके मन में कोई आकर्षण या लगाव नहीं है। इसी क्रम में एक दिन जब वह नीले समुन्द्र में जलते दीपों की परछाईं और उनकी चमक देखती है तो उसे अपनी माँ की याद आ जाती है। वह बुद्धगुप्त को जलते दीपक के सम्बन्ध में बताती है कि इसमें किसी के आने की उम्मीद भरी हुई है। चम्पा कहती है कि जब मेरे पिता समुन्द्र में जाया करते थे तो मेरी माँ ऊंचे खंभे पर दीपक जलाकर बांधा करती थी जिससे संदेश मिलता था कि कोई घर पर इंतजार कर रहा है इसलिए मैं भी निरन्तर आकाश के छितराये तारों की चमक समुन्द्र–जल में देखती हूँ।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'आकाशदीप' कहानी की मूल संवदेना प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व पर आधारित है। कहानीकार ने चम्पा के व्यक्तित्त्व एवं आचरण में प्रेम की जो झलक दिखायी है, वह कर्त्तव्य–बोध के सम्मुख फीकी पड़ जाती है। वह बुद्धगुप्त का प्यार छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है लेकिन द्वीप के लोगों का विकास करने के लिए अपनी कर्त्तव्य–भावना पर अडिग रहती है। साथ ही कहानीकार प्रसाद ने द्वीप–निवासियों द्वारा उसके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास का भाव दिखाकर उसे उत्साहित करने का प्रयास किया है। कहानी के अंत में प्रसाद जी द्वारा कहे गए वाक्य भी कहानी की मूल संवेदना को स्पष्ट करने में सक्षम हैं– "यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस द्वीप–स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, द्वीपनिवासी, उस माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी की समाधि–सदृश उसकी पूजा करते थे।"

प्र०3 कहानी–कला के आधार पर आकाशदीप की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः आकाशदीप कहानी छायावादी कवि एवं आधुनिक कहानीकार जयशंकर प्रसाद की सर्वाधिक चर्चित कहानी रही है। इसमें कहानीकार ने बड़ी ही सजगता के साथ इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य बिठाया है। प्रेम और कर्त्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर लिखी गयी यह कहानी कर्तव्य–भावना का समर्थन करती है।

साहित्य–समीक्षकों द्वारा कहानी–कला के निर्धारित तत्वों–कथानक, पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण, देशकाल और वातावरण, कथोपकथन, उद्देश्य एवं भाषा–शैली के आधार पर आकाशदीप कहानी की समीक्षा इस प्रकार की जा सकती है–

1. ***कथानक –*** आकाशदीप कहानी का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है। पाठक के मन में रह–रह कर जिज्ञासा एवं कौतूहल की भावना पनपती रहती है। बन्दी–वार्तालाप के साथ प्रारम्भ हुआ कहानी का कथानक मुक्त होने पर चम्पा और जलदस्यु बुद्धगुप्त के प्रेमालाप में बदल जाता है। पहले तो चम्पा के मन में उसके प्रति घृणा रहती है क्योंकि वह बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मानती है। परन्तु बुद्धगुप्त द्वारा मणिभद्र का षडयंत्र विफल किये जाने की बात सुनकर उसके भीतर बुद्धगुप्त के प्रति घृणा के साथ–साथ प्रेम की भावना उत्पन्न हो जाती है।यहाँ भी उनका विवेक और चातुर्य दोनों के सम्बन्धों को मधुर बनाने में सहायक होता है।

   बुद्धगुप्त चम्पा से परिणय करना चाहता है। वह स्तंभ पर दीप जलाती है। समुद्र–जल में चमकती दीपों की रोशनी में वह खो जाती है तो अचानक बुद्धगुप्त आकर चम्पा से दीपों के प्रति आकर्षण का कारण जानना चाहता है तो वह बताती है कि ये दीपक किसी के आगमन की आशा लिए रहते है। जब मेरे पिता भी समुद्र में जाया करते थे, तो नित्य शाम को मेरी माँ भी दीप जला कर टाँगा करती थी। द्वीप के निवासियों के सम्मुख चम्पा और बुद्धगुप्त का विवाह हो जाता है। बुद्धगुप्त चम्पा से भारत लौटने को कहता है, तो वह कह देती है कि तुम वहाँ जाकर सुख भोगो, मैं तो इन्ही द्वीपवासियों की सेवा में अपना जीवन लगाना चाहती हूँ। चम्पा कर्त्तव्य के सामने प्रेम का बलिदान कर देती है। इस तरह आकाशदीप कहानी की कथावस्तु काल्पनिकता का सहारा लिए हुए है, फिर भी उसमें जिस प्रकार हृदय–परिवर्तन दिखाया गया है, वह निश्चित ही सफल कहानी की ओर संकेत करता है।

2. ***पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण –*** कहानी को सफलता–असफलता की कसौटी पर परखते समय उस के पात्र एवं पात्रों के चरित्र की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। प्रसाद जी की कहानी 'आकाशदीप' में स्पष्ट रूप से दो ही पात्र सामने आते हैं– 1. जलदस्यु बुद्धगुप्त 2. चम्पा सारा घटनाचक्र इन्हीं दो पात्रों के आसपास घूमता रहता है। इनके अलावा चम्पा–बुद्धगुप्त की बातचीत में मणि भद्र का भी नाम आता है। यद्यपि वह स्वयं उपस्थित नहीं होता, लेकिन दोनों मुख्य पात्रों द्वारा उसके चरित्र का बखान किया जाता है। बड़ी ही सहजता के साथ नाटकीयता दिखाते हुए कहानीकार ने जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय–परिवर्तन को उसके चरित्र का महान गुण सिद्ध किया है, जो चम्पा के प्रेम में उलझकर अपनी स्वाभाविक वृति का तो त्याग कर ही देता है, साथ ही चम्पा द्वारा घृणा का व्यवहार किये जाने पर भी चम्पा के सामने प्यार से पेश आता है। चम्पा का चरित्र भी प्रेम, साहस एवं त्याग से भरा हुआ है। वह संकल्प की पक्की है। सेवा–भाव और कर्त्तव्य–भाव के सम्मुख बुद्धगुप्त से अपने प्रेम को त्याग देती है। मणि भद्र का घिनौना चरित्र चम्पा की आँखें खोल देता है और उसके हृदय में बुद्धगुप्त के प्रति घृणा भी कम हो जाती है। वह मान लेती है कि उसके पिता का हत्यारा बुद्धगुप्त नहीं, मणिभद्र ही है। इस प्रकार कथानक को गतिशील एवं विकसित करने में इन पात्रों एवं उनके आचरण–व्यवहार की अहं भूमिका रही है। कहीं भी पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती।

3. ***कथोपकथन या संवाद –*** कथोपकथन या संवाद कहानी को गतिशील एवं विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' का प्रारम्भ ही चम्पा और बुद्धगुप्त के वार्तालाप से हुआ है। संवाद छोटे–छोटे भी हैं और बड़े–बड़े भी; परन्तु स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है, जैसे–

"बन्दी!"
"क्या है? सोने दो।"
"मुक्त होना चाहते हो ?"
"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"
फिर अवसर न मिलेगा

× × × × ×
"यह क्या? तुम स्त्री हो?"
"क्या स्त्री होना कोई पाप है?" – अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।
"शस्त्र कहाँ है। तुम्हारा नाम?"
"चम्पा।"

4. ***देशकाल एवं वातावरण –*** कहानी की सार्थकता एवं सफलता उसकी कथावस्तु में चित्रित देशकाल एवं वातावरण की प्रस्तुति पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो आकाशदीप कहानी में ऐसे वातावरण का सृजन किया गया है, जिससे पाठक को समाज और राष्ट्र के लिए सर्वस्व त्याग की प्रेरणा मिलती है। बुद्धगुप्त एवं चम्पा के कथनों से पता चलता है कि मानव के मन में बन्धन–मुक्त होने की कितनी तीव्र लालसा होनी चाहिए। आँधी, समुद्री लहरें एवं तेज हवाएँ मानव के जीवन में आने वाली बाधाएं हैं, लेकिन हमें आशा नहीं छोड़नी चाहिए। कहने का अभिप्राय है कि देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से भी आकाशदीप एक सफल कहानी है।

5. ***उद्देश्य*** – प्रसाद की कहानी आकाशदीप ही नहीं, कोई भी कला या रचना निरुद्देश्य नहीं होती। इस कहानी में उद्देश्य को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है। इसका उद्देश्य है– मानव के भीतर विश्वास की भावना जगाना, बिना सोचे समझे किसी से घृणा न करने, गरीब असहायों की सेवा करने जैसी भावनाओं को जगाना। चम्पा के आचरण द्वारा बुद्धगुप्त के हृदय में दस्यु–वृति का त्याग करवाकर लेखक ने अपने उद्देश्य को दर्शाते हुए कहानी के अंत में कर्त्तव्य के सम्मुख प्रेम की बलि चढ़वा दी है। इससे पता चलता है कि 'आकाशदीप' कहानी अपने उद्देश्य का पोषण करने में सक्षम रही है। कर्त्तव्य की भावना को पुष्ट करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है।

6. ***भाषा–शैली*** – 'आकाशदीप' कहानी की भाषा पर कवि प्रसाद के कवि–हृदय का पर्याप्त प्रभाव रहा है। खड़ी–बोली का सहज, सरल एवं प्रांजल रूप इसमें साकार हों उठा है। तत्सम शब्दों की प्रचुरता कहानी को शिष्ट भाषा का आयाम प्रदान करती चली गयी है। कहीं–कहीं इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अस्वाभाविक–सा लगता है, परन्तु भावों की गति ने उसे अनुभव नहीं होने दिया है। कहानी की भाषा को प्रस्तुत करते समय जिज्ञासा, कौतूहल, रोचकता एवं आकर्षण बनाए रखने में शैली की प्रांजलता सजग रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानी–कला के तत्त्वों की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' एक सफल कहानी है।

प्र०4 'आकाशदीप' कहानी में नारी के त्याग एवं लोक–कल्याण की भावना मुखरित हुई है– इस आधार पर चम्पा का चरित्र–चित्रण कीजिए।

उत्तरः 'आकाशदीप' नामक कहानी प्रसिद्ध छायावादी कवि, ऐतिहासिक नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद की भावपूर्ण कहानी है। इसमें कहानीकार ने 'आकाशदीप' के माध्यम से चम्पा की माँ की आशाभरी भावनाओं को जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है। कहानी का पूरा कथानक चम्पा के क्रिया–कलापों एवं निर्णयों के आसपास घूमता रहता है। यहाँ तक कि कहानी का नामक बुद्धगुप्त भी चम्पा के सामने समर्पण किये रहता है। चम्पा का चरित्र नारी के त्याग एवं लोक–कल्याण की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह लोक–कल्याण के लिए अपने प्रेम तक का बलिदान कर देती है। उसमें साहस की कमी नहीं है, लेकिन बुद्धगुप्त को पाकर उसमें और भी वृद्धि हो जाती है। निर्णय लेने में वह देरी नहीं करती। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए चम्पा के चरित्र का आंकलन इस प्रकार किया जा सकता है–

1. ***साहसी क्षत्रिय बालिका*** – आकाशदीप कहानी की नारी–पात्र 'चम्पा क्षत्रिय बालिका है, जो किसी भी मुसीबत में साहस नहीं छोड़ती। जाहनवी नदी के तट पर स्थित चम्पा नगरी के क्षत्रिय वंश से उसका सम्बन्ध है। बचपन से ही पिता के साथ समुद्र में रहने के कारण उसका साहस और भी मजबूत हो गया था। बुद्धगुप्त के साथ हुए वार्तालापों से भी उसके इस गुण की पुष्टि होती है।

2. ***गम्भीर नारी*** – चम्पा एक गंभीर नारी है। अपने हर कदम के प्रति गंभीर रहती है। जल्दबाजी में निर्णय लेते समय भी उसके चिंतन की गंभीरता उजागर हुई है। चाहे उसके मन में बुद्धगुप्त के प्रति प्रेम–जाग्रत होने की स्थिति रही हो, घृणा का भाव रहा हो; भीतर ही भीतर सोचती रहती है। समय की प्रतीक्षा करती है। ऐसे अनेक

प्रसंग–वर्णन हैं, जहाँ चम्पा की गंभीरता को देखकर जलदस्यु बुद्धगुप्त परेशान हो उठता है।

3. ***नारी होने का स्वाभिमान –*** आकाशदीप कहानी की चम्पा नारी होने पर स्वाभिमान प्रकट करती है। कहीं भी विवश, लाचार या कमजोर नहीं दिखती। बंधनमुक्त जब बुद्धगुप्त विस्मय से कहता है कि अरे तुम तो नारी हो तो वह बिना किसी संकोच या हिचकिचाहट के इस बात को स्वीकार करती है और उल्टा प्रश्न कर देती है– क्या नारी होना कोई पाप है। परिणय–सूत्र में बँधने पर भी वह अपना स्वाभिमान नहीं छोड़ती।

4. ***सेवा व त्याग की साक्षात् मूर्ति –*** चम्पा सेवा व त्याग की साक्षात् मूर्ति है। वह किसी ऐश्वर्य–सुख–भोगने की लालसा नहीं रखती। वह द्वीपवासियों की सेवा का संकल्प लेती है, ताकि उनके जीवन स्तर को सुधारा जा सके। केवल इतना ही नहीं, बुद्धगुप्त चम्पा से परिणय के बाद भारत लौटने को कहता है तो साफ इंकार कर देती है। कर्त्तव्य को प्रमुखता देते हुए बुद्धगुप्त के प्रति अपने प्रेम का त्याग कर देती है।

5. ***कर्तव्यपालन के प्रति सजग –*** आकाशदीप कहानी को पढ़ने पर पता चलता है कि उसकी नायिका चम्पा अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहती है। एक तरफ प्रेम का दीपक है तो दूसरी तरफ कर्त्तव्य की लौ। एक सीमा तक तो वह प्रेम की दीपक हो जलाती है, लेकिन कर्त्तव्य के सम्मुख उसे छोड़ने को तैयार हो जाती है। पीड़ित आदिवासियों की सेवा को अपना कर्त्तव्य समझते हुए बुद्धगुप्त से कहती है कि मेरे लिए यह सब भूमि मिट्टी है और पानी, हवा तरल है। अग्नि की तरह मेरे मन में कोई आकांक्षा नहीं है। यह उनके मन की कर्त्तव्य–पालन के प्रति सजगता की ही भावना है।

6. ***भावुक और कोमल स्वभाव –*** चम्पा का स्वभाव भावुक और कोमल है। इसका चित्रण कहानी में अनेक स्थलों पर हुआ है, जैसे– कहानी के प्रारम्भ में दोनों बन्दियों के रूप में बुद्धगुप्त और चम्पा के बीच हुए वार्तालाप से इस गुण की झलक मिलती है। चम्पा को देखकर बुद्धगुप्त के मनोभावों के चित्रण में भी कहानीकार ने लिखा है, 'दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरूण बालिका, वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला वह थी कोमलता। 'इसी तरह बुद्धगुप्त द्वारा विश्वास की बात कहे जाने पर वह भावुक हो उठती है।

7. ***स्पष्टवादी –*** चम्पा, जो कुछ भी बोलती है, साफ बोलती है। उसके मन में किसी भय की आशंका नहीं रहती। जब बुद्धगुप्त अपनी दस्युवृत्ति छोड़ने की बात कहता है तो वह कहती है– तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी है, लेकिन तुममें करूणाहीनता, तृष्णा–भाव और ईर्ष्या वैसी ही है। वह उसे अपने पिता की हत्या का कारण कहने में भी हिचक नहीं करती। इसी तरह बुद्धगुप्त चम्पा से जब भारत लौटने की बात कहता है, तो भी वह उसे स्पष्ट जवाब दे देती है। साफ बोलने–कहने से उसका व्यक्तित्त्व चमत्कृत हो उठा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'आकाशदीप' कहानी की नायिका चम्पा नारी–जनित गुणों के साथ त्याग एवं लोक–कल्याण की भावना का प्रतीक है। अपने कर्त्तव्य–पालन के मार्ग में आने वाली प्रेम–जैसी भावना को भी त्यागने में संकोच न करने वाली चम्पा

निश्चित ही महान् पात्रा है। उसका सदाचरण एवं सद्कर्म ही उसे कहानी की नायिका के रूप में प्रतिष्ठित होने का मार्ग प्रशस्त करते दिखायी पड़ते हैं।

प्र०5 'आकाशदीप' कहानी की भाषा–संरचना पर विचार कीजिए।

उत्तरः जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित कहानी 'आकाशदीप' मनोभावों, पात्रों की सदृशयता एवं सोद्देश्यता के कारण तो चर्चित रही ही है, साथ ही उसकी भाषा–संरचना भी कम चर्चित नहीं रही। इसका कारण है कि प्रसाद जी की कवि–वाणी कहानी की भाषा को भी सरस एवं काव्यमय बनाने में सफल हुई है। वैसे भी देखा जाय, तो रचनाकार की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को पाठक तक पहुँचाने का माध्यम भाषा ही होती है। इस दृष्टि से भी आकाशदीप कहानी की भाषा–संरचना भाव–अनुभूति की कल्पना को साकार करने में सफल रही है।

प्रसाद जी की गद्य–भाषा काव्य–गुणों से प्रभावित रही है। यही कारण है कि उसमें पर्याप्त अलंकारिकता का गुण समाविष्ट हो गया है। 'आकाशदीप' कहानी की भाषा–संरचना को निम्न प्रकार से भी समझा जा सकता है–

1. ***काव्यमयी भाषा का प्रयोग*** – प्रसाद जी की कहानी आकाशदीप की गद्य–भाषा में काव्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। कहानीकार ने सहज भाषा से ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है, जो अक्सर काव्य में प्रयुक्त होती है, जैसे– तारे ढंक गये। तरंगे उद्वेलित हुई, समुद्र गरजने लगा। भीषण आंधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक–क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।' केवल यही नहीं, कितने ही ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे भाषा के काव्यमय, चमत्कारपूर्ण स्वरूप का पता चलता है।

2. ***पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग*** – आकाशदीप कहानी की भाषा–संरचना में पात्रों की अनुकूलता का विशेष ध्यान रखा गया है। यद्यपि प्रसाद जी की भाषा में विद्वता का भाव विद्यमान रहता है, फिर भी पात्रों के द्वारा प्रयुक्त भाषा अपने कथ्य को अभिव्यक्त करने में सक्षम रही है।

3. ***संस्कृतनिष्ठ खड़ी–बोली का प्रयोग*** – प्रसाद की कहानी आकाशदीप की भाषा में संस्कृतनिष्ठ खड़ी–बोली का प्रयोग हुआ है। प्रसाद जी का समग्र साहित्य है। इस प्रकार की भाषा से भरा पड़ा है। कहीं–कहीं तत्सम शब्दों के अधिक प्रयोग होने के कारण कहानी की स्वाभाविकता भी बाधित हुई है। कहानीकार तत्सम शब्दों के प्रयोग में डूबता चला गया है– "तारक खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन उधम मचा रहा था। x x x x सहसा पोत से पथ–प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा– "आँधी!"

4. ***दार्शनिक शब्दावली*** – कहानीकार प्रसाद ने 'आकाशदीप' कहानी में दार्शनिक शब्दावली का सहज प्रयोग किया है। गंभीर चिंतन में इस प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए है। सांसारिक गतिविधियों की व्याख्या–विवेचना को लेकर भी कहानी में दार्शनिक शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। बुद्धगुप्त द्वारा चम्पा के प्रति कहे गए शब्दों की व्यंजना देखी जा सकती है– "चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। x x x x पशुबल और धन

के उपासक के मन में किसी शान्त और कान्त कामना की हँसी खिलखिलाने लगी।" चम्पा कहती है– "सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है।"

5. ***शैलीगत प्रयोग –*** 'आकाशदीप' कहानी की शैली वर्णन परक तो है, लेकिन साथ ही उसकी विवेचना भी की गयी है। जिस समय कहानी के पात्र कुछ बोलते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे सब कुछ दृश्य पाठक के सम्मुख ही घटित हो रहे हैं। इस प्रकार चित्रात्मकता प्रसाद की भाषा–शैली की प्रमुख विशेषता रही है। संवादों की सुन्दर प्रस्तुति से कहानी और भी सहज एवं स्वाभाविक बन पड़ी है। कहीं–कहीं चिंतनपरक शैली भी प्रयुक्त हुई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आकाशदीप कहानी की भाषा–संरचना विषयानुकूल रही है। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजग एवं जीवंत बन पड़ी है।

0;k[;k

1

भीषण घात–प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर, अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कायर आँखें प्राण–भिक्षा माँगने लगीं।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यांश हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'आकाश–दीप' से अवतरित है। इसके लेखक हिन्दी साहित्य के आधुनिक युगीन छायावादी कवि, नाटककार एवं सुप्रसिद्ध कहानीकार 'जयशंकर प्रसाद' हैं।

राष्ट्र प्रेम की भावना से परिपूर्ण कहानी में लेखक ने जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय–परिवर्तन को प्रमुखता से चित्रित किया है। इस गद्यांश में कहानीकार ने बुद्धगुप्त और चम्पा के बन्धन मुक्त होने का वर्णन किया है। नायक और बुद्धगुप्त के द्वन्द्व युद्ध का वर्णन करते हुए प्रसाद जी कहते है कि–

व्याख्याः नाव के नायक और बुद्धगुप्त में भयानक युद्ध हुआ। दोनों ही लड़ाई में निपुण और हथियार चलाने में तेज थे। बड़ी ही कुशलता के साथ बुद्धगुप्त ने अपनी कृपाण को दांतो से पकड़ लिया। इस तरह उसने अपने दोनों हाथ खुले कर लिये। चम्पा इस दृश्य को बड़ी भय और आश्चर्य के साथ देख रही थी। इस दृश्य को देखकर नाविकों का हृदय भी प्रसन्नता से भर उठा। इसी बीच बुद्धगुप्त ने चतुराई से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और अपना दूसरा हाथ उसकी कमर में डालते हुए नीचे गिरा दिया। अगले ही क्षण प्रभातकालीन किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण तेजी से चमक उठा लेकिन भयभीत नायक डरकर बुद्धगुप्त से अपने प्राणों की भीख मांगने लगा।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने जलदस्यु बुद्धगुप्त के युद्ध–कौशल का स्वाभाविक वर्णन किया है।
2. कहानीकार ने भावानुकूल शब्दों का प्रयोग कर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है।
3. तत्सम शब्द–प्रधान खड़ी बोली का प्रभावोत्पादक प्रयोग किया है।

2

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।" – चम्पा की आँखे निस्सीम प्रदेश में निरूद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे, धवल अपांग में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र–वक्ष पर विलम्बमयी राग–रंजित संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरूण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला वह थी कोमलता।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'आकाशदीप' से लिया गया है। इसके लेखक आधुनिकयुगीन, छायावादी कवि, प्रसिद्ध नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं।

इस कहानी में लेखक ने चम्पा का सान्निध्य मिलने पर जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय–परिवर्तन का स्वाभाविक चित्रण किया है। जब बुद्धगुप्त बन्धन मुक्त होने पर चम्पा से गमन–स्थल के सम्बन्ध में पूछता है, तो वह तरीके से उत्तर देती हुई कहती है कि ... ...

व्याख्याः जो मेरे सामने प्रत्यक्ष नहीं है, मैं चाहती हूँ कि वह दिखाई ही न दे और मुझे वह स्वीकार है, जहाँ वह लेकर जाएगा। दूर–दूर तक फैले उस प्रदेश में चम्पा की नजर उद्देश्यहीन–सी लग रही थी। उसकी आँखों में कोई इच्छा की चमक भी दिखाई नहीं दे रही थी। उसके अशरीरी सौन्दर्य में बालकों की भाँति विश्वास की भावना झलक रही थी। हत्या को ही अपना व्यवसाय समझने वाला डकैत उसकी निश्छलता को देखकर काँप उठा। उस जलदस्यु के मन में भ्रमपूर्ण श्रद्धा की भावना उसे पाने के लिए हिलोरे लेने लगी। समुद्री वातावरण में विलम्बित राग से सुसज्जित सन्ध्या की चमक नाचती जान पड़ी। चम्पा के खुले केश उसकी कमर पर फैले हुए थे। भयानक और कठोर हृदय लुटेरे ने पहली बार एक अद्‌भुत सुन्दरी बालिका को देखा। आश्चर्य से वह विचार करने लगा। इस रूप–दर्शन में एक 'कोमलता' भरी नवीन आकर्षण–शक्ति का पता चला।

विशेषः

1. इस गद्यांश में कहानीकार ने चम्पा के विश्वास एवं रूप–सौन्दर्य का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।
2. हृदय की कोमलता कठोर से कठोर हृदय को भी पिघला सकती है। इस कथन की पुष्टि होती है।
3. संस्कृतनिष्ठ, तत्सममयी खड़ी बोली का प्रयोग है।
4. भाषा में सजीवता एवं सरसता है।

3

सामने जल–राशि का रजत शृंगार था। वरूण बालिकाओं के लिए हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएं में बना रही थीं और वे मायाविनी छलनाएं अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर–दूर से धीवरों की वंशी झनकार उनके संगीत–सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल–राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त–व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। इसके लेखक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध छायावादी कवि, नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। इस गद्यांश में कहानीकार ने प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण द्वारा चम्पा की मनः स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में कहानीकार प्रसाद जी कहते हैं कि ... ...

व्याख्याः जिस समय चम्पा निर्जन द्वीप पर दीपक जला रही थी, उस समय उसके सामने दूर–दूर तक चाँदी जैसी सफेदी लिए हुए पानी ही पानी तैरता नजर आ रहा था। हवा की लहरें उस पानी में द्वीप

कन्याओं के लिए हीरे और नीलम की पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण कर रही थीं। फिर वे लहरें अपना चमत्कार दिखलाती हुई केवल कल–कल की ध्वनि छोड़कर गायब हो जाती थीं। निर्जन प्रदेश में दूर से गुनगुनाते झींगुरों की आवाज वंशी की मीठी तान की तरह संगीत की सी ध्वनि लग रही थी। चम्पा ने देखा कि बहते हुए पानी की लहरों के बीच उसका कंडील अस्त–व्यस्त सा लग रहा था। लगातार उसका द्वीपों का हंडा (कंडील) इधर से उधर चक्कर काट रहा था। उसका मन उचटने लगा और चम्पा वहाँ से उठ खड़ी हुई।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने बदलते प्राकृतिक दृश्य अर्थात् समुद्री वातावरण, उसकी हलचलों से हिलते–डुलते दीपों तथा उसके साथ चम्पा की मानसिक दशा का चित्रण किया गया है।
2. भाषा में संस्कृतनिष्ठता के साथ–साथ आलंकारिक चमत्कार पैदा करने वाले शब्दों का प्रयोग किया गया है।
3. तत्समपूर्ण शब्दावली में दार्शनिक विचारों के साथ–साथ मानव–जीवन की व्यवहार सम्मत प्रस्तुति की गयी है।
4. कहानी की भाषा सरस काव्यभाषा का गुण लिए हुए है।

4

मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गयी हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम् में मुस्कराने लगी। पशु बल और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और कान्त कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'आकाशदीप' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध छायावादी कवि, नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद जी हैं। इसमें कहानीकार ने बुद्धगुप्त और चम्पा के हृदय–परिवर्तन, प्रेम, त्याग और राष्ट्रीय मोह का चित्रण किया है। इस अवतरण में कहानीकार बुद्धगुप्त की भावनाओं का वर्णन करते हुए कहता है कि ... ...

व्याख्याः बुद्धगुप्त कहने लगा कि मेरी किसी ईश्वर के प्रति आस्था नहीं है इसलिए मैं उसे नहीं मानता। मेरी दृष्टि में पाप भी कुछ नहीं है और दया जैसी भावना भी मेरी मान्यता में नहीं है। जहाँ ईश्वर, पाप–पुण्य और दया की बात की जाती हैं, मैं ऐसे किसी लोक में विश्वास नहीं करता हूँ। लेकिन मेरे हृदय में एक कमजोरी पैदा हो गयी, जिसके प्रति मेरी श्रद्धा जग गयी है। जहाँ मैं दुनिया को शून्य समझ बैठा था, वहाँ अचानक तुम्हारे भूले भटके तारे की तरह आगमन से चेतना जाग गयी है। रोशनी की एक किरण इस घने अंधकार में मुस्करा रही है। जहाँ मेरा मन पशु–बल और धन की उपासना करता था, उसमें शान्त और कान्त मुस्कराहट खिल उठी अर्थात् दुनिया आकर्षक लगने लगी, लेकिन उस वातावरण में मुझे खुशी का लाभ नहीं मिल सका अर्थात् उससे बचता रहा।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने दार्शनिक भावना प्रकट की है। साथ ही वातावरण के प्रभाव को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है।

2. भाषा में काव्यात्मकता और आलंकारिकता का प्रयोग है।

3. तत्सम शब्दों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया गया है।

5

मेरे लिए सब मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यांश हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'आकाशदीप' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध छायावादी कवि, नाटककार एवं कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं। इस कहानी में प्रसाद जी ने निर्जन द्वीप पर जलदस्यु बुद्धगुप्त और चम्पा के आचरण एवं व्यवहार में परिवर्तन दिखाया है। प्रस्तुत गद्यांश में जब बुद्धगुप्त चम्पा के साथ परिणय के बाद स्वदेश वापसी के लिए कहता है तो वह कहती है कि मैं इन्हीं आदिवासियों के साथ जीना चाहती हूँ। मेरी सुख–भोग में कोई रूचि नहीं है। वह कहती है कि ... ...

व्याख्याः हे बुद्धगुप्त! मेरे लिए सांसारिक सुख–सुविधाएं मिट्टी के समान हैं। सारा जल सागर के समान तरल है जिसमें कहीं भी ठहराव नहीं है। समस्त प्रवाहित हवाएँ शीतल हैं अर्थात् सुखमय हैं। अब मेरे हृदय में आग की तरह कोई जलती हुई इच्छा शेष नहीं है अर्थात् मैं कुछ नहीं चाहती। मेरे लिए सम्पूर्ण दुनिया शून्य है, अर्थहीन है। इसलिए हे प्रिय नाविक! मैं चाहती हूँ कि तुम अपने देश भारत वापस चले जाओ और वहाँ जाकर सुविधाओं का सुख पाओ। मुझे यहीं इन कमजोर और गरीब लोगों के दुःखों में सहभागी बनने के लिए छोड़ दो। मैं चाहती हूँ कि इन गरीबों की सेवा करूँ।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने चम्पा के हृदय की उदारता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

2. सहानुभूति और सेवा को मानवता का महान् गुण माना है।

3. भाषा में दार्शनिकता का पुट है।

4. तत्सम् शब्दों का काव्यात्मक प्रयोग किया गया है।

5. शैली वर्णनात्मक, सहज और सरल है।

करवा का व्रत

यशपाल

प्र०1 यशपाल के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए?

उत्तरः **जीवन–परिचयः** हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार यशपाल का जन्म पंजाब राज्य के फिरोजपुर छावनी में 3 दिसम्बर सन् 1903 ई० को हुआ। इनकी माता प्रेमदेवी तथा पिता हीरालाल संस्कारवान थे, जिनका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर साफ झलकता है। गुरूकुल कांगड़ी (हरिद्वार) से प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने वाले यशपाल की शिक्षा डी०ए०वी० स्कूल, लाहौर तथा फिरोजपुर में हुई। इसी बीच इनका झुकाव राष्ट्रीय–आन्दोलन की ओर हो गया। शहीद भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों के साथ कार्य करते हुए इन्हें जेल भी जाना पड़ा। भारतीय स्वतंत्रता के बाद यशपाल लखनऊ में स्थायी रूप से बस गए और लेखन को आजीविका का साधन बना लिया। आर्य समाज के प्रचारक के रूप में भी कुछ दिन तक कार्य किया। 7 अगस्त 1936 ई० को इनका विवाह बरेली जेल में प्रकाशवती के साथ हुआ। आजादी के बाद इन्होंने कई विदेशी यात्राएँ भी कीं। सन् 1969 में इन्हें सोवियत–भूमि नेहरू पुरस्कार प्रदान किया। सन् 1976 में यशपाल का देहावसान हो गया।

प्रमुख रचनाएंः प्रगतिशील विचारधारा के लेखक यशपाल ने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक एवं यात्रा–विवरण आदि की रचना कर हिन्दी साहित्य की विपुल सेवा की है। इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं–

उपन्यास – दादा कामरेड, मनुष्य के रूप, झूठा–सच, दिव्या, बारह घण्टे, अमिता एवं अप्सरा का श्राप आदि।

काव्य–संग्रह – पिंजरे की उड़ान, अभिशप्त, भस्मावृत चिनगारी, फूलों का कुर्त्ता, तर्क का तूफान, धर्मयुद्ध, चित्र का शीर्षक, तुमने क्यों कहा था एवं सच बोलने की भूल आदि।

नाटक – नशे–नशे की बात, रूप की परख, गुडबाई दर्दे दिल। इनके अलावा 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' एवं 'राहबीती' यशपाल के चर्चित यात्रा–विवरण हैं।

कृतित्व की विशेषताएं (साहित्यिक विशेषताएं): भारतवर्ष की आजादी से 'पूर्व' तथा 'बाद' की परिस्थितिजन्य गतिविधियों को लेकर सजगता के साथ लेखनी चलाने वाले कथाकार यशपाल के कृतित्व में निम्न विशेषताएं मिलती हैं–

1. ***सामाजिक यथार्थ का चित्रण*** – यशपाल की कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रमुखता से हुआ है। उनकी रचनाओं में बिना किसी आकर्षण–विकर्षण के समाज के विभिन्न धरातलों पर घटित होने वाली समाज–विरोधी घटनाओं को सर्वाधिक अहमियत दी गयी है। 'करवा का व्रत' नामक कहानी इस प्रकार के चित्रण का उदाहरण है, जिसमें लेखक ने पति–पत्नी के सम्बन्ध को लेकर समाज की धारणाओं का यथार्थ चित्रण किया है।

2. ***प्रगतिशील विचारों का समर्थन –*** कहानीकार ने अपनी कहानियों में प्रगतिशील विचारों का समर्थन किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के नाम पर गरीब जनता के शोषण का भी विरोध करते हुए मार्क्सवादी विचारधारा को आगे बढ़ाया है। सामाजिक शोषण को लेकर यशपाल उग्र हो उठते हैं। बार–बार उन्होंने समतामूलक समाज की स्थापना पर बल दिया है। मुनाफे के नाम पर छीना–झपटी तथा भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों को लेकर भी वे सजग रहे हैं। उनकी प्रगतिशीलता न केवल पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में झलकती है, अपितु सामाजिक व्यवस्था में भी इसका प्रभाव रहा है। तभी तो 'करवा का व्रत' कहानी की लाजो पति के अत्याचारों का विरोध करती हुई कह उठती है, "मार ले, मार ले! जान से मार डाल! पीछा छूटे! आज ही तो मारेगा! मैंने कौन व्रत रखा है तेरे लिए जो जनम–जनम मार खाऊँगी। मार, मार डाल ...।"

3. ***धर्म के नाम पर अन्धविश्वासों का विरोध –*** कहानीकार यशपाल के विचारों में प्रगतिशीलता का प्रभाव था और चिंतन में सहज भावना थी। वे चाहते थे कि समाज में धर्म के नाम पर शोषण की परम्परा बन्द हो। इसीलिए उन्हें उन अन्धविश्वासों पर विश्वास नहीं था, जो जीवन को अज्ञानता या पतन की ओर ले जाते हैं। धर्म की ओट में होने वाला अनाचार एवं शोषण भी उन्हें स्वीकार्य नहीं था। यही कारण है कि उनकी कहानियों में धर्म को जीवन–दर्शन के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया है। रूढ़िगत परम्पराओं से धर्म की दिशा विकृत होती है और उसमें द्वेष भी पनपने लगता है। 'करवा का व्रत' कहानी में भी लेखक ने व्रत–उपवास के नाम पर पति–पत्नी के सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की भावना पैदा करने का सार्थक प्रयास किया है। कुरीतियों का खोखलापन उनकी कहानियों में प्रमुखता से उभरा है।

4. ***मानवीय करुणा की भावना –*** यशपाल जी कहानियों में मानवीय करुणा की भावना मिलती है। उनका संवेदनशील हृदय इंसान को दुखी, व्यथित या परेशान देखकर बोल उठता है। 'करवा का व्रत' कहानी में जब लाजो का पति अपने मित्र की बातों में फँसकर मारता–पीटता है, अशिष्ट व्यवहार करता है तो लाजो के हृदय के माध्यम से कहानीकार द्रवित हो उठता है कहानी के अंत में पति की भावनाओं में व्यक्त परिवर्तन भी उनकी इस भावना का प्रतिपादक है।

5. ***कलापरकता –*** कहानीकार का दृष्टिकोण कलापरक रहा है क्योंकि वे एक सफल चित्रकार भी थे। बड़ी ही कलात्मक प्रतिभा के साथ साधारण से साधारण कथा–विषय को चमत्कृत कर देना उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति की विशेषता है। भाषायी कलापरकता का एक गुण और सामने आता है– वह है पीड़ा एवं असहनीय कष्ट की स्थिति में भी शिष्ट शब्दावली का प्रयोग करते हैं। कहीं–कहीं यथार्थ–चित्रण में अवश्य उनकी कलात्मक भाषा कटु हो जाती है। व्यंग्यात्मक चित्रण भी कल्पना के साथ कलात्मक रूप लिए हुए है। उद्धरण शैली अवलोकनीय है।

6. ***कहानी–कला के तत्वों का समुचित समावेश –*** कहानी–कला के जो छह तत्व–कथानक या कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, देशकाल एवं वातावरण, उद्देश्य तथा भाषा शैली माने गए हैं, यशपाल की कहानियों में इन सभी का समुचित प्रयोग किया गया है। कहानियों की कथावस्तु यथार्थपरक होते हुए भी शिष्टता से पोषित है। पात्रों की मानसिकता एवं आचरणगत भद्रता सर्वत्र झलकती है। भाषा–विधान के माध्यम से कहानीकार अपने उद्देश्य तक पहुँचने में सफल रहा है। पात्रों के संवाद समसामयिक एवं देशकाल के अनुरूप रहे हैं। मध्यवर्गीय समाज को लेकर कहानी लिखने वाले यशपाल एक सफल कहानीकार रहे हैं। समाज की प्रत्येक विचारधारा उनकी कहानियों की आधार भूमि रही है। प्रगतिशीलता का प्रभाव

उनकी सभी कहानियों में मिलता है। 'करवा का व्रत कहानी भी कहानी–कला के तत्वों की दृष्टि से सर्वथा सफल कहानी है। परम्परागत रुढ़ियों से मुक्ति की लालसा ही नहीं, सकारात्मक प्रयास भी सहज और स्वाभाविक बन पड़े हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानीकार यशपाल सामाजिक यथार्थ के चितेरे कहानीकार हैं। वे आदर्शों को व्यावहारिक धरातल पर असली जामा पहनाना चाहते हैं। उन्हें कुण्ठित मन की मौन–भावना भी बोझिल लगती है, परन्तु साथ ही वे प्रेम की सक्रियता के लिए इसे आवश्यक भी मानते हैं। भौतिकतावाद से प्रभावित होकर भी कहानीकार बलात् सुख की कामना नहीं करता। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता के चित्रण में प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का रूप उत्तम बन पड़ा है। अस्तु यशपाल प्रगतिशील एवं यथार्थवादी कहानीकार रहे हैं।

प्र०2 यशपाल द्वारा लिखित कहानी 'करवा का व्रत' समाज की किस समस्या की ओर संकेत करती हैं स्पष्ट कीजिए?

उत्तरः 'करवा का व्रत' कहानी में कहानीकार यशपाल का आर्यसमाजी दृष्टिकोण है। कहानीकार ने बड़ी सजगता से पुरूष प्रधान भारतीय समाज में नारी के साथ देने वाले कारणों में हमारे धार्मिक अन्धविश्वासों की प्रमुख भूमिका रही है। इस प्रकार के अन्ध विश्वास समाज में जड़ता को जन्म देते हैं। इसी जड़ता के कारण समाज के सदस्य भविष्य की चिन्ता में अपने वर्तमान को भी खराब कर लेते हैं। धार्मिक संस्कारो में बँधकर लोग अपने प्राणों की आहुति तक देने में संकोच नहीं करते।

'करवा का व्रत' कहानी में भारतीय नारी की सहनशीलता और पुरूष द्वारा नारी पर किये अत्याचारों को चित्रित किया गया है। भारतीय नारी पति से परेशान होकर भी उसके मंगल दीर्धायु एवं जन्म जन्मान्तर तक पति रूप में पाने के लिए 'करवा का व्रत' रखती है। सुबह से लेकर रात में चाँद निकलने तक भूखी रहती है जबकि कहीं पति आकर न केवल जीभ से ताहने देता है अपितु शारीरिक प्रताड़ना भी देता है। दूसरे व्रतों को न करने वाली शिक्षित नारियां भी इस व्रत का नियम से पालन करती हैं। कहानी की नायिका लाजो भी ऐसी ही नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।

लाजो का पति कन्हैया लाल बड़ी उम्र में विवाह करता है। मित्र उसे सलाह देते हैं कि स्त्री को पहले ही दिन से ताड़ना देकर रखने में भलाई है वरना वे सिर पर चढ़कर बोलती हैं। वह इस सब बातों को सच समझ लेता है। लाजों को प्यार और दुलार की जगह मिलती है– आए दिन की मारपीट। दुत्कार और कठोर व्यवहार मानो उसके साथी ही बन गए हैं। कन्हैयालाल की पत्नी लाजो पास–पड़ौस की औरतों की तरह करवा चौथ का व्रत रखकर पति से सरगी का सामान लाने की बात कहती है, आग्रह करती है। परन्तु शाम के समय जब उसका पति घर लौटता है तो जानबूझकर सरगी का सामान नहीं लाता। लाजो दुःखी होकर आँसू बहाने लगती है फिर भी काम नहीं छोड़ती। उसका पति अपनी गलती तो मानता ही नही, उल्टी डांट–फटकार ओर लगाने लगता है। फिर भी लाजो बिना सरगी खाये पति के लिए करवा का व्रत रखती है। उसका मन आन्दोलन करता है। एक तरफ पति का प्रताड़नापूर्ण व्यवहार है तो दूसरी तरफ व्रत का अनुष्ठान। भूख से व्याकुल शरीर रह–रहकर लाजो को आन्दोलित करता है। विद्रोह के लिए प्रेरित करता है। पति का निर्दय व्यवहार लाजो के मन को और भी चेतना देता है। वह सोचती है कि जिस पति ने इस जीवन में सुख नहीं दिया तो उसके साथ जन्म जन्मान्तर के सम्बन्ध की साधना करना निरर्थक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि संसार के सभी प्राणी प्यार और सम्मान के भूखे हैं। लाजो भी अलग नहीं है नहीं चाहिए उसे ऐसा पति अगले जन्म में। इन सभी अन्तर्द्वन्द्वों के बीच वह व्रत भंग करने का निश्चय कर लेती है और पति के नाश्ते से बची ठण्डी रोटी खाकर पानी पी लेती है। संध्या के समय पति के द्वारा गुस्सा दिखाए जाने पर और हाथ उठाए जाने पर लाजो सारा संकोच छोड़ विद्रोह कर देती है। संस्कारों को तिलांजलि दे देती है। इससे कन्हैयालाल हैरान रह जाता है। लाजो के इस व्यवहार से नारी के प्रति बँधी–बँधाई जड़ता (परम्परा) टूटती नजर आती है। वहीं कन्हैयालाल लाजो के प्यार और दुलार को समझकर उसके साथ करवा का व्रत रखने की बात करता है, सरगी खाने के लिए तैयार होता है। इस पर लाजो उसे समझाती है कि पुरूष करवा का व्रत नहीं रखते परन्तु कन्हैया कहता है कि अगर अगले जन्म में तुम्हें मेरी जरूरत है तो मुझे भी तुम्हारी जरूरत है। पति के इस बदले व्यवहार पर लाजो का चेहरा खिल उठता है।

इस प्रकार कहानीकार ने अपनी इस कहानी के माध्यम से नारी के खोए स्वाभिमान को जगाने का प्रयास किया है। मिथ्या धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति चेतना जगाई है। जीवन में व्याप्त विसंगतियों को उभारा है। यशपाल जी ने जीवन में अपनी गहरी निष्ठा और व्यावहारिक समझ को नए संदर्भ दिए हैं। नारी–जीवन की व्यावहारिक समस्या के प्रति विद्रोह प्रस्तुत कर लेखक ने आधुनिक युग–बोध का समर्थन किया है। यह ठीक है कि करवा का व्रत हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा से जुड़ा है परन्तु इसके नाम पर मंगल की कामना करने वाली लाजो जैसी नारियों को प्यार और दुलार की आवश्यकता है न कि फटकार और मारपीट की। स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों को लेकर भी कहानी आधुनिक भावबोध से जुड़ी रही है। आधुनिक तेवरों की झलक भी इस कहानी में विद्यमान है।

प्र०3 कहानी कला के तत्वों के आधार पर 'करवा का व्रत' कहानी की समीक्षा कीजिए।

अथवा

उद्देश्य की दृष्टि से यशपाल की कहानी 'करवा का व्रत' एक सफल कहानी है, सिद्ध कीजिए।

उत्तरः प्रत्येक रचना उद्देश्यपूर्ण होती है परन्तु उस उद्देश्य को पाने के लिए रचनाकार क्या कहता है किस प्रकार कहता है, इन तथ्यों की प्रमुख कसौटी पर उस रचना को परखा जाता है। साहित्य शास्त्रियों के द्वारा कहानी कला के जो तत्व निर्धारित किये गए हैं, उनमें– कथावस्तु (कथानक) चरित्र–चित्रण एवं पात्र, संवाद, देशकाल एवं वातावरण, उद्देश्य, तथा भाषा शैली प्रमुख हैं।

यशपाल जी द्वारा लिखित कहानी 'करवा का व्रत' एक सोद्देश्य कहानी है जिसमें समाज के धरातल पर व्यास स्त्री–पुरूष सम्बन्धों की विसंगति को उभारा गया है। कहानी–कला के तत्वों के आधार पर इसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता हैः

1. ***कथानक –*** कहानी का प्रारंभ कन्हैयालाल के दफ्तर के मित्रों के परिचय के साथ होता है। यद्यपि वह अपने मित्रों से उम्र में बड़ा है लेकिन उसका विवाह बाद में हुआ है। विवाह से लौंटने के बाद कन्हैया के मित्र उससे तरह–तरह से प्रश्न पूछते हैं, सलाह देते हैं। उनमें उसका एक समझदार मित्र हेमराज भी है जो कहता है कि स्त्री पर पहले दिन ही ऐसा प्रभाव छोड़ना चाहिए कि वह जीवन भर सिर न उठा सके। पुरुष ऐसा नहीं कर पाते, वे जीवनभर पत्नी का गुलाम बने रहने को विवश रहते हैं मित्रों की

बात का कन्हैयालाल पर इतना असर होता है कि वह अपनी नवविवाहिता पत्नी लाजो (लाजवन्ती) के प्रति कठोर व्यवहार करने लगता है। वह कुछ भी कहती है, बदले में डाँट–डपट ही मिलती है। कभी–कभार तो हाथ उठाने की नौबत भी आ जाती है। इस प्रताड़ना भरे व्यवहार से लाजो का मन दुःखी हो जाता है। दिनोंदिन कन्हैया का व्यवहार लाजो के लिए मुसीबत का कारण बनता चला जाता है। कन्हैयालाल का मित्र हेमराज उसके मन को बिगाड़ता रहता है।

पति के इस कठोरता भरे व्यवहार से लाजो को शारीरिक मार भी झेलनी पड़ती है और अपमान भी सहना पड़ता है। यहाँ तक कि वह पति से कुछ भी कहने में संकोच करने लगती है। एकांत पाकर आँसू बहा लेती है। बीच–बीच में दुःखों को भूलकर हँसी–खुशी के साथ जीवन जीने का प्रयास करती है।

इसी उठा–पटक में एक वर्ष बीतता है। 'करवा चौथ' का व्रत आता है। पड़ौस की सभी स्त्रियाँ अपने–अपने पतियों के मंगल तथा दीर्घायु की कामना के लिए व्रत रख रही हैं। लाजो का भाई भी आकर सरगी के लिए दो रूपये दे गया था। लाजो कन्हैया को सरगी का सामान लाने के लिए कहती है परन्तु कन्हैया के मित्र उससे लंच में सवा तीन रूपये खर्च करवा लेते हैं और बिना सरगी लिए ही शाम को घर आ जाता है। लाजो को बुरा लगता है। कन्हैया समझाने की बजाये धमकाता है और दो हाथ लगाने की बात करता है। इससे लाजो का मन और भी दुःखी हो जाता है फिर भी दफ्तर जाते पति के लिए खाना बनाकर देती है। रोते–रोते उसके मन में प्रश्न उठता है कि वह जिस पति के लिए मंगल–कामना कर रही है, दीर्घायु होने का आशीर्वाद चाह रही है, उसका इतना रूखा और कठोर–व्यवहार। जिसके साथ रहकर इस जन्म में मार और अपमान के सिवा कुछ नहीं मिला, उसे जन्म–जन्मान्तर तक पाने की लालसा निरर्थक है।

शाम के समय कन्हैयालाल दफ्तर से लौटता है तो लाजो को सोती हुई देखकर क्रोधित हो उठता है। किवाड़ खटखटाते रहने पर उसका अहं जाग उठता है। थप्पड़ मारता है परन्तु जैसे ही मारने के लिए लात उठाने की कोशिश करता है, उसी समय लाजो भी क्रोधित हो उठती है। वह कहती है कि रोज–रोज की मार से तो एक दिन मर जाना ही अच्छा है। कम से कम आए दिन के अपमान से तो छुटकारा मिलेगा। गुस्से में वह यह भी कह जाती है कि उसने कौन–सा तुझे दूसरे जन्म में पाने के लिए व्रत रखा है। अर्थात् मैंने व्रत रखा ही नहीं। लाजो के इस व्यवहार से कन्हैयालाल की आँखें खुल जाती हैं। चिन्तामग्न कन्हैया घर से निकलकर बाहर चला जाता है और लाजो फर्श पर लेटी रोती रहती है।

बाद में लाजो उठती है। बिना मन कन्हैया के लिए खाना तैयार करती है। वह भी आकर बिना मन के ही दो रोटी खाकर उठ जाता है। बाद में जब लाजो उस खाने को खाती है तो हैरान रह जाती है क्योंकि, सब्जी में नमक बहुत ज्यादा था फिर भी कन्हैया ने कुछ भी नहीं कहा। और दिन तो इतनी–सी गलती सारा नजारा ही बदल दिया करती थी। अब तो उसके व्यवहार में इतना बदलाव आ गया कि घर से सभी कामों में लाजो का साथ देने लगा, इस सबको देखकर उसे अचंभा लगता है। केवल इतना ही नहीं, अगले करवा चौथ के व्रत पर सरगी का सामान लाकर देता है और व्रत न रखने की जिद करता है परन्तु लाजो नहीं मानती तो कन्हैयालाल भी व्रत

रखता है उसके दफ्तर जाने पर लाजो सोचती है कि उसके पति का पहला रूप और भूखा दफ्तर जाने वाला आज का रूप। एक तरफ उसे शर्म आती है तो दूसरी तरफ उसे अच्छा भी लगता है। इस प्रकार कहानी का कथानक समसामयिक है।

2. ***पात्र एवं चरित्र–चित्रण –*** यशपाल द्वारा लिखित इस कहानी के तीन प्रमुख पात्र हैं– लाजो (लाजवन्ती), कन्हैयालाल (नायक) और उसका मित्र हेमराज। कहानीकार ने प्रमुखता से लाजो एवं कन्हैया के चरित्र को उभारा है। हेमराज अपनी वाक्पटुता से कन्हैया को भड़काता है। कन्हैया ऐसा पात्र है जो अपने मित्र की सलाह में उलझकर अपनी पत्नी को तंग करता है। दफ्तर में बड़ा होने के कारण भी उसके मित्र उसका मजाक कर लेते हैं। उसका विवाह लाजो नामक पढ़ी–लिखी युवती के साथ हुआ है। बिना सोचे समझे मित्र की सलाह मान लेता है कि स्त्री को डरा–धमका कर रखना चाहिए, नहीं तो सिर पर चढ़कर बोलती है। पढ़ी–लिखी तो और भी ज्यादा। दूसरों की सीख में आकर अपने वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ को तनावों से भर लेता है। अपनी पत्नी के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करता है। जरा–जरा सी बात पर पत्नी को मारने पीटने पर उतारु हो जाता है। कदम–कदम पर अधिकार जमाता है। अपने पौरुषत्व के घमण्ड में अपनी पत्नी को अपमानित करता रहता है। उसकी इच्छा पूरी करने में अपनी तौहीन समझता है। लेकिन एक दिन लाजो का विद्रोही व्यवहार उसके हृदय को बदल देता है और अपने व्यवहार द्वारा लाजो का दिल जीत लेता है।

कहानी की नायिका लाजो का व्यवहार अपने पति के प्रेम समर्पण का भाव लिए हुए है। वह चाहती है कि उसका पति उसकी भावनाओं को समझे और उसकी आकांक्षाओं को पूरा करे। पति के अपमान और प्रताड़ना भरे व्यवहार से वह दुःखी हो उठती है। धार्मिक व्रत और अनुष्ठानों में विश्वास रखती है। वह भी चाहती है कि पड़ौस की स्त्रियों की भांति वह भी अपने पति की मंगल–कामना के लिए करवा–चौथ का व्रत करे, परन्तु उस समय विद्रोह कर उठती है जब कन्हैयालाल व्रत का सामान तो लाता ही नहीं है। दरवाजा खोलने में जरा–सी देर होने पर मार–पीट पर उतारू हो जाता है। वह सोचती है कि व्रत रखकर जिस पति के मंगल की कामना की जा रही है, जन्म जन्मान्तर तक सम्बन्ध बनाए रखने की कामना की जा रही है, वहीं पति प्रताड़ित कर रहा है तो इन सब आडम्बरों से क्या लाभ ? इसका मतलब यह नहीं कि धर्म कर्म में उसकी आस्था नहीं है। वह एक आदर्श पत्नी है। घर की मान–मर्यादा को बनाए रखना चाहती है। साथ ही अपने व्यवहार द्वारा कन्हैयालाल को अपने अनुसार ढालने में कामयाब हो जाती है।

3. ***कथोपकथन या संवाद –*** 'करवा का व्रत' कहानी में लेखक ने संवादों के प्रयोग में सावधानी बरती है। विषय और समय के अनुकूल ही संवाद प्रयोग में आए हैं। अधिकतर संवाद कन्हैयालाल और उसकी पत्नी लाजो के बीच रहे हैं। छोटे–छोटे संवाद प्रभाव डालने में सक्षम रहे हैं। कहानी को गति देने तथा पाठक–हृदय के लिए ग्रहणीय बनाने में संवादों की प्रमुख रही है, एक तरफ भावुकता है तो साथ ही परिपक्वता की झलक भी मिलती है। पात्रों के चरित्र को पाठक के सम्मुख उपस्थित करने में भी संवाद सक्षम रहे हैं। संवाद केवल कथानक को आगे बढ़ाने के लिए प्रयुक्त नहीं हुए हैं अपितु गंभीर मनोदशा को भी उजागर करते हैं। इसी प्रकार संवादों के प्रयोग में पात्रानुकूलता का सम्यक ध्यान रखा गया है।

4. ***देशकाल एवं वातावरण*** – 'करवा का व्रत' कहानी के घर के कमरे में घटित होती है जिसमें समाज के प्रमुख घटक परिवार में पति–पत्नी के व्यवहार को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। यही कारण है कि समाज सापेक्ष इस कहानी में एक ही स्थान पर वर्तमान समस्या का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। कहानीकार ने ऐसा वातावरण तैयार किया है जिसमें लाजो (नारी) को अपने पति (पुरूष) के अत्याचार एवं प्रताड़ना भरे व्यवहार के खिलाफ विद्रोह करना पड़ता है। उसे न चाहते भी व्रत तोड़ना पड़ता है। कहने का अभिप्राय है कि यशपाल जी ने नारी के जीवन को प्रभावित करते शारीरिक एवं मानसिक तनाव को गति प्रदान की है। साथ ही लेखक ने झटके के साथ तनाव को दूर कर दिया है। घर से बाहर जाकर लौटने पर अचानक कन्हैयालाल लाजो के विरोध के बारे में सोचकर बदल जाता है। कहने का अभिप्राय है कि कहानीकार ने देशकाल एवं वातावरण का उचित ध्यान रखा है। यही कारण है कि कहानी में सहजता और स्वाभाविकता है।

5. ***भाषा–शैली*** – यशपाल जी द्वारा लिखित इस कहानी की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली तत्सममयी उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों से पुष्ट भाषा है। कहानीकार ने लोक प्रचलित शब्दों के विषय वस्तु को सहज एवं सरल बनाने के लिए प्रयोग करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। शैली की दृष्टि से छोटे–छोटे संवाद अपनाकर कथानक की विवेचना करता चला गया है। सामान्य स्तर की भाषा पाठक के मन में रूचि पैदा करने में सक्षम है। कहीं–कहीं वाक्य–विन्यास जिज्ञासा एवं कौतूहल भाव जगाने में सक्षम जान पड़ता है जैसे– 'आखिर तो मनाएंगे ही पर कन्हैया मनाने की अपेक्षा डाँट ही देता।' 'अवसर की बात' आदि। कहने का अभिप्राय है कि कहानी में शब्द और वाक्य बोझिल या हठात–प्रयोग से परे रहे हैं। छोटे–छोटे वाक्यों में कहानीकार अपनी अभिव्यंजना को गति देने में सफल हुआ है। वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित होते हुए भी कहानी निरंतर आगे बढ़ती रही है।

6. ***उद्देश्य*** – प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है। यशपाल जी भी इससे अछूते नहीं है। उनकी 'करवा का व्रत' कहानी एक उद्देश्यपूर्ण कहानी है जिसमें सजग कहानीकार ने समाज में पति–पत्नी के सम्बन्धों में सहयोग, पारस्परिक प्रेम एवं सम्मान तथा विश्वासपूर्ण समर्पण की भावना को जगाने का प्रयास किया है। लेखक चाहता है कि पुरूष को नारी के प्रति प्रताड़ना एवं अत्याचार की भावना नहीं रखनी चाहिए। साथ ही हेमराज जैंसे गलत सलाह देने वाले लोगों से भी सावधान रहने की जरूरत है। किसी की सीख मानते हुए अपनी बुद्धि का दरवाजा भी खुला रखना चाहिए, तभी कन्हैयालाल जैसे पुरूष लाजो जैसी समर्पित एवं सुशील नारी के विद्रोह से स्वयं को बचा सकते है। झूठा रौब जमाने तथा मनमाने ढंग से पत्नी को सताने वाले पुरुषों की मूर्खता को उभारना भी कहानी का उद्देश्य रहा है ताकि समाज में पति–पत्नी का व्यवहार–प्रेम, समर्पण, तथा विश्वास से भरा बन सके। साथ ही कहानीकार बताना चाहता है कि जीते जी दुःखी रहकर जन्म–जन्मान्तर तक साथ निभाने के लिए धार्मिक आडम्बरों का कोई फायदा नहीं है। इस तरह पति–पत्नी के कर्त्तव्यों को उजागर करते हुए समाज में सुखी तथा स्वस्थ परम्परा की नींव डालना भी कहानी का उद्देश्य रहा है। कन्हैयालाल का हृदय परिवर्तित कराकर लाजो जैसी पति प्रताड़ित नारियों के मन में विश्वास की भावना जगाई है। अतः करवा का व्रत एक सफल कहानी है।

प्र०4 'करवा का व्रत' कहानी के भाषा–पक्ष पर विचार कीजिए।

उत्तरः 'करवा का व्रत' हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार यशपाल की सामाजिक समस्यामूलक कहानी है। इसमें कहानीकार ने लाजो और उसके पति कन्हैयालाल के व्यवहार का चित्रण कर उजागर किया है कि पुरूष अपने अहं को सन्तुष्ट करने के लिए नारी को प्रताड़ित करने का कोई मौका नहीं चूकना चाहता। नारी सामाजिक मर्यादा के भय से उसके अत्याचारों को सहन भी करती है, लेकिन एक सीमा के बाद उसका स्वाभिमान उसे विद्रोह के लिए बाध्य कर देता है और वह बदले हुए स्वभाव के साथ क्रान्ति का संकेत देती है।

इस कहानी में लेखक ने भावों को व्यक्त करने के लिए सार्थक भाषा का प्रयोग किया है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उसके पास विषय–सम्मत और पात्र–सम्मत शब्दों की कमी है। वैसे भी भाषा भावाभिव्यक्ति का सशक्त साधन है। कहानीकार यशपाल का धारा प्रवाह भाषा पर पूरा अधिकार रहा है। देशन शब्दावली का प्रयोग कर लोक–भाषा के ज्ञान को पुष्ट किया है। सजीवता एवं सशक्ता लिए यशपाल की भाषा सारगर्भित रही है। 'करवा का व्रत' कहानी का भाषा–पक्ष निम्न प्रकार से भी समझा जा सकता है–

1. ***सहज एवं सरल भाषा –*** कहानी को पाठकों के लिए पठनीय बनाने में भाषा की सहजता एवं सरलता प्रमुख साधन होती है। जब तक भाषा पढ़ने वाले की समझ में नहीं आएगी तो उसका प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। असहज एवं कठिन भाषा पठनीय वस्तु से पाठक को दूर कर देती है और कहानी से ही नहीं; साहित्य के प्रत्येक विद्या से पाठक दूर भागने लगता है। यशपाल द्वारा 'करवा का व्रत' कहानी की भाषा सहज एवं सरल है जिसे पढ़ते–पढ़ते ही पाठक समझता चला जाता है। अधिक मानसिक चिंतन भी नहीं करना पड़ता।

2. ***मुहावरों एवं लोकोक्तियों से पुष्ट –*** 'करवा का व्रत' कहानी मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है, जिसमें पति–पत्नी के तनावपूर्ण व्यवहार को ध्यान में रखते हुए कहानीकार नारी द्वारा पति के मंगल की कामनार्थ रखे गए व्रत को परिवर्तन का माध्यम बनाया है। अपने कथनों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कहानीकार ने प्रसंगानुकूल मुहावरों एवं लोकोक्तियों का खुल कर प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों से कहानी में सरसता का भाव भी आ गया है। इस कहानी में प्रयुक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों में– सिर चढ़ा लेना, सरकश हो जाना, जोरू का गुलाम, काबू में रखना, दो–चार खाना, सिर में दर्द होना आदि का स्वाभाविक प्रयोग कथावस्तु को रोचक बनाने में सहायक रहा है।

3. ***देशज, तद्भव एवं बोलचाल के शब्दों का प्रयोग –*** कहानीकार ने कहानी को सहज एवं स्वाभाविक बनाए रखने के लिए भावानुकूल देशज, तद्भव–तत्सम एवं बोलचाल के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। इससे कहानी की सहजता एवं स्वाभाविकता भी सामने आई है। ऐसा लगता है कि कहानी के पात्र काल्पनिक न होकर यशपाल जी के सामने खड़े हैं और अपने परिवेश की शब्दावली बोल रहे हैं, जैसे– कन्हैयालाल के मित्र हेमराज की बातचीत, कन्हैया तथा लाजो की बातचीत और लाजो, तथा उसकी पड़ौसिनों की बातचीत में प्रयुक्त इस प्रकार के शब्दों का सहज प्रयोग देखा जा सकता है।

4. ***जीवन और व्यवहार से जुड़ी शब्दावली –*** यशपाल की कहानी 'करवा का व्रत' की भाषा में मानव–जीवन से जुड़ी व्यावहारिक शब्दावली का प्रचुर प्रयोग मिलता है। इसके लिए कहानीकार ने न केवल हिन्दी–उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है, अपितु अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार की शब्दावली के प्रयोग से इनकी भाषा में व्यावहारिकता का पुट मिलता है– "यह अकड़ है ? ..... ? आज तुझे ठीक कर ही दूँ।" उसने कहा और लाजो को बांह से पकड़, खींचकर गिराते हुए दो थप्पड़ पूरे हाथ

के जोर से ताबड़–तोड़ जड़ दिए और हाँफते हुए लात उठाकर कहा, "और मिजाज दिखा! खड़ी हो सीधी।"

5. ***पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग*** – यशपाल जी एक सफल कहानीकार रहे हैं और इसमें उनकी पात्रानुकूल भाषा का पर्याप्त योगदान रहा है। जैसा पात्र, उसके मुख से निकलने वाले शब्दों का वैसा ही प्रभाव; उनके यथार्थ वादी रूप को तो उजागर करता ही है, सहजता भी प्रदान करता है। इस प्रकार की भाषा के आधार पर कहानी के पात्रों की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति का अंदाजा भी सहज में ही लग जाता है। इस मत की पुष्टि हेमराज, कन्हैया और लाजो द्वारा प्रयुक्त भाषा के आधार पर अपने आप हो जाती है। कौन पात्र किस प्रकार का व्यवहार करता है, इसके लिए भी भाषा ही पर्याप्त है।

6. ***चित्रात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता*** – यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर चलते समय कहानीकार की भाषा में चित्रात्मक शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक होता है। यशपाल की भाषा में तो चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान रही है। 'करवा का व्रत' कहानी की भाषा में सचित्रशैली सफल रही है। भाषायी विधान से ऐसा लगता है मानों समस्त घटनाएं कहानीकार की आँखों के सम्मुख घटित हो रही हों। हेमराज सामने खड़ा कन्हैयालाल को सीख दे रहा हो, कन्हैयालाल लाजो को सामने दुत्कार रहा हो, मार–पीट कर रहा हो और लाजो विचारों में खोई बैठी हो। कहीं–कहीं भाषा में प्रयुक्त व्यंग्यात्मक पुट भी देखा जा सकता है।

7. ***सहज प्रवाहशीलता*** – 'करवा का व्रत' कहानी में यशपाल जी ने धारा–प्रवाह भाषा का प्रयोग किया है। कहानीकार ने सहज भाव से गतिशील भाषा का प्रयोग करते हुए अपनी विचारधारा को प्रस्तुत किया है। कहीं भी भाषा के स्तर पर रूकावट या कृत्रिमता का भाव नहीं झलकता। एक कथन की पूर्णता पर दूसरे कथन के प्रतीक शब्द स्वतः ही सामने आने लगते हैं। ऐसा भी नहीं लगता कि अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उन्हें शब्द तलाशने पड़ रहे हों। जैसे– "किवाड़ों के खुलने का शब्द सुनाई दिया, वह उठने के लिए आंसुओं से भीगे चेहरे को आंचल से पोंछने लगी। कन्हैयालाल ने आते ही एक नजर उसकी ओर डाली। उसे पुकारे बिना ही वह दीवार के साथ बिछी चारपाई पर चुपचाप बैठ गया।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यशपाल जी की कहानी 'करवा का व्रत' भाषा की दृष्टि से पूरी तरह सफल और प्रभावोत्पादक कहानी है। इस कहानी की विशिष्ट भाषा भले ही बोलचाल की हो या मुहावरेदार हो या चित्रात्मक, अपने भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम रही है। अपनी बात को कहने के लिए कहानीकार के पास शब्दों की भरमार है, जिसकी पुष्टि कहानी को पढ़ने पर स्वतः हो जाती है।

0;k[;k

1

अपनी मर्जी रखना, समझे। औरत और बिल्ली की जात एक। पहले दिन के व्यवहार का असर उस पर सदा रहता है। तभी तो कहते हैं कि 'गुर्बा बर रोजे अब्वल कुश्तन' (बिल्ली के आते ही पहले दिन हाथ लगा दो तो फिर रास्ता नहीं पकड़ती)। तुम कहते हो पढ़ी लिखी है तो तुम्हें और भी चौकस रहना चाहिए। पढ़ी–लिखी यों भी मिजाज दिखाती हैं।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यांश पाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'करवा का व्रत' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध सामाजिक कहानीकार यशपाल हैं। इसमें हेमराज नामक पात्र के द्वारा कहानी के प्रमुख पुरुष पात्र कन्हैया को अपनी पत्नी के साथ सख्त व्यवहार रखने की सलाह दी जाती है। वह कन्हैया को औरत तथा बिल्ली को समान दृष्टि से देखने की सलाह देता है ताकि उसे मुँह उठाने या खोलने का मौका ही न मिले। कहानीकार उसी भावना का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्याः हेमराज कन्हैया को समझाता है कि पहले ही दिन से औरत पर अपनी इच्छा हावी रखनी चाहिए ताकि उसे सिर उठाने का अवसर ही न मिले। केवल इतना ही नहीं, औरत और बिल्ली की एक ही जाति होती है अर्थात् इनके स्वभाव में पर्याप्त एकता है। पहले दिन का व्यवहार जीवन भर उस पर हावी रहता है। ठीक ही कहा गया है कि बिल्ली जैसे ही घर में घुसे और उसे हाथ लगा दो अर्थात् भय दिखा दो तो पुनः कुछ कहने या वापस आने की हिम्मत नहीं करती। तुम तो बता रहे हो कि तुम्हारी होने वाली पत्नी पढ़ी–लिखी है। इसलिए तुम्हें तो और भी सावधान रहने की जरूरत है। वैसे भी पढ़ी–लिखी स्त्रियां कुछ ज्यादा ही नखरे दिखाती हैं।

विशेषः

1. इसमें लेखक ने समाज के भीतर स्त्री के प्रति पुरूष की मानसिकता का चित्रण किया गया है।
2. नारी–प्रताड़ना की ओर भावात्मक संकेत किया है।
3. भाषा सहज, सरल एवं विषयानुकूल है।
4. उर्दू और देशज शब्दावली का व्यापक प्रयोग मिलता है।

2

मार से लाजो को शारीरिक पीड़ा तो होती ही थी पर उससे अधिक होती थी अपमान की पीड़ा। ऐसा होने पर वह कई दिन के लिए उदास हो जाती। घर का सब काम करती रहती। बुलाने पर उत्तर भी दे देती। इच्छा न होने पर भी कन्हैया की इच्छा का विरोध न करती पर मन ही मन सोचती रहती, इससे तो अच्छा है मर जाऊँ और फिर समय पीड़ा को कम कर देता। जीवन था तो हँसने और खुश होने की इच्छा भी फूट पड़ती थी और लाजो फिर हँसने लगती।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण पाठ्यपुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'करवा का व्रत' से अवतरित है। इसके लेखक प्रसिद्ध कहानीकार यशपाल जी हैं। इस गद्यांश में कहानीकार ने लाजो के पति कन्हैया द्वारा शारीरिक यातना दिए जाने का चित्रण करना चाहा है, जहाँ लेखक कहना चाहता है कि हमारे समाज में लाजो जैसी स्त्रियों को मार खाकर भी पति की इच्छानुसार आचरण करना पड़ता है। इसी को जीवन की संज्ञा देते हुए कहानीकार भाग्यवाद का समर्थन करते हुए कहता हैं कि–

व्याख्याः अपने पति कन्हैया द्वारा आए दिन की मारपीट से लाजो को शारीरिक कष्ट तो होता ही था, उससे भी ज्यादा उसे बेइज्जती लगती थी, अपमान का अनुभव होता था। एक बार घटित होने वाले इस तरह के व्यवहार से दुःखी लाजो कई दिन के लिए उदास हो जाती थी अर्थात् परेशान रहती थी। कई दिन बीत जाने पर भी उसकी उदासी बनी रहती थी। घर के सभी काम करती थी। अगर कुछ पूछा जाता था तो उसका उत्तर भी देती थी। इस तरह के प्रताड़ना भरे व्यवहार के बावजूद भी कन्हैया जो कुछ कहता, वही सब करने के लिए तैयार रहती थी। परन्तु दुःखी मन से सोचती रहती कि इस अपमान भरे जीवन से तो मर जाना अच्छा है। समय निकलता, फिर दुःखों का दर्द हल्का हो जाता। उसके मन में विचार उठते कि जीवन है तो हँसने और खुशी रहने के लिए। यही सोचकर उसका चेहरा खिल उठता और सारे दुःखों को भूल जाती।

विशेषः

1. लेखक ने लाजो के पति कन्हैया के निर्दयतापूर्ण व्यवहार द्वारा पुरूष–समाज के अत्याचारों का खुलासा किया है।
2. पति द्वारा प्रताड़ित और अपमानित होने पर भी भारतीय नारी उसकी इच्छानुसार जीना चाहती है।
3. यशपाल जी ने भारतीय नारी के सहनशीलता एवं समझौतावादी दृष्टिकोण का वर्णन किया है।
4. सहजता, सरलता, एवं बोधगम्यता भाषा की विशेषता है।

3

सोचती रही– क्या जुल्म है। इन्हीं के लिए व्रत कर रही हूँ और इन्हें ही गुस्सा आ रहा है। जनम–जनम 'ये' ही मिलें इसलिए मैं भूखी मर रही हूँ। बड़ा सुख मिल रहा है न। अगले जनम में और बड़ा सुख दे देंगे! जनम निबाहना ही मुश्किल हो रहा है। इस जनम में तो इस मुसीबत से मर जाना अच्छा लगता है, दूसरे जनम के लिए वही मुसीबत पक्की कर रही हूँ।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण पाठ्यपुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'करवा का व्रत' से लिया गया है। इसके लेखक प्रसिद्ध कहानीकार यशपाल जी हैं। इसमें लेखक लाजो के माध्यम से उन भारतीय स्त्रियों की व्यथा को उजागर करना चाहता है, जहाँ वे पति की मार भी सहती हैं और उनके मंगल की कामना हेतु करवा जैसा व्रत भी करती हैं। यहाँ तक कि अगले जन्म में भी उसी पति को पाने की कामना करती हैं। इन्हीं विचारों की गवेष्णात्मक अभिव्यक्ति करते हुए लेखक कहता है कि–

व्याख्याः लाजो सोचती रही कि हम जैसी स्त्रियों के साथ यह कितना अत्याचार है। जिस पति के लिए मैं भूखों मर कर व्रत कर रही हूँ उसी को मेरे ऊपर गुस्सा आ रहा है। अपने आप पर आक्रोश दिखाते हुए कहती है कि मैं इस कामना के साथ व्रत कर रही हूँ कि हर जन्म में इसी पति का साथ मिले। इस जन्म में बहुत सुख मिल रहा है? अर्थात् इस जन्म में तो कष्ट पा रही हूँ, मार खा रही हूँ, बेइज्जती सह रही हूँ। अगले जन्म में पता नहीं क्या मिलेगा। यही जन्म मुश्किल से कट रहा है अर्थात् दुःख ही दुःख हैं। इस जन्म में जिस प्रकार कष्ट सहने पड़ रहे हैं, कभी–कभी तो मरने की इच्छा करती है। इसके बाद भी अगले जन्म में और इसी साथ का निश्चय कर रही हूँ।

विशेषः

1. इसमें प्रताड़ित नारी की मनोदशा का चित्रण किया गया है।

2. कहानीकार ने भारतीय नारी की दुविधाभरी जिन्दगी को सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।

3. भाषा विषयानुकूल सहजता एवं स्वाभाविकता लिए हुए है।

4

सौत का ख्याल उसे और भी बुरा लगा। फिर अपने आप समाधान हो गया। नहीं पहले मुझसे ब्याह होगा, मैं मर जाऊँगी तो दूसरी से होगा। अपने उपवास के इतने भयंकर परिणाम की चिंता से मन अधीर हो उठा। भूख अलग व्याकुल किये थी। उसने सोचा– क्यों मैं अपना अगला जन्म भी बर्बाद करूँ। भूख के कारण शरीर निढाल होने पर भी खाने को मन नहीं हो रहा था परन्तु उपवास के परिणाम की कल्पना से मन क्रोध से जल उठा। वह उठ खड़ी हुई।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण पाठ्यपुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'करवा का व्रत' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार यशपाल जी हैं। इस गद्यांश में कहानीकार ने लाजो के माध्यम से समाज की उस सच्चाई को सामने लाने की कोशिश की है, जिसके द्वारा विवाहित पुरूष की अपनी पत्नी के मर जाने पर दूसरी पत्नी ले आने की भावना का पता चलता है। लाजो भूखों मरकर व्रत करने के विरूद्ध सजग हो उठती है, मरने की बजाय आत्म–चेतना जगाती है। इन सभी भावनाओं को उजागर करते हुए कहानीकार कहता है कि–

व्याख्याः जैसे ही लाजो के मन में सौत का विचार आया और समझी कि कन्हैया तो मेरे मरते ही दूसरा विवाह कर लेगा तो उसे और भी बुरा लगा। इसके बाद खुद ही उसकी समस्या हल हो गयी। मेरे मरने के बाद ही सौत (दूसरी स्त्री) से हो सकता है। जब उसकी समझ में आया कि भूखों मरकर व्रत करने का परिणाम इतना भयंकर है, तो सोचकर ही उसका मन घबरा गया। दूसरी तरफ भूख भी परेशान कर रही थी। लाजो के मन में विचार आया कि इस तरह भूखी मरकर मेरा यह जन्म तो बेकार होगा ही, अगले जन्म को और क्यों खराब करूँ ? भूख से कमजोर शरीर होते हुए भी खाने की इच्छा नहीं हो रही थी लेकिन व्रत के बुरे परिणाम की याद कर वह परेशान हो उठी और उसने व्रत तोड़ने का संकल्प ले लिया।

विशेषः

1. कहानीकार का मत है कि जिन्दगी की कीमत पर उपवास करने से कोई लाभ नहीं है।

2. नारी के मन में सौत के भय का चित्रण किया गया है।

3. भाषा विषयानुकूल, सहज एवं सरल है।

पराया शहर

कमलेश्वर

प्र०1 कमलेश्वर के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **जीवन–परिचयः** 'नई कहानी' के प्रवर्तक के रूप में हिन्दी साहित्य के पुरोधा कमलेश्वर का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के मैनपुरी जिले में 6 जनवरी सन् 1932 ई० में हुआ। बाल्यावस्था में ही पिता की मौत के कारण इनका पालन–पोषण माँ के संरक्षण में हुआ। माँ के वैष्णव संस्कारों ने कमलेश्वर के व्यक्तित्व को काफी प्रभावित किया। मैनपुरी से हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से हिन्दी विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद इनका साहित्यिक सफर निरन्तर अबोध गति से चल रहा है। 'नई कहानी' और 'सारिका' नामक पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन इनकी प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण रहा है। काफी लम्बे समय तक आकाशवाणी और दूरदर्शन कार्यक्रमों से जुड़े रहे हैं। बम्बई की फिल्मी नगरी की चकाचौंध को भी इन्होंने नजदीकी से देखा है और फिल्मों के लिए पटकथाएं लिखी हैं। संवाद–लेखन में भी कमलेश्वर जी को पर्याप्त सफलता मिली है। दिल्ली दूरदर्शन के महानिदेशक पद पर रह चुके आपने दृश्य–श्रव्य माध्यमों को काफी प्रोत्साहित किया है। दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया इनका धारावाहिक 'परिक्रमा' काफी चर्चित रहा है। सघः प्रकाशित 'बंधक लोकतंत्र' उनकी समसामयिक जागरुकता को उजागर करता आलेख–संग्रह है। संवेदनशील साहित्यकार कमलेश्वर की कहानियों में कस्बों, शहरों, महानगरों की जीवन–पद्धति का प्रभाव साफ देखा जा सकता है। 'दैनिक भास्कर' समाचार पत्र से जुड़े कमलेश्वर हमेशा चर्चा में रहते हैं।

साहित्यिक–कृतियांः कमलेश्वर की साहित्यिक कृतियां निम्न हैं–

कहानी–संग्रह – राजा निरबंसिया, कसवे का आदमी, खोई हुई दिशाएं, मांस का दरिया, श्रेष्ठ कहानियाँ आदि।

उपन्यास – काली आंधी, समुद्र में खोया हुआ आदमी, वही बात, एक सड़क सत्तावन गलियां, सुबह–दोपहर–शाम, डाक बंगला सहित लगभग 10 उपन्यास। 'कितने पाकिस्तान' काफी चर्चित रहा है।

नाटक – चारूलता, अधूरी आवाज आदि।

समीक्षात्मक आलेख – नई कहानी की भूमिका, समानान्तर सोच, मेरा पन्ना एवं बंधक लोकतंत्र। इसके अलावा यात्रावृन्त, संस्मरण एवं दैनिक घटनाक्रमों को लेकर छपे आलेखों की लम्बी सूची है।

साहित्यिक विशेषताएंः कमलेश्वर की कहानी 'पराया शहर' को पढ़ने पर कमलेश्वर की साहित्यिक विशेषताओं का निरुपण इस प्रकार कर सकते हैं–

1. ***आत्मबोध एवं 'स्व' की तलाश*** – हिन्दी कहानी में नई कहानी के प्रमुख स्तंभ कमलेश्वर की कहानियों में आत्मबोध एवं 'स्व' की तलाश की गयी है। वर्तमान परिवेश में मानव खुद व खुद

कैद सा हो गया है। 'पराया शहर' कहानी में दुर्गादयाल और सुखबीर के ऐसे अनेक कथन हैं जिनसे पता चलता है कि कहानी में अपने खोए अस्तित्व को तलाशा गया है। दुर्गादयाल जिन पड़ौसियों के लिए सब कुछ दाँव पर लगाए रहता था, लेकिन वही पड़ौसी गरीबी और तंगी आने पर उससे घृणा करने में नहीं चूकते। प्रश्न वाचक संकेतों से कहानीकार ने बार–बार इस ओर ध्यान खींचा है।

2. ***महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्रण*** – कमलेश्वर की कहानियों में महानगरीय जीवन की घुटन एवं त्रासदी प्रमुखता से चित्रित मिलती है। 'पराया शहर' कहानी भी इसी प्रकार की कहानी है जिसमें कहानीकार ने दिल्ली महानगर का नामोल्लेख करते हुए उसमें रहने वाले लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने दुर्गादयाल के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं एवं सुखबीर के चिंतन में इस प्रकार की विचारधारा को स्पष्ट रूप से उभारा है। लेखक मानता है कि महानगरों में जीवन आत्मकेन्द्रित–सा रहता है जिसमें किसी को किसी से कोई मतलब नहीं रहता।

3. ***मानवीय सम्बन्धों में टूटन एवं बढ़ती दूरी*** – पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच बढ़ती हुई दूरी विकेन्द्रीकरण की स्थिति पैदा कर देती है। आधुनिक जन–जीवन में मानवीय सम्बन्धों में आये बिखराव को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्धों में आपसी टकराव दाम्पत्य जीवन को नाटकीय बना देता है। किशोरावस्था में पनपने वाला चिढ़चिढ़ापन युवा पीढ़ी को उसके पथ से भटका देता है। इन सभी विसंगतियों के कारण मानवीय जीवन में होने वाले बिखराव और टकराव को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में बड़े ही विचित्र ढंग से प्रस्तुत किया है।

4. ***समसामयिक जागरूकता*** – कमलेश्वर की कहानियों में समसामयिक वातावरण का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। इनकी ज्यादातर कहानियां शहर, कस्बे, गांव, नगर और महानगरीय जीवन पर आधारित हैं। इसी कारण इनकी कहानियों में समसामयिक जागरुकता सर्वत्र दिखाई देती है। इनकी कहानियों में शहरी जीवन में पड़ौसी की अनदेखी और स्वार्थपरकता का वर्णन भी साफ दिखाई देता है। 'दिल्ली की मौत' और 'पराया शहर' इनकी इसी प्रकार की कहानियां हैं।

5. ***आधुनिकता पर व्यंग्य*** – कमलेश्वर की कहानियों में आधुनिक जन जीवन की विभिन्न पीड़ाओं, विसंगतियों, कुंठाओं और वर्जनाओं का चित्रण साफ झलकता है। समाज का प्रत्येक पक्ष इनकी कहानियों में मुखरित हुआ है। इनकी कहानियों में आधुनिक समाज में व्याप्त स्वार्थ, घृणा, नफरत, घुटन और आत्महत्या जैसी भावनाओं का मार्मिक चित्रण दिखाई देता है। इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन में व्याप्त बनावटीपन और खोखलेपन का पर्दाफाश किया गया है।

6. ***कथ्य और शिल्प में नयापन*** – कमलेश्वर लेखन के प्रारम्भिक दौर में शिल्प और कथ्य के प्रति सचेत रहकर हिन्दी के कहानीकारों में अपना स्थान बनाया है। जैसे–जैसे उनका लेखन आगे बढ़ा है वैसे–वैसे उन्होंने अपने कथ्य और शिल्प में नये–नये प्रयोग किये है। 'पराया शहर' नामक कहानी भी इसी प्रकार का नया प्रयोग है जिसमें कमलेश्वर ने शहरी जीवन के छुपे हुए तथ्यों को नये रूप में वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है।

7. ***भाषा–शैली*** – भाषा शैली की दृष्टि से कमलेश्वर की कहानियाँ दृश्य और नाटक जैसा रूप लिये हुए हैं। प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए सटीक प्रयोग

करना भली भाँति जानते हैं। यह भी सही है कि उनकी कहानियों की भाषा उर्दू से प्रभावित है जिसके लक्षण उनकी कहानी 'पराया शहर' की भाषा में भी साफ दिखाई पड़ते है। हिन्दी की लाक्षणिकता और उर्दू की व्यंजनात्मकता स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुई है। इनकी शैली में पारदर्शिता और व्यावहारिकता है। साथ ही मानव जीवन की गहरी अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब लिये हुए है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कमलेश्वर का साहित्य प्रभाव छोड़ने में और पाठक के मन–मस्तिष्क को पकड़ने में सक्षम है। भाव पक्ष की दृष्टि से उसमें कुंठा, घुटन, निराशा एवं आर्थिक विषमता दिखाई पड़ती है, वहीं उनकी भाषा शैली कौतूहल एवं जिज्ञासा से भरी, सरल और प्रवाह पूर्ण है।

प्र०2 पराया शहर' कहानी के नामकरण की सार्थकता पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिये।

उत्तरः मनुष्य जन्मना नामकरण के साथ अपना तालमेल बिठाने का प्रयास करता है और कोशिश रहती है कि नामकरण सार्थक हो। कहने का मतलब है कि नाम के भीतर प्रभाव और आकर्षण दोनों आवश्यक हैं। ऐसा भी रहा है कि नाम सुनते ही चेहरे के हाव–भाव बदल जाते हैं तथा उसका अनुमान लगाया जा सकता है। साहित्यिक कृतियों के नामकरण करते समय रचनाकार प्रयास करता है कि उसकी रचना के नाम से उसके मूल का भावार्थ उजागर हो। इससे रचना की विशिष्ट पहचान भी होती है, जैसे 'रामचरितमानस' का नामकरण काफी हद तक पाठक के हृदय को समझा देता है कि इसमें श्रीराम के जीवन–चरित्र को प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

कमलेश्वर द्वारा लिखित कहानी 'पराया शहर' के नामकरण की सार्थकता इस बात से स्वतः सिद्ध है कि इसमें शहरी–जीवन में व्याप्त पराएपन की भावना प्रमुखता से उद्‌भासित होती है, लेकिन फिर भी हिन्दी साहित्य में साहित्यिक रचना या कहानी के नामकरण की सार्थकता को समझने के लिए कुछ बिन्दु निर्धारित किये गए हैं। कभी उसका नामकरण उसके नायक या प्रमुख पात्र के नाम पर कर दिया जाता है, तो कभी किसी घटना–विशेष के आधार पर भी कहानी का नामकरण कर दिया जाता है। इसी प्रकार उद्‌देश्य या घटनास्थल के साथ–साथ अभिव्यक्त संवेदना अर्थात् मूल भाव को ध्यान में रखकर नामकरण किया जाता है। इन सभी बिन्दुओं की दृष्टि से कमलेश्वर द्वारा लिखित कहानी 'पराया शहर' के नामकरण की सार्थकता पर निम्न प्रकार से विचार किया जा सकता है–

'पराया शहर' कहानी की कथावस्तु का अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह नामकरण किसी नायक या नायिका के नाम पर आधारित नहीं है। इसी तरह लेखक ने किसी घटना–स्थल को भी नामकरण के रूप में प्रयुक्त नहीं किया है, अपितु घटनाओं के संवेदनशील प्रभावों को इसके कारण–रूप में संकेतित करने का प्रयास किया है। अगर इसके पीछे प्रतीकात्मक सांकेतिकता को भी माना जाय, तो गलत नहीं है। क्योंकि कहानी के अन्तर्गत ऐसे परिवेश का निरूपण किया है जो उसके पात्रों दुर्गादयाल एवं सुखबीर को शहर तथा पास–पड़ौस के लोगों के व्यवहार से पराएपन का अहसास होता है।

कहानी के पराया शहर नामकरण के पीछे लेखक की वे अनुभूतियां भी रहीं है, जो परिवार एवं समाज के धरातल पर सम्बन्धों में बिखराव तथा दूरी पैदा कर रही हैं। सुखबीर नामक पात्र बार–बार बदलते परिवेश एवं आत्मनिर्वासन के कारण कुंठा, विवशता एवं संत्रास से व्यथित हो उठता है। जब तक वह अपने साथ हुए परायेपन के एक व्यवहार को भूलने की कोशिश करता

है, पिता दुर्गादयाल के साथ सम्बन्ध निभाने की सोचता है, तभी समाज में कोई न कोई ऐसी घटना घटित हो जाती है कि उसका मन टूट जाता है और उसे लगता है कि इस शहर में उसका कोई अपना नहीं है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्ति रोजी–रोटी की तलाश में शहर चला तो आता है, लेकिन होली–दिवाली का त्यौहार आते ही अपने सगे सम्बन्धियों में पहुँचकर त्यौहार मनाने की लालसा उसे अनुभव करा देती है कि वह उसका शहर नहीं है। उसका शहर तो वह है, जहाँ उसके सगे–सम्बन्धी रहते हैं। इसीलिए कहानीकार ने मनुष्य के दो शहर माने हैं– एक वह जहाँ उसका जन्म हुआ है और दूसरा वह, जहाँ वह रोजी–रोटी कमाता है अर्थात् नौकरी–व्यापार करता है। सुखबीर जब दुर्गादयाल से दिल्ली चलने के लिए कहता है तो पहले तो वह दिल्ली को पराया शहर कहकर साथ चलने से मना कर देता है लेकिन कुछ दिनों बाद पड़ोसियों द्वारा पराएपन का व्यवहार किये जाने पर वहाँ से भी उसका मोह टूट जाता है। वैसे तो सुखबीर कहता है कि दिल्ली भी पराया शहर ही है। वहाँ भी किसी के पास किसी के प्रति सहानुभूति दिखाने की फुर्सत नहीं है।

कहने का अभिप्राय है कि कथानक और कहानी के उद्देश्य की दृष्टि से भी देखा जाय तो मूल भाव 'परायेपन' की प्रवृति को लेकर व्यक्त किया गया है। आधुनिकता के नाम पर शहरों में बढ़ती भीड़ ने इस प्रवृति को और भी पुष्ट किया है। शहरों में जाकर मनुष्य पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों से भटक जाता है। सहायता मांगे जाने पर भी कोई सहायक नहीं मिलता है क्योंकि उनके मन में अपनापन जैसा कुछ होता ही नहीं है। दुर्गादयाल अंत में कहता भी है– 'अरे, इस परायेपन का विस्तार कहीं नहीं है सुखबीर, न यहाँ न वहाँ ... यह कहते–कहते उसकी गंदली आँखें डबडबा आयी थीं।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'पराया शहर' कहानी का नामकरण सर्वथा उचित ही है, क्योंकि सारा कथानक इसी मनोभाव के आसपास घूमता रहता है। कमलेश्वर ने बड़ी ही बुद्धि–चातुरी के साथ आधुनिकता की यथार्थ स्थिति को उजागर किया है।

प्र०3 वर्तमान परिवेश में सम्बन्धों के बिखराव और आत्मनिर्वासन की समस्या को 'पराया शहर' कहानी के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः 'पराया शहर' कहानी में कमलेश्वर ने प्रारम्भ से लेकर अंत तक वर्तमान परिवेश में सम्बन्धों के बिखराव और आत्मनिर्वासन की समस्या को ही प्रमुखता से चित्रित किया है। कहानीकार ने शहरों के प्रति आकर्षण की भावना को पुराना बताते हुए उसे ग्रामीण लोगों की आवश्यकता भी माना है, क्योंकि पहले बाजार–हाट रोज जाना नहीं होता था। बदलतें समय ने लोगों में शहरों के प्रति भागने की होड़ सी लगा दी। शहर पहुँचकर उसे लगा कि वह अपना कुछ खो बैठा है। उसके सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों में न केवल बिखराव एवं आत्मनिर्वासन, अपितु मानसिक तौर पर वह अकेला और समस्याओं से पलायन करने वाला बन गया है।

पराया शहर कहानी में लेखक ने पहले तो दुर्गादयाल के पूर्वजों के शहर में आकर बसने तथा नाम कमाने का चित्रण करते हुए उसके प्रति मोह दिखाया है। दुर्गादयाल की शोहरत का ध्यान आते ही उसका पुत्र सुखबीर घबराने लगता है अर्थात् पिता–पुत्र के सम्बन्धों में बिखराव तथा आत्मनिर्वासन की भावना जन्म लेने लगती है। सुखबीर के बचपन में ही उसकी माँ की मौत हो चुकी है और उसका पिता किसी लड़की को भगा कर घर में ले आता है। सुखबीर स्कूल से घर लौटता है तो घर को पुलिसवालों से घिरा देखकर परेशान हो जाता है। उसका

पिता घर की छत से अपनी जमानत के लिए चिल्लाता है, लेकिन पड़ोसी उसके पिता की आवाज तो सुनते ही नहीं है, साथ ही पुलिस के भय से सुखबीर को भी पास नहीं खड़े होने देते। उसे लगता है कि गली सुनसान है, मौन है, इसमें तुम्हारा कोई नहीं है।

कुछ समय बाद उसके पिता द्वारा भगाकर लाई हुई लड़की के साथ विवाह कर लिये जाने पर पिता से भी सुखबीर के सम्बन्ध टूटने लगते हैं। आपसी खींचतान के कारण सुखबीर के लिए वहाँ रह पाना मुश्किल हो जाता है। कहानीकार कहता है– "जमाना बदलता जा रहा था और दूरियां बढ़ती जा रही थीं। जिन्दगी के सब वह सहारे, जिनसे मन जुड़ा रहता है, धीरे–धीरे टूटते जा रहे थे। सुखबीर को यही लगता था कि उसका रिश्ता अपने बाप से भी खत्म हो गया ... ... न उसका कोई घर–बार था न कोई ऐसा, जिसे वह अपना कह सके।"

जमाने बदलने से अभिप्राय कहानीकार का भाव वर्तमान परिवेश से है। एक पुत्र द्वारा पिता के सम्बन्ध को इतना तनावग्रस्त प्रकट करना, स्वयं के लिए किसी अपनेपन की भावना वाला न होने की बात करना स्पष्ट रूप से वर्तमान परिवेश में सम्बन्धों के बिखराव और आत्मनिर्वासन की ही समस्या है।

इसके बाद भी यह प्रवृत्ति यहीं नहीं थमती अर्थात् इन सम्बन्धों को लेकर घबराहट एवं बेचैनी बराबर बनी रहती है। होली–दिवाली का त्यौहार आते ही वह अपने पिता, सगे–सम्बन्धियों के बीच जाना चाहता है। सौतेली माँ की मौत की बात सुनकर अपने पिता के अकेलेपन के सम्बन्ध में सोचता है। अपने पिता को अपने साथ लाना चाहता है, लेकिन वह पिता अपने पड़ोसियों की जिम्मेदारी बताकर और दिल्ली के प्रति परायेपन की बात कहकर सुखबीर के साथ चलने से मना कर देता है। परन्तु उस समय सारें सम्बन्ध बिखरे जान पड़ते हैं, जिस समय सभी पड़ोसी दुर्गादयाल से मुँह फेर लेते हैं। धीरे–धीरे दुर्गादयाल को खुद ही महसूस होने लगता है कि आज उसके सभी सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं। खुद को वह आत्मनिर्वासित समझने लगता है।

आर्थिक तंगी से जूझते दुर्गादयाल को दिल्ली लाने के लिए सुखबीर कोशिश करता है, लेकिन खुद उसे भी दिल्ली में अकेलेपन एवं आत्मनिर्वासन का अनुभव है। दुर्गादयाल भी कहता है कि बेटे वर्तमान परिवेश में सम्बन्धों में आए बिखराव एवं आत्मनिर्वासन का किसी भी शहर में निदान नहीं है। सभी लोगों की सोच आत्मकेन्द्रित हो गयी है। तुम जाओ, सुख से नौकरी करो और मेरी चिंता छोड़ दो। सुखबीर अपने पिता को छोड़कर चला तो आता है, लेकिन उसकी निराशा मन को तोड़ देती है। न वह पहले शहर को छोड़ पाता है और रोजी–रोटी कमाने का साधन होने के कारण दिल्ली को भी नहीं छोड़ पाता।

इस प्रकार कह सकते हैं कि कमलेश्वर की कहानी 'पराया–शहर' में वर्तमान परिवेश में सम्बन्धों के बिखराव एवं आत्मनिर्वासन की समस्या को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। समय के बदलाव के साथ लोगों की मनः स्थिति में भी बदलाव आया है और यह सब मनः स्थिति के बदलाव के ही कारण है। आज मनुष्य नितान्त स्वार्थी बनकर सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों को छोड़ रहा है, लेकिन उनके लिए छटपटा भी रहा है।

प्र०4 'पराया शहर' कहानी में भाषा का अभिनव प्रयोग हुआ है। उदाहरण देकर पुष्ट कीजिए।

उत्तरः भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन तो है ही, साथ ही रचनाकार की भाषा–परक ज्ञान की भी द्योतक है। वर्ण और शब्द भले ही समान हैं, लेकिन उनका प्रयोग प्रत्येक रचनाकार अपनी बौद्धिक प्रतिभा के अनुसार करता है। कहानी गद्य–विद्या है और गद्य–भाषा के सम्बन्ध में कहा भी गया है– 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य कवियों की कसौटी है। कमलेश्वर न केवल लेखन में अपितु संभाषण में भी भाषा के अभिनव रूप का प्रयोग करते हैं। पाठक और श्रोता के हृदय को पकड़ने की सामर्थ्य पूरी तरह से विद्यमान रहती है। परिपाटी या परम्परा–विशेष से बँधकर चलना उनका स्वभाव नहीं रहा। यही कारण है कि उनकी कहानी 'पराया शहर' की भाषा में एक नयापन देखने को मिलता है, जैसे–'दोनों गलियाँ अब भी जमीन पर सूखते हुए पैज़ामे की तरह फैली थीं।

'पराया शहर' कहानी में प्रयुक्त भाषा के प्रयोग का विश्लेषण इस प्रकार भी कर सकते हैं–

1. ***आख्यानपरकता –*** 'पराया शहर' कहानी की भाषा में आख्यानपरकता का गुण दिखायी पड़ता है। कहानी के प्रारम्भ में प्रयुक्त भाषा ऐसी लगती है जैसे किसी अतीत की घटना सुनाई जा रही हो, जैसे– उसने यही सुना था कि पुरखे पहले गाँव में ही रहते थे। ... सुना था कि दादा के बाप अनाज बेचने जाने के लिए दो दिन से तैयारी शुरू कर देते थे।

2. ***चित्रमयी भाषा –*** 'पराया शहर' कहानी में कमलेश्वर ने चित्रमयी भाषा का प्रयोग किया है। कहानी को पढ़ते समय समूचा घटनाचक्र पाठक की आँखों के समक्ष घूम जाता है। शब्द–चित्र प्रस्तुत करने में कहानीकार को सिद्धहस्तता प्राप्त है। दुर्गादयाल की गिरफ्तारी के लिए आई हुई पुलिस और खुद की जमानत के लिए चिल्लाते दुर्गादयाल की स्थिति का वर्णन करते हुए कहानीकार ने लिखा है– "है कोई माई का लाल जो जमानत दे दे।" सुखबीर के माध्यम से कहानी में प्रयुक्त चित्रात्मक भाषा का सुन्दर प्रयोग भी देखा जा सकता है– डर के मारे वह हलवाई की दुकान के पटरे से चिपटकर खड़ा हो गया था। तभी हलवाई की औरत ने उससे कहा था, "जा भाग जा; नहीं तो पकड़ा जायेगा x x x भाग यहाँ से।"

3. ***उर्दू शब्दावली का सहज प्रयोग –*** कहानीकार कमलेश्वर ने 'पराया शहर' कहानी में सहजता और स्वाभाविकता लाने के लिए उर्दू शब्दावली का खूब प्रयोग किया है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि कहानीकार के पात्रों को अपनी बात रखने के लिए भाषा की मशक्कत करनी पड़ रही हो। उर्दू शब्दों में पैजामा, खामोश, आसरे, हिकारत, तहसील, हरूफ, वगैरह, तनख्वाह, इकलौता, करीब, अहसान, उचटना, तकलीफ, तमाशा, सकता, फुसफुसाहट, खत आदि का आकर्षक प्रयोग हुआ है।

4. ***चमत्कारपूर्ण आलंकारिक भाषा –*** पराया शहर कहानी की भाषा चमत्कारपूर्ण है, जिसमें कहानीकार ने रोचकता एवं सौन्दर्यानुभूति कराने के लिए उपमा जैसे अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। भाषा में काव्यात्मक गुण लाना निश्चित ही गद्यकार का अभिनव प्रयोग है। कमलेश्वर की भाषा में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं– "जहाँ दोनों गलियाँ जमीन पर पड़े सूखते पैजामे की तरह फैली थीं ... जहाँ जंगली कबूतर उड़–उड़ कर आया करते थे और अबाबीले चक्कर काटती थीं। जहाँ नानबाई की

दुकान की पतली चिमनी जलती हुई सिगरेट की तरह धीरे–धीरे धुँआ देती रहती थी। जहाँ मुख्तार साहब का मकान खिड़कियों का चश्मा लगाये खड़ा था।"

5. ***भावुकतामयी रोचक भाषा –*** पराया शहर कहानी की भाषा भावुकता से परिपूर्ण है। कहीं भी नीरसता या अरूचि का भाव पैदा नहीं होता। पाठक की सहृदयता पिघल उठती है। ऐसा लगता है कि सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों का बिखराव, आत्मनिर्वासन, पलायन, कुंठा एवं चुभन अकेले दुर्गादयाल और सुखबीर की ही नहीं है, अपितु समग्र वातावरण इस समस्या से परेशान और चिन्तित है। भाषा में अभिनव प्रयोग कमलेश्वर की सहजता है– 'दुर्गादयाल की आँखें भर आयी थीं और भरी हुई आवाज में उसने कहा था, "ऐसे ही चला गया था। क्या करता सुखबीर! अब तो यह शहर भी पराया–सा लगता है।"

6. ***शैली में सहजता और सरलता –*** 'पराया शहर' कहानी में लेखक ने आत्मचिंतन, अतीत की स्मृति एवं पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। कहानी की भाषा–शैली सहज एवं सरल रही है। भाव–संप्रेषण की दृष्टि से भी शैली सर्वथा उपयुक्त है। संवाद–शैली की सरलता का उदाहरण देखा जा सकता है–

"तुम कहाँ चले गये थे, बापू ?"

"तुम कब आये थे ?" अपनी बात न बताकर दुर्गादयाल ने सवाल पूछा था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कमलेश्वर की कहानी पराया शहर में भाषा का अभिनव प्रयोग हुआ है। आम बोलचाल की भाषा के अभिनव प्रयोग से उसमें मौलिकता आ गयी है। इस प्रकार की भाषा का उदाहरण देखा जा सकता है– "तुम जी लगाकर नौकरी करो सुखबीर ... मेरी चिंता मत करना, अपनी खैरियत की खबर देते रहना ...।" अस्तु कहानी की भाषा शब्द–प्रयोग की दृष्टि से हो, भाव–संप्रेषण की दृष्टि से हो, लक्षणा–व्यंजना चमत्कार हो या दृश्यात्मकता आदि; सभी प्रकार से उसमें अभिनव प्रयोग की झलक देखी जा सकती है।

प्र०5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'पराया शहर' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः कोई भी कहानी तब तक सफल नहीं मानी जा सकती, जब तक वह कहानी–कला के तत्वों की कसौटी पर खरी न उतरती हो। कहानी के इसी आकलन को ध्यान में रखते हुए साहित्य–समीक्षकों ने छह तत्वों की कल्पना की और उन्हें कहानी की दृष्टि से उचित भी ठहराया। वे छः तत्व हैं–

1. कथावस्तु या कथानक, 2. पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण, 3. कथोपकथन, 4. देशकाल एवं वातावरण, 5. उद्देश्य, 6. भाषा शैली।

कहानी कला के इन्हीं तत्वों के आधार पर कमलेश्वर द्वारा लिखित कहानी 'पराया शहर' की समीक्षा इस प्रकार की जा सकती हैं–

1. ***कथानक –*** कथानक कहानी का मूल तत्व है। कहानी में प्रमुख रूप से प्रवाहमयता, रोचकता, जिज्ञासा और मौलिकता का होना आवश्यक है। कथानक की दृष्टि से 'पराया शहर' सुखबीर और उसके बापू दुर्गादयाल की कुंठित एवम् अकेलेपन की जिन्दगी को

अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। इस कहानी में मुख्यतः दो पात्र सुखबीर और दुर्गादयाल हैं। कहानी के कथानक में सुखबीर की माँ का देहान्त बचपन में ही हो गया था। पिता ने अपनी वासना पूर्ति के लिए एक भगायी हुई लड़की से शादी कर ली थी, उसी दिन से सुखबीर का इस घर और उस शहर से नाता टूट गया था। यह शहर अब उसे पराया लगने लगा था। बड़ा होने पर वह दिल्ली में नौकरी करने लगता है। पत्र प्राप्त होने पर पता चलता है कि वह दूसरी स्त्री (सौतेली माँ) भी मर गयी है, जिसके साथ उसके बाप ने ब्याह किया था। सुखबीर अपने बाप के अकेलेपन के बारे में सोचने लगता है। फिर उसे खबर मिलती है कि उसका बाप दुर्गादयाल दीक्षित जी के गहने लेकर एक महीने से लापता है। सुखबीर अपने शहर वापिस आता है। कुछ समय बाद उसका बाप स्वयं लौट आता है। वह दिल्ली लौट जाता है। एक दिन अचानक उसे फिर अपने शहर की याद सताने लगती है। होली के त्यौहार पर वह अपने शहर वापस आता है। उसके घर पर ताला लगा हुआ है। वह दीक्षित जी के घर ठहर जाता है। दूसरे दिन सुबह जब वे एक–दूसरे से मिलते हैं तो दोनों की आँखें भर आती हैं। सुखबीर अपने पिता से दिल्ली चलने के लिए कहता है तो दुर्गादयाल कहता है कि समाज में व्याप्त परायेपन की भावना से न तों यहाँ मुक्ति पाई जा सकती है ना दिल्ली में जाकर ही। सुखबीर भी अपने पिता की इस भावना से सहमति व्यक्त करता है और फिर दिल्ली चला आता है। लेकिन अकेले पन के कारण बार–बार उसके भीतर परायेपन की भावना उमड़ती रहती है।

इस कहानी में कमलेश्वर ने रोचकता, क्रमबद्धता, विश्वसनीयता, उत्सुकता, प्रभावात्मक एकता और शिल्पगत नवीनता है। कहानी का आरम्भ, मध्य और अन्त प्रभावशाली है। कहानी को एक सूत्र में बाँधकर रखा है। कथानक की दृष्टि से 'पराया शहर' एक सफल कहानी है। कथानक संक्षिप्त होते हुए भी प्रभावात्मक है।

2. ***पात्र–योजना अथवा चरित्र–चित्रण*** – पराया शहर कहानी को घटनात्मक सूत्रों वाली कहानी कह सकते हैं। लेखक ने केवल तीन पात्रों की योजना की है जिनमें सुखबीर और उसके बाप दुर्गादयाल का चरित्र मुख्य है और दीक्षित जी गौण पात्र हैं। तीनों पात्रों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। सुखबीर और उसके बाप दुर्गादयाल के चरित्र का स्वाभाविक विकास हुआ है। दुर्गादयाल का चरित्र गतिशील चरित्र है। वह एक परिवर्तित चरित्र है। सुखबीर एक संवेदनशील युवक है। उसके मन की स्थिति का चित्रण लेखक ने बड़े ही सुन्दर ढ़ग से किया है। इस प्रकार लेखक चारित्रिक योजना में पूर्ण रूप से सफल रहा है।

3. ***कथोपकथन*** – संवाद अथवा कथोपकथन कहानी का आवश्यक अंग है। कहानी के संवाद कथावस्तु को बढ़ाने में सहायक होता है। कथोपकथन चारित्रिक निर्माण में भी सहायक होता है। कमलेश्वर ने जितने भी संवादो की व्यवस्था की है, वे सब के सब स्वाभाविक और प्रभावी बन पड़े हैं। अधिकांश संवाद छोटे–छोटे है लेकिन कहीं–कहीं बड़े संवाद भी देखने को मिलते है। जैसे–

ऐसे ही चला गया था। यहाँ क्या करता सुखबीर! अब तो यह शहर भी पराया सा लगता है। सब कुछ बीत गया। अब तो दो–दो चार–चार पैसे के लिए लोग पराये के लिए पेस आते हैं ...।

तो चलो मेरे साथ दिल्ली चलो ... शहर तो वह भी पराया है बापू, फिर भी ... सुखबीर ने कहा था।

4. ***देशकाल एवं वातावरण*** – कहानी को समसामयिक और मौलिक बनाने में देशकाल एवं वातावरण की अहम् भूमिका होती है। वैसे भी कोई भी साहित्यक रचना देशकाल और वातावरण की अनदेखी कर अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकती। कमलेश्वर ने 'पराया शहर' कहानी में आधुनिक वातावरण को केन्द्रित कर उसकी ऊब, घोटाले, स्वार्थी भावना एवं कष्ट भरी जिन्दगी को प्रमुखता से केन्द्रित किया है। शहर की गलियाँ, लोगो का अनदेखापन, समसामयिक वातावरण का यथार्थ चित्रण 'पराया शहर' कहानी में जीवन्त हो उठा है। शहरों की जिन्दगी में अकेलापन महसूस करने वाला सुखबीर ही नहीं है, कितने सुखबीर है, जो इस वातावरण की मार से घायल और प्रताड़ित हैं।

5. ***उद्देश्य*** – मानव की प्रत्येक रचना कोई न कोई उद्देश्य लिये रहती है। कहानीकार कमलेश्वर ने 'पराया शहर' कहानी में आधुनिक परिवेश और बिखरते सम्बन्धों को उजागर किया है। सुखबीर के मन में बार–बार टूटे हुए रिश्तों को याद करवाकर कहानीकार ने अपने उद्देश्य तक पहुँचने का प्रयास किया है। इस कहानी का मूल उद्देश्य उन परिस्थितियों का चित्रण करना है, जिनक चलते पारिवारिक विवाद मनुष्य को अकेला होने का अहसास करा देता है। कोई व्यक्ति साधारण हो या विशिष्ट, आधुनिकता के नाम पर शहरों में भगकर स्वयं ही परेशान और अकेला अनुभव कर रहा है। मूल्यहीन जीवन की सच्चाई को चित्रित करना ही कहानीकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। जिसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है।

6. ***भाषा–शैली*** – भाषा, जहाँ भाव–प्रस्तुति का साधन है; वहीं शैली, उस भाषा की प्रस्तुति के तरीके का नाम है। 'पराया शहर' कहानी भाषा और शैली दोनों ही दृष्टियों से सफल मानी जा सकती है। भाषा में सहजता, सरलता और प्रभावात्मकता है, वहीं शैली में प्रवाहशीलता और प्रांजलता है। संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में उर्दू के मानक शब्दों का प्रयोग मिलता है। कहानी को पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे समग्र घटनाचक्र सामने घटित हो रहा हो। यह कहानी की उत्कृष्ट भाषा–शैली की ही देन है। लक्षणा एवं व्यंजनापरक शब्दों का प्रयोग कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाता चला गया है। शैली पात्रानुकूल एवं विषयानुकूल है, जैसे– 'है कोई माई का लाल जो जमानत दे दे।' इससे दुर्गादयाल की शोहरत भरी शख्सियत का पता चलता है। भाषा–शैली में सम्प्रेष्णीयता भी खूब रही है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कहानी कला के तत्वों, कथावस्तु, पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल, उद्देश्य एवं भाषा–शैली की दृष्टि से 'पराया शहर' एक सफल एवं हृदयस्पर्शी कहानी है। कहानीकार का अभीष्ट कहानी में पूर्णतः अभिव्यक्त होकर उभरा है।

0;k[;k

1

जब–जब इस नाम की शोहरत का ख्याल आता है, सुखबीर का मन घबराने लगता है। तरह–तरह की बातें दिमाग में उठने लगती हैं और उसके सामने वे तमाम दृश्य घूम जाते हैं जिनका सम्बन्ध माँ की मौत के बाद के समय से है। उसकी माँ थी, बस इतना अहसास भी उसे है क्योंकि उसे माँ का चेहरा–मोहरा कतई याद नहीं ...।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'पराया शहर' से अवतरित है। इसके लेखक हिन्दी साहित्य में नई कहानी के प्रमुख स्तंभ कहानीकार कमलेश्वर हैं।

इस कहानी में लेखक ने मनुष्य के मन में रोजी–रोटी कमाने वाले शहर के प्रति जन्म स्थान की अपेक्षा रहने वाली पराये पन की प्रवृति को प्रमुखता से चित्रित किया है। प्रस्तुत अवतरण में कहानीकार सुखबीर की अपने पिता के प्रति सोच को लेकर बनते बिगड़ते मानसिक विचारों का वर्णन करते हुए कहता है कि ...

व्याख्याः जब–जब सुखबीर को अपने पिता दुर्गादयाल की जोरों की चर्चा का ध्यान आता है, उसके मन में घबराहट होने लगती है। उन चर्चाओं को लेकर उसका दिमाग तरह–तरह की बात सोचने लगता है अर्थात् उसे अपने पिता की आदतों से कष्ट पहुँचता है। इसके साथ ही उसकी आँखों में वे चित्र उभरने लगते हैं, जो किसी न किसी रूप में सुखबीर की माँ की मौत से जुड़े हुए हैं। माँ की मौत के समय उसकी उम्र छोटी ही थी, इसीलिए केवल उसे अपनी माँ के होने की याद है। उसका रूप–चित्र बिल्कुल ध्यान में नहीं है।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने पिता के आचरण को लेकर समाज में होने वाली चर्चाओं के पुत्र के दिमाग पर पड़ने वाले प्रभाव का स्वाभाविक चित्रण किया है।
2. अवतरण में कौतूहल, जिज्ञासा एवं नाटकीयता है।
3. भाषा में उर्दू शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।
4. कहानीकार की शैली चिंतनपूर्ण है।

2

हर आदमी किसी–न–किसी शहर से जुड़ा हुआ है ... वह शहर जो उसका अपना है, जहाँ की याद उसे सताती है। साथ वालों का ख्याल आता है। सगे–सम्बन्धियों, घरवालों, रिश्तेदारों की नाते की डोर उन्हें अब तक बाँधे हुए है। उन सबके पास कुछ ऐसा है जिसे ये लोग अपना कह सकते हैं। तब बड़ी तकलीफ होती है और उसे अपने शहर का ख्याल आता है जहाँ वह पैदा हुआ था।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'पराया शहर' से अवतरित है। इसके लेखक हिन्दी के नए कहानीकार कमलेश्वर हैं।

इस कहानी में लेखक ने शहरीपन के कारण सामाजिक सम्बन्धों में आ रहे बिखराव के प्रति चिंता का भाव दिखाया है। लौट–लौटकर कहानीकार रिश्तों के मर्म में खो जाता है। इस गद्यांश में कहानीकार मनुष्यों के भीतर समाई सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्याः इस संसार का मनुष्य किसी न किसी शहर के साथ अपना सम्बन्ध बनाए हुए है। उस शहर के प्रति उसके मन में अपनेपन की भावना है। उसकी याद मनुष्य को बार–बार परेशान करती रहती है। अपनी उम्र वाले मित्रों की याद आती है। चाहे वह उस शहर से कितनी भी दूर चला जाय, लेकिन खास रिश्तेदारों एवं पड़ोसियों के प्रेम की रस्सी उसका ध्यान आकर्षित करती रहती है। उनके व्यवहार में कुछ ऐसा आकर्षण या लगाव है, जिसके कारण लगता है कि उनमें अपनेपन की कोई भावना है। उस समय मनुष्य की परेशानी और भी बढ़ जाती है, जिस समय उसे अपने जन्मस्थान अर्थात् जन्म लेने वाले शहर की याद आती है अर्थात् पैदाइश जुड़े शहर की याद और भी कष्टकारक होती है।

विशेषः

1. इसमें लेखक ने पैदा होने वाले शहर एवं सगे–सम्बन्धियों की अपनेपन की भावना का चित्रण कर भावुकता दिखाई है।
2. भाषा में चिंतनशीलता है और रिश्तों की कसक है।
3. तत्सम–तद्भव शब्दों के साथ उर्दू शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग है।
4. शैली में चिंतनपरकता है।

3

जमाना बदलता जा रहा था और दूरियां बढ़ती जा रही थीं। जिंदगी के वह सब सहारे, जिनसे मन जुड़ा रहता है, धीरे–धीरे टूटते जा रहे थे। सुखबीर को यही लगता था कि उसका रिश्ता अपने बाप से भी खत्म हो गया है– दस–बीस बरस पहले से ही – जब से वह बाहर निकलने लायक हुआ था। उस मानसिक यातना से ही छुटकारा पाने के लिए ही वह बाहर भागा था। और दुर्गादयाल ने भी सारे रिश्ते उससे तोड़ लिए थे। न उसका कोई घर–बार था और न कोई ऐसा, जिसे वह अपना कह सके।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'पराया शहर' से अवतरित है। इसके लेखक 'नई कहानी' दौर के प्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर है। इस कहानी में लेखक ने आधुनिकता के नाम पर पनपते शहरों में सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों के बिखराव पर चिंता व्यक्त की है। समय के बदलाव के साथ रिश्तों में आते बिखराव का वर्णन करते हुए कमलेश्वर कहते हैं कि ...

व्याख्याः समय बदल रहा है और इसके साथ ही मानव–मानव के बीच दूरियां बढ़ती जा रही हैं। मन के भीतर विश्वास पैदा करने वाले सहारे भी दिनोंदिन टूटते जा रहे हैं। सुखबीर को भी ऐसा लगने लगा था मानो उसका अपने पिता से भी सम्बन्ध खत्म–सा हो गया है। लगभग दस–बीस वर्ष पूर्व जब वह बाहर निकलने के योग्य हुआ था, तभी से उसका पिता के प्रति लगाव कम हो गया था। इन्हीं सम्बन्धों में बिखराव के कारण मन तनावग्रस्त रहता था और इसीलिए उसने घर भी छोड़ दिया था। यहाँ तक खुद दुर्गादयाल ने भी अपने पुत्र के साथ अपने सम्बन्ध खत्म कर लिए थे। ऐसा कोई घर या रिश्तेदार नहीं था, जिसे सुखबीर अपना नजदीकी कह सकता हो।

विशेषः

1. कहानीकार ने समाज और परिवार के सम्बन्धों में आए बिखराव के लिए समय की भूमिका का चित्रण किया है।
2. भाषा में सहजता, लेकिन गम्भीरता भरा चिंतन है।
3. तत्सम्–तद्भव शब्दों के साथ उर्दू शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
4. शैली चिन्तनपूर्ण और वर्णनात्मक है।

4

और आज जब वह सोचता है तो लगता है कि वह खुद और उसका वह बाप दोनों–दो इकाइयों की तरह अकेले खड़े हैं– जिन्दगी का वह तूफान एकाएक उतर गया और खौफनाक सन्नाटा छा गया है – वक्त के साथ दोनों अकेले होते चले गये। उनकी दूरियां और भी बढ़ती गयी हैं – ऐसा क्यों होता है कि हर आदमी अंत में अकेला क्यों रह जाता है!

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'पराया शहर' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी की 'नई कहानी' के सुप्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर हैं। इस कहानी में लेखक ने शहरों में रहने वाले लोगों के सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव पर चिन्ता व्यक्त की है। इस गद्यांश में कमलेश्वर जी सुखबीर और उसके पिता दुर्गादयाल के तनावग्रस्त सम्बन्धों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ...

व्याख्याः सुखबीर मन ही मन सोचता है कि आज मैं दिल्ली में रहता हूँ और उसका बाप दूसरे शहर में अलग रहता है। दोनों में एक दूसरे के प्रति कोई तालमेल या सम्बन्ध नहीं है। तनाव के कारण सम्बन्धों का लगाव खत्म हो गया है और एक ऐसी भयानक चुप्पी छा गयी है जिसमें भय ही भय है। समय की बदलती गति ने हमें अलग–अलग खड़ा कर दिया है। सम्बन्धों में तनाव घटने की बजाय और बढ़ गया है। वह सोचने लगता है कि अंत में प्रत्येक मनुष्य के सारे सम्बन्ध अपने आप ही खत्म क्यों हो जाते हैं अर्थात् कोई किसी की ओर ध्यान नहीं देता है।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन करते हुए मानव–जीवन की सच्चाई का बखान किया है।
2. दिनोंदिन सम्बन्धों में बढ़ती दूरी को लेकर कहानीकार चिंतित दिखायी पड़ता है।
3. भाषा में उर्दू शब्दावली का प्रभाव परिलक्षित होता है।
4. शैली में चिंतनपरकता का प्रभाव रहा है।

5

और बार–बार उसे अपने शहर का ख्याल आता है, जिसमें वह खुद रहता है और नौकरी करता है और जो अब तक पराया है। फिर उस शहर का ख्याल आता है जिसमें उसका बाप रहता है और जो उसके बाप के लिए भी पराया हो गया है।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'पराया शहर' से लिया गया है। इसके लेखक 'नई कहानी' परम्परा के लब्धप्रतिष्ठ कहानीकार कमलेश्वर हैं। इस कहानी में लेखक ने शहरी–जीवन में बिखरते सामाजिक–पारिवारिक सम्बन्धों को लेकर कमलेश्वर चिंतित हो उठे हैं। कहानी की इन अंतिम पंक्तियों में सुखबीर नामक पात्र के माध्यम से परायेपन की मनोभावना का यथार्थ चित्रण किया है। वे कहते हैं कि ...

व्याख्याः सुखबीर के मन में अपने नौकरी करने वाले शहर को लेकर भावनाएं बनती हैं क्योंकि वह उसमें रहता भी है और नौकरी भी करता है, लेकिन इसके बाद भी यह शहर उसके लिए पराया ही है। इसके बाद उसे दूसरे शहर की याद आती है जिसमें उसका पिता दुर्गादयाल रहता है। लेखक कहता है कि बदलते समय के प्रभाव के कारण आज उसका पिता भी अपने शहर को अपने लिए पराया अनुभव करने लगा है अर्थात् लोगों के व्यवहार में उसके प्रति अपनत्व की भावना की कमी है।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने परायेपन की साफ तस्वीर पेश की है।
2. अकेलापन मनुष्य के मन को कमजोर कर देता है।
3. भाषा में सहजता है, सटीकता है।
4. उर्दू शब्दावली के प्रभाव से परिपूर्ण चिंतनपूर्ण शैली का प्रयोग मिलता है।

दोपहर का भोजन

अमरकांत

प्र०1 अमरकांत के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः अमरकांत मुंशी प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार रहे हैं। उनका जन्म सन् 1925 ई० को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के भगमलपुर (नगरा) नामक ग्राम में हुआ। इनके पूर्वज कायस्थ थे। हिन्दी साहित्य में अमरकान्त के नाम से प्रसिद्ध, इनका मूल नाम श्रीराम वर्मा था। अमरकान्त की प्रारम्भिक शिक्षा बलिया में ही हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने सैनिक, अमृत और कहानी आदि पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी से युवा अमरकांत का मन काफी उत्साहित हुआ। इनका जीवन अनेक उतार–चढ़ावों से भरा रहा, जिससे उनकी संवेदनशीलता और भी प्रखर हो उठी। साम्यवादी विचारधारा ने भी उनके मानस को काफी प्रभावित किया। जीवन–भर पत्रकारिता से जुड़े रहने वाले अमरकांत ने लेखन–सम्पादन को ही अपना व्यवसाय बनाए रखा। सन् 1955 में प्रकाशित 'कहानी' पत्रिका के विशेषांक ने इन्हें पर्याप्त ख्याति दिलाई। निरन्तर साहित्य–साधना ही अमरकांत के जीवन का लक्ष्य रही है।

साहित्यिक कृतियाँः यद्यपि अमरकान्त ने मौलिक–लेखन की अपेक्षा सम्पादन–कार्य अधिक किया है। किन्तु उनके कुछ कहानी संग्रह और उपन्यास काफी चर्चित रहे हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं–

कहानी–संग्रह – जिन्दगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, कुहासा आदि। इनमें संकलित दोपहर का भोजन, डिप्टी कलेक्टरी, मौत का नगर एवं छिपकली जैसी कहानियां काफी चर्चित रही हैं।

उपन्यास – सूखा पत्ता, पराई डाल का पंछी, ग्राम सेविका, सुख जीवी, बीच की दीवार, काले–उजले दिन आदि।

साहित्यिक विशेषताएंः साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित कहानीकार अमरकांत का साहित्य निम्न मध्य वर्ग के लोगों के अन्तर्द्वन्द्व की मुखर अभिव्यक्ति रहा है। सम्यक भाषा का प्रयोग करते हुए समस्याओं को चित्रित करना उनके रचना–कौशल में सर्वत्र विद्यमान है। इसका निवेचन निम्न प्रकार से भी कर सकते हैं–

1. ***निम्न मध्यवर्ग के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण*** – अमरकान्त की कहानियों में निम्न मध्यवर्ग से पात्र चुनकर उनकी मानिसक अन्तर्द्वन्द्वता का सटीक चित्रण किया गया है। उनकी कहानी 'दोपहर का भोजन' भी इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व का निरुपण करती जान पड़ती है। कहानीकार को इस वर्ग को आर्थिक विपन्नता का सम्यक ज्ञान रहा है। यही कारण है कि परिवार की गरीबी का चित्रण करते समय कहानीकार भावुक हो उठा है। मुंशी चंद्रिका प्रसाद छंटनी के नाम पर नौकरी से निकाल दिये जाने पर परिवार को भोजन तक भी नहीं दे पाते। उस समय स्थिति और भी दयनीय हो जाती है, जब उनकी पत्नी सिद्धेश्वरी घर के पाँच सदस्यों के लिए गिनकर

सात रोटियां बनाती है। कहने का मतलब है कि कहानीकार ने अभावग्रस्त जिन्दगी का मार्मिक चित्रण किया है।

2. ***यथार्थपरकता*** – कहानीकार अमरकांत की कहानियां यथार्थपरक भावना से ओत–प्रोत हैं। उनकी 'दोपहर का भोजन' नामक कहानी ही नहीं, समस्त साहित्य यथार्थ के धरातल पर लिखा गया है। उनके भले विवेच्य कहानी के लिए भले ही काल्पनिक हों, उनका जीवन भले ही प्रतीकात्मक हो, लेकिन उनका ध्येय यथार्थ का जीता–जागता उदाहरण है। आज भी समाज में मुंशी चन्द्रिका प्रसाद जैसे कितने लोग हैं, जिनके पास परिवार के भरण–पोषण के लिए व्यवस्था नहीं है। अमरकांत आदर्शों के नाम पर दिखावे की अपेक्षा वास्तविकता का अधिक चित्रण करते हैं।

3. ***मनोवैज्ञानिकता*** – अमरकांत की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता का पुट रहता है। उनके पात्र मन ही मन सोचते रहते हैं। कभी मानसिक रूप से परेशान दिखते हैं तो कभी मनोविश्लेषण करने लगते हैं। ऐसा भी हुआ जब कहानी में पात्र विवश होकर मन ही मन टूटते दिखायी पड़ते हैं।

4. ***पात्रों की सजीव योजना*** – इस कहानी के आधार पर अमरकांत की साहित्यिक विशेषता का एक और तत्व सामने आता है कि उन्होंने अपने कथानक को उजागर करने के लिए जिन भी पात्रों को चुना है, वे सब सजीव जान पड़ते हैं अर्थात् ऐसा लगता है जैसे वे सब पाठक के सामने बैठकर भोग रहे हों। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उनका व्यक्तित्व काल्पनिक है या प्रदर्शित व्यवहार काल्पनिक है।

5. ***व्यंग्य का प्रयोग*** – अमरकांत ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में चल रही मनमानी, भ्रष्टाचार, बेकारी एवं भुखमरी को लेकर पूँजीपति एवं शोषक वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है। कहानीकार का मत है कि निम्न मध्य वर्ग के बीच लोक–लुभावने नारे तो दिये जाते हैं, लेकिन परिवर्तन के नाम पर की जाने वाली छंटनी का प्रभाव भी मुंशी चन्द्रिका प्रसाद एवं उसके परिवार पर ही पड़ता है।

6. ***करुणा एवं सहानुभूति का स्वर*** – कहानीकार ने अपनी रचनाओं में ऐसे दृश्यों एवं घटना–चित्रों का वर्णन किया है जिन्हें पढ़कर और सुनकर पाठक का हृदय करूणा एवं सहानुभूति से भर उठता है। जैसे ही सिद्धेश्वरी बची खुची तरकारी और शेष बची, जली हुई एक रोटी को लेकर खाने बैठती है तो उसे सोये हुए पुत्र की याद आ जाती है और उसमें से आधी रोटी उसके लिए रख देती है। उसकी आँखों से बहते आंसू सहज ही करूणा एवं सहानुभूति का वातावरण बनाकर 'दोपहर का भोजन' कहानी को सार्थकता प्रदान कर देते हैं।

7. ***भाषा–शैली*** – 'दोपहर का भोजन' कहानी को पढ़ने पर आसानी से अमरकांत की भाषा–शैली को समझा जा सकता है। तत्सम–तद्भव शब्दों से परिपूर्ण उनकी भाषा में देशज शब्दावली के साथ–साथ उर्दू शब्दों का खूब प्रयोग मिलता है। काव्यमयी गद्य–भाषा में लोकोक्ति–मुहावरों के प्रयोग से कहानीकार की भाषा और भी प्रभावशाली बन पड़ी है। प्रस्तुति में वर्णनात्मक शैली के साथ–साथ चिंतनपरक, मनोविज्ञान एवं व्याख्यापरक गुण का सहारा लिया है। यही कारण है कि उनकी भाषा–शैली पर्याप्त रोचक एवं चिन्ताकर्षक रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानीकार अमरकांत की कहानियां दायित्व–बोध की भावना से तो परिपूर्ण हैं ही, साथ ही उनका भाषा–विधान भी उच्चकोटि का है। भाषा और भाव दोनों ही उत्तम हैं। समसामयिकता का पर्याप्त प्रभाव अमरकांत की रचनाओं पर दिखायी पड़ता है।

प्र०2 'दोपहर का भोजन' कहानी में निम्न मध्यम वर्गीय जीवन की त्रासदी का मार्मिक चित्रण हुआ है– स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः अमरकान्त की कहानी 'दोपहर का भोजन' में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक तंगी, भुखमरी, बेकारी का मार्मिक चित्रण किया है। परिवार की स्थिति इतनी अधिक गरीब है कि सबके खाने के लिए पूरा भोजन भी नहीं है किन्तु सिद्धेश्वरी किसी प्रकार से सब को भोजन करा ही देती है और स्वयं आधी रोटी खाकर गुजारा करती है।

कहानी मुंशी चन्द्रिका प्रसाद के परिवार की है। उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष के लगभग थी, किन्तु पचास–पचपन के लगते थे। शरीर के चमड़े झूल रहे थे और गंजी खोपड़ी आईने की भाँति चमक रही थी। डेढ़ महीने पूर्व मुंशी जी की मकान–किराया–नियन्त्रण विभाग से क्लर्की से छंटनी हो गयी है। उनके परिवार में उनकी पत्नी सिद्धेश्वरी तथा तीन लड़के रामचन्द्र, मोहन और प्रमोद क्रमशः इक्कीस, अठारह, और छः वर्ष के थे। रामचन्द्र समाचार–पत्र के कार्यालय में प्रूफ रीडिंग सीख रहा है तथा मोहन ने दसवीं की प्राइवेट परीक्षा देनी है।

सिद्धेश्वरी दोपहर का खाना बनाकर सब की प्रतीक्षा कर रही है। घर के दरवाजे पर खड़ी देखती है कि गर्मी में कोई–कोई आता जाता दिखाई दे रहा है। वह भीतर की ओर आती है, तो तभी उसका बड़ा बेटा रामचन्द घर में आता है। वह भय और आतंक से चुप एक तरफ बैठ जाती है। लिपे पुते आंगन में पड़े पीढ़े पर आकर रामचन्द बैठ जाता है। वह उसे दो रोटियाँ दाल और चने की तरकारी खाने के लिए देती है। माँ के कहने पर भी और रोटी नहीं लेता क्योंकि वह जानता है कि अभी औरों ने भी खाना है। मोहन को भी वह दो रोटी, दाल और तरकारी देती है और रोटी लेने से वह भी मना कर देता है पर दाल मांग कर पी लेता है। आखिर में मुंशी जी आते हैं। उन्हें भी वह दो रोटी, दाल और चने की तरकारी देती है। जब और रोटी के लिए पूछती है तो वे घर की दशा से परिचित होने के कारण रोटी लेने से मना कर देते हैं किन्तु गुड़ का ठड़ा रस पीने के लिए मांगते हैं। इस प्रकार सब को भोजन कराने के बाद वह स्वयं खाने बैठती है तो शेष एक मोटी, भद्दी और जली हुई रोटी बची होती है जिसमें से आधी प्रमोद के लिए बचा कर, आधा कटोरा दाल और बची हुई चने की तरकारी से अपना पेट भरने का प्रयास करती है।

घर में गरीबी इतनी है कि सब को भरपेट भोजन भी नसीब नहीं हो रहा। रामचन्द्र इण्टर पास है फिर भी उसे कहीं काम नहीं मिलता। रामचन्द्र को खाना–खिलाते सिद्धेश्वरी पूछती है, "वहाँ कुछ हुआ क्या ?" रामचन्द्र भावहीन आँखो से माँ की ओर देखकर कहता है, "समय आने पर सब कुछ हो जाएगा। जब रामचन्द्र मोहन के बारे में माँ से पूछता है तो "मोहन दिन भर इधर–उधर गलियों में घूमता रहता है" पर वह रामचन्द्र के सामने यही कहती है कि अपने किसी मित्र के घर पढ़ने गया हुआ है।

"मुंशी चन्द्रिका प्रसाद के पास पहनने के लिए तार–तार बानियाइन है। आँगन की अलगनी पर कई पैबन्द लगी गन्दी साड़ी टँगी हुई हैं। दाल पनिऔला बनती है। प्रमोद अध–टूटे खटोले पर सोया है। वह हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया है। मुंशी जी पैंतालीस के होते हुए भी पचास पचपन के लगते हैं। सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की अँगुलियों या जमीन पर चलते चींटे–चींटियों को देखने लगी। अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है। वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लौटा–भर पानी लेकर गटगट चढ़ा गयी। खाली पानी उसके कलेजे

में लग गया और वह 'हाय राम' कहकर वहीं जमीन पर लेट गयी। लगभग आधे घण्टे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'दोपहर का भोजन' कहानी में अमरकान्त ने निम्न मध्यम वर्गीय जीवन की त्रासद स्थिति का जीवन्त निरूपण किया है। परिवार का मुखिया बेरोजगार है फिर भी उसकी पत्नी खींचतान कर के घर का खर्चा चला रही है परन्तु खाना खाने के बाद मुंशी जी औंधे मुँह घोड़े बेचकर ऐसे सो रहे थे जैसे उन्हें काम की तलाश में कहीं जाना ही नहीं है। अभावों में जीने के कारण सिद्धेश्वरी चाहकर भी किसी से खुलकर नहीं बोल पाती। मुंशी जी भी चुपचाप दुबके हुए खाना खाते हैं। इन सब से इस परिवार की घोर विपन्नता का ज्ञान होता है जो इस परिवार की ही नहीं जैसे निम्न मध्यम वर्गीय जीने वाले सभी परिवारों की त्रासदी है।

प्र०3 'दोपहर का भोजन' कहानी के कथ्य को अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तरः दोपहर का भोजन कहानी अमरकान्त द्वारा लिखित ऐसी कहानी है, जिसमें आर्थिक–विपन्नता के कारण दयनीय हालत को प्राप्त परिवार का चित्र उपस्थित किया गया है। गृहस्वामिनी सिद्धेश्वरी घर में उपलब्ध सामान का ध्यान रखते हुए अधिक पानी की दाल, चने की तली तरकारी और सात रोटियां बनाती है जबकि घर में खाने वालों की संख्या पाँच–छह है। मन ही मन वह सोचती है कि अभी तक कोई घर नहीं लौटा है। दोपहर की भयानक गर्मी पड़ रही है। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद, जो मकान–किराया–नियन्त्रण विभाग में क्लर्क थे, छंटनी में नौकरी से निकाल दिये गए। बड़ा बेटा रामचन्द्र प्रूफरीडरी का काम सीखता है। मोहन दसवीं में पढ़ता है। छोटा बेटा प्रमोद टूटी खटोले में पड़ा हुआ है जिसे बुखार भी है।

कहानी का मूल कथ्य आर्थिक–विपन्नता पर केन्द्रित है। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद का परिवार दयनीय स्थिति में है। जब से उसकी नौकरी छूटी है, तब से तो उस परिवार की हालत और भी दयनीय हो गयी है। कहानी में ऐसे अनेक वर्णन हैं, जिनको पढ़कर पाठक का हृदय करूणा से भर जाता है। इसमें एक और बात है कि सिद्धेश्वरी अपने पुत्रों के सामने लाचार सी खड़ी दिखायी पड़ती है। बार–बार खाने के लिए खुशामद करती है। रामचन्द्र खाने पर बैठते समय अपने पिता के खाने के सम्बन्ध में पूछता है, फिर मंझले भाई मोहन के सम्बन्ध में पूछता है। प्रमोद के सम्बन्ध में पूछता है। इससे पता चलता है कि परिवार का वातावरण आर्थिक रूप से दयनीय होते हुए भी सम्बन्धों की दृष्टि से अच्छा है।

जैसे ही रामचन्द्र खाना खाकर उठता है, उसी समय मोहन आ जाता है। हाथ–मुँह धोकर खाने पर बैठता है। सिद्धेश्वरी बनावटी प्रशंसा करने लगती है। मोहन बहुत जल्दी ही दोनों रोटी दाल और तरकारी खत्म कर देता है। सिद्धेश्वरी और खाना देने का उपक्रम करती है, लेकिन मोहन चौके की ओर झांककर मना कर देता है। सिद्धेश्वरी ज्यादा जिद करती है तो वह दाल ले लेता है। इसी बीच चन्द्रिका प्रसाद आ जाते हैं। पालथी मारकर पीढ़े पर बैठ जाते हैं। सिद्धेश्वरी खाना परोसती है। फिर और लेने को कहती है लेकिन रसोई में झांककर वे कहते हैं कि मेरा पेट भर गया है, पर थोड़ा गुड़ हो तो दे दो। गुड़ खाने के बाद एक लोटा पानी पी लेते हैं। इसके पीछे कहानीकार का कथ्य है कि पेट को भरने के लिए गुड़ और पानी का सहारा लिया है। इसके बाद सिद्धेश्वरी खाने के लिए बैठती है तो एक जली रोटी और थोड़ी तरकारी बची है। जैसे ही वह एक टुकड़ा तोड़ती है, उसे सोए हुए बच्चे की याद आ जाती है और सिद्धेश्वरी एक रोटी में से आधी रोटी उसके लिए रख देती है।

कहानी के अंत में लेखक ने मक्खियों के भिनभिनाने, फटी गन्दी साड़ी के आंगन में टँगे होने का वर्णन कर निम्न मध्य वर्गीय परिवार की आर्थिक–विपन्नता का स्वाभाविक चित्रण किया है। नौकरी से निकाल दिया जाना, बच्चों का बेकार घूमना परिवार की हालत को और भी दयनीय बना देता है।

प्र०4 कहानी के निष्कर्ष के आधार पर 'दोपहर का भोजन' कहानी का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः साहित्य–समीक्षकों ने कहानी के 'निकष' को लेकर जो मापदण्ड निर्धारित किये हैं, वे हैं– कथावस्तु, पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल और वातावरण, भाषा–शैली एवं उद्देश्य। कहानीकार अमरकांत द्वारा लिखित कहानी दोपहर का भोजन समसामयिक सामाजिक यथार्थ को चित्रित करती कहानी है। निम्न मध्य वर्गीय परिवार की आर्थिक–विपन्नता को लेकर लिखी गयी इस कहानी को कहानी–कला के निकष अर्थात् कसौटी पर निम्न प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है–

1. ***कथावस्तु*** **–** इस कहानी की कथावस्तु का प्रारम्भ मुंशी चन्द्रिका प्रसाद की पत्नी सिद्धेश्वरी की खाना बनाने के बाद दरवाजे पर खड़ी होकर अपने पति तथा पुत्रों के इंतजार के साथ हुआ है। चूल्हे पर सात रोटी बनाने के बाद उसे प्यास लगती है। उठकर एक लोटा पानी पी जाती है जिससे उसकी छाती में दर्द हो जाता है। थोड़ी देर जमीन पर पड़ी रहकर उसका ध्यान छह वर्षीय बेटे प्रमोद की ओर चला जाता है, जो गरीबी के कारण कुपोषण का शिकार है।

   पाँच सदस्यों वाले परिवार में मुंशी चन्द्रिका प्रसाद की छंटनी के कारण नौकरी छूट गयी है। बड़ा बेटा रामचंद्र प्रूफरीडिंग सीख रहा है। मंझला बेटा मोहन दसवीं में पढ़ रहा है। खाने के लिए सबसे पहले बड़ा बेटा रामचन्द्र आता है। उसने कपड़े भी साधारण पहन रखे हैं। जूतों पर गर्द (धूल) जमी हुई है। खाने पर बैठते ही अपने पिता और मोहन के खाने के सम्बन्ध में पूछता है और प्रमोद की बीमारी के सम्बन्ध में भी पूछता है। डरती हुई सिद्धेश्वरी रामचन्द्र के लिए दो रोटी, पनियाली दाल तथा चने की तली तरकारी परोस देती है। और भी देने का उपक्रम करती है, परन्तु उसी बीच मोहन आ जाता है। फिर डरती हुई सिद्धेश्वरी वही खाना उसे भी परोस देती है। झूठ के लिए मोहन की प्रशंसा भी करती है। जल्दी ही मोहन सारा खाना खत्म कर देता है तो सिद्धेश्वरी और लेने के लिए मनाने का प्रयास करती है, लेकिन रसोई की ओर झांककर मोहन मना कर देता और थोड़ी दाल के लिए कहता है। सिद्धेश्वरी दाल देती है और मोहन सुड़–सुड़ कर उसे पी जाता है।

   इसी बीच मुंशी चन्द्रिका प्रसाद हारे–थके पालथी मारकर पीढ़े पर आकर बैठ जाते हैं। सिद्धेश्वरी के द्वारा दिये खाने को बूढी गाय की जुगाली की तरह खाते हैं। फटेहाल मुंशी की खाल लटक गयी है और सिर के बाल उड़ गए हैं। सिद्धेश्वरी फिर उनसे भी और खाने की ज़िद करती है, परन्तु वे गुड़ खाकर पानी पी लेते हैं। बची एक रोटी में से आधी रोटी वह सोते हुए बच्चे के लिए रख देती है। अंत में कहानीकार ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ घर की दयनीयता का चित्रण किया है, जहाँ बेकारी की भयंकर मार ने अपना प्रभाव जमा रखा है। कथावस्तु की सहजता पाठक के हृदय पर अपनी छाप छोड़ती चली जाती है। भले ही कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त है, लेकिन समाज की गहरी सच्चाई को उजागर करती चली जाती है।

2. ***पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण*** – यह ठीक है कि कहानी में समस्या को उजागर करने पर विशेष बल दिया गया है लेकिन पात्रों के अभाव में कहानी को सफलता की ओर तो जाना संभव नहीं है। अमरकांत ने 'दोपहर का भोजन' कहानी में मुंशी चन्द्रिका प्रसाद, सिद्धेश्वरी, रामचन्द्र एवं मोहन नामक पात्रों का सहारा लिया है। यद्यपि एक पाचवाँ पात्र भी सामने आया है, लेकिन वह अपनी ओर से कुछ नहीं बोलता। उसे कुपोषण का शिकार दिखाकर कहानीकार ने आर्थिक तंगी के प्रभाव का चित्रण किया है। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद भी केवल परिवार के मुखिया के रूप में सामने आते हैं। उनकी कोई विशेष भूमिका नहीं है। इसी प्रकार उनके दोनों बेटे रामचन्द्र एवं मोहन भी कोई विशेष भूमिका लेकर नहीं आते। रामचन्द्र अवश्य अपने पिता एवं भाइयों के प्रति सहानुभूति दिखाने की कोशिश करता है; लेकिन सिद्धेश्वरी अवश्य ऐसी पात्र है जो अपने पति तथा पुत्रों के प्रति समान भाव से भूमिका निभाती है। वह सबका ख्याल रखने की कोशिश करती है। स्वयं भूखी रहकर सबको खिलाना चाहती है। अपने दोनों बड़े बेटों से उसे डर लगता है। बार–बार उनकी खुशामद सी करके अपने वात्सल्यमयी मातृत्व हृदय एवं पतिपरायणा स्त्री का दायित्व निभाती दिखायी पड़ती है।

   कहने का मतलब है कि कहानी में लेखक ने ऐसे पात्रों की प्रस्तुति की है, जिनका आचरण समसामयिक समाज की यथार्थ स्थिति के साथ तालमेल बिठाना चाहता है, विद्रोह नहीं। यही कारण है कि तरीके से कहानीकार ने पात्रों को परिस्थिति से अनजान बनाए रखने का प्रयास किया है।

3. ***कथोपकथन या संवाद*** – कहानी को चरम तक पहुँचाने में कथोपकथन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अमरकांत ने दोपहर का भोजन कहानी में संवादों की प्रभावपूर्ण व्यवस्था की है। भले ही कुछ संवाद मानसिक रहे हैं लेकिन उनकी स्वाभाविक प्रस्तुति कथ्य को उजागर करती चली जाती है। रामचन्द्र द्वारा प्रमोद के सम्बन्ध में पूछे जाने पर सिद्धेश्वरी बहुत कुछ छिपाना चाहती है, परन्तु संवादों से स्वतः साफ हो जाता है–

   रामचन्द्र ने अचानक चुप्पी को भंग करते हुए पूछा, "प्रमोद खा चुका ?"

   सिद्धेश्वरी ने प्रमोद की ओर देखते हुए उदास स्वर में उत्तर दिया, "हाँ, खा चुका।"

   "रोया तो नहीं था ?"

   सिद्धेश्वरी फिर झूठ बोल गई, "आज तो सचमुच नहीं रोया। वह बड़ा ही होशियार हो गया है। कहता था, बड़का भैया के यहाँ जाऊँगा। ऐसा लड़का ...।

   इस प्रकार अमरकांत द्वारा इस कहानी में प्रयुक्त कथोपकथन छोटे होते हुए भी प्रभावशाली हैं। अपने भाव को प्रेषित करने में सफल हैं।

4. ***देशकाल और वातावरण*** – इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी कहानी की सफलता–असफलता उसमें चित्रित देशकाल और वातावरण के स्वरूप पर निर्भर करती है। जब तक उसकी पृष्ठभूमि देशकाल की दृष्टि से सम्यक नहीं है, तब तक उसका यथार्थ काल्पनिक ही अधिक लगेगा। दोपहर का भोजन कहानी का समूचा कथ्य एक ही वातावरण में अभिव्यक्त हुआ है। घर का वातावरण ही कहानी में प्रमुखता से चित्रित हुआ है। पूरी कहानी एक ही परिवेश में प्रारम्भ होकर विकसित हुई है और उत्कर्ष तक पहुँची है। मनोभावों को चित्रित करने के लिए भी कहानीकार ने सम्यक वातावरण

तैयार किया है, जैसे– "दस–पन्द्रह मिनट तक वह उसी तरह खड़ी रही, फिर उसके चेहरे पर व्यग्रता फैल गई और आसमान तथा कड़ी धूप की ओर चिन्ता से देखा। एक–दो क्षण बाद उसने सिर को किवाड़ के काफी आगे बढ़ाकर गली के छोर की तरफ निहारा, तो उसका बड़ा लड़का रामचन्द्र धीरे–धीरे घर की ओर सरकता नजर आया।"

5. ***भाषा–शैली*** – भाषा–शैली की दृष्टि से भी यह कहानी सफल मानी जा सकती है, क्योंकि कहानीकार ने भाषा का स्वरूप सृजित करने समय पात्र, वातावरण, मनोभाव, कथ्य आदि का सम्यक ध्यान रखा है। उनके पात्रों के मुख से निकलने वाले शब्द सहजता का बोध लिए हुए हैं। तत्सम–तद्भव शब्दों से अधिक ग्रामीण अंचल में बोले जाने वाले शब्दों का प्रयोग कर अमरकांत ने इसे स्वाभाविक गति प्रदान करने का प्रयास किया है, जैसे– "वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा–भर पानी गटगट चढ़ा गयी।" इसी तरह– 'उसका पेट हंडिया की तरह फूला हुआ था।' वाक्य में भाषा का स्वाभाविक रूप देखा जा सकता है। अन्य देशज शब्दों में पीढ़ा, पालथी, खड़खड़ैया, पनियाली, बड़का चुभला आदि का प्रयोग भी सहज बन पड़ा है। उर्दू शब्दों के प्रयोग द्वारा भी कहानी की भाषा–शैली के माध्यम से कहानीकार ने नाटकीय गुण पैदा करने का भी सम्यक प्रयास किया है।

6. ***उद्देश्य*** – 'दोपहर का भोजन' कहानी के माध्यम से लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक–विपन्नता एवं उसके कारण दयनीय हालत को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना चाहा है, जिसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। कहानी के माध्यम से अमरकांत यह भी कहना चाहते हैं कि घर के मुखिया के बेकार होने पर घर की आर्थिक स्थिति और भी बुरी हो जाती है। यहाँ तक परिवार के सदस्यों का भरण–पोषण भी दूभर हो जाता है। बच्चों का स्वभाव जरा–जरा सी बात पर नाराज होने का हो जाता है। इसके अलावा कहानी के माध्यम से लेखक ने नारी के त्याग, सहनशीलता एवं वत्सलतापूर्ण हृदय का भी चित्रण किया है। कहने का मतलब है कि उद्देश्य की दृष्टि से भी 'दोपहर का भोजन' कहानी सफल है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कहानी के निकष के आधार पर अमरकांत की कहानी दोपहर का भोजन एक सफल कहानी है।

प्र०5 'दोपहर का भोजन' की भाषा–शैली पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तरः भाषा भावाभिव्यक्ति का सशक्त साधन है, क्योंकि मानव जीव–जगत् के धरातल पर जो कुछ सोचता है, अनुभव करता है; उसे भाषा के माध्यम से ही व्यक्त करता है। दोपहर का भोजन कहानी भी अमरकांत की उन्हीं संवेदनानुभूतियों पर आधारित है, जो समाज में रहकर अनुभव हुई हैं। अमरकांत की भाषा–शैली सहज–सरल और स्वाभाविक है, जिसके माध्यम से लेखक ने जटिल से जटिल समस्या को सरल बना दिया है। आम बोलचाल के शब्दों से परिपुष्ट 'दोपहर का भोजन' कहानी की भाषा–शैली को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. ***आम बोलचाला की सरल भाषा*** – दोपहर का भोजन कहानी में लेखक ने आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि रचनाकार स्वयं चलकर उसी परिवेश में पहुँच गया है और भाषा का प्रयोग कर रहा है, जैसे– "पर वह आगे कुछ न बोल सकी, जैसे उसके गले में कुछ अटक गया। कल प्रमोद ने रेवड़ी

खाने की जिद पकड़ ली थी और उसके लिए डेढ़ घण्टे रोते–रोते सोया था।" कहानी के अंत में भी इस प्रकार की भाषा–शैली का रूप देखा जा सकता है, जैसे– "सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गन्दी साड़ी टँगी थी, जिसमें कई पैबन्द लगे थे।

2. ***पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग –*** कहानीकार अमरकांत ने 'दोपहर का भोजन' कहानी में भाषा का प्रयोग करते समय पात्रों के स्तर का ध्यान रखा है। इसका सम्यक निरूपण सिद्धेश्वरी, मुंशी चन्द्रिका प्रसाद, रामचन्द्र और मोहन की भाषा में देखा जा सकता है। इस प्रकार के कथनों की सबसे बड़ी विशेषता है कि कहानी में स्वाभाविकता झलकती है। सिद्धेश्वरी मोहन से कहती है, "बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था। कह रहा था, मोहन बड़ा दिमागी होगा, उसकी तबीयत चौबीसों घण्टों पढ़ने में ही लगी रहती है।" ... नहीं बेटा, मेरी कसम, थोड़ी ही ले लो। तुम्हारे भैया ने एक रोटी ली थी।" भाषा के प्रस्तुतिकरण में माँ के हृदय की वत्सलता एवं निश्छलता का भाव उजागर हुआ है। मोहन का कहना कि 'नहीं रे, बस। अव्वल तो अब भूख नहीं। फिर रोटियां तूने ऐसी बनाई है खायी नहीं जातीं, न मालूम कैसी लग रही हैं।" उसके मन की परेशानी एवं झुंझलाहट की ओर संकेत करती है।

3. ***उर्दू मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग –*** कहानी 'दोपहर का भोजन' में अमरकान्त ने उर्दू–मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग किया है। कहानीकार द्वारा प्रयुक्त शब्द विधान सर्वथा कथ्य के अनुकूल हुआ है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उर्दू शब्दों का प्रयोग बलात् किया जा रहा है, अपितु भाव–व्यंजना की सटीकता ही व्यंजित हुई है।

4. ***देशज शब्दावली का प्रयोग –*** इस कहानी में कहानीकार ने कथ्य के परिवेश को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण–अंचल में प्रयुक्त देशज शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। इससे ग्रामीण–संस्कृति की यथार्थ झलक पाठक की आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है, जैसे– "उसने फुर्त्ती से एक लोटा पानी ओसारे की चौकी के पास नीचे रख दिया और चौके में जाकर खाने के स्थान को जल्दी–जल्दी पानी से लीपने–पोतने लगी। वहाँ पीढ़ा रखकर उसने सिर को दरवाजे की ओर घुमाया ही था कि रामचन्द्र ने अन्दर कदम रखा।' इस उदाहरण में प्रयुक्त लोटा, ओसारे, चौकी, चौका, लीपने–पोतने, पीढ़ा आदि शब्दों का प्रयोग कहानी के कथ्य की मौलिकता को उजागर करता है।

5. ***चित्रात्मक भाषा –*** कहानी की भाषा पाठक के सम्मुख चित्र उपस्थित करने में सक्षम है। कहानीकार जिस भी दृश्य या घटना का वर्णन करना चाहता है, उसे शब्दों के माध्यम से चित्रित करता जान पड़ता है। प्रमोद के कुपोषण का वर्णन हो या फिर घर की आर्थिक–तंगी की दयनीयता का या फिर बेकारी के कारण टूटते युवाओं के मन का; कहानीकार ने चित्र उपस्थित करने में पर्याप्त सफलता हासिल की है। जैसे– "लड़का नंग धड़ँग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ दिखाई देती थीं। उसके हाथ–पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हंडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ बैठ–उड़ रही थीं।"

6. ***शैली में सहजता –*** कहानी की शैली सहज रही है जिसका पाठक पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी यह कहानी आत्मकथात्मक और प्रतीकात्मक

शैली के प्रयोग से भी अपने कथ्य को उजागर करती दिखायी पड़ती है। यथावश्यक संवादात्मक प्रयोग कथा को गतिशील एवं विकसित करते हुए सामने आए हैं। सिद्धेश्वरी की आत्मपरकता एवं संवादात्मकता कहानी को मार्मिक बनाने में सार्थक प्रयास मानी जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'दोपहर का भोजन' कहानी की भाषा सहज, सरल, विषयानुकूल एवं कथ्य को उजागर करने में सक्षम है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि कहानीकार ने भाषा के साथ बलात् प्रयास किया है। प्रत्येक वाक्य और शब्द–समूह अपने अभीष्ट को उजागर करता दिखायी पड़ता है। लोकोक्ति–मुहावरों ने भाषा को और भी सजीव बना दिया है।

0;k[;k

1

लगभग आधे घण्टे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गई, आँखों को मल–मलकर इधर–उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अध–टूटे खटोले पर सोये अपने छह वर्षीय लड़के प्रमोद पर जम गयी। लड़का नंग–धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियां साफ दिखायी देती थीं। उसके हाथ–पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हंडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ बैठ–उड़ रही थीं।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'दोपहर का भोजन' नामक कहानी से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध यथार्थवादी कहानीकार अमरकांत है। इस कहानी में लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय परिवार की भुखमरी तथा बेकारी का यथार्थ चित्रण किया है।

इस गद्यांश के माध्यम से कहानीकार अमरकांत गरीबी के कारण बच्चों के पालन–पोषण में आने वाली समस्याओं की ओर ध्यान खींचते हुए कहते हैं कि ...

व्याख्याः मुंशी चन्द्रिका प्रसाद की पत्नी लगभग आधे घण्टे तक जमीन पर पड़े रहने के बाद होश में आयी। अपनी हारी–थकी आँखों को मला, इधर–उधर झांका। फिर उसकी दृष्टि अपने छह वर्ष के बेटे प्रमोद पर जाकर टिक गयी, जो आधे–टूटे खटोले में पड़ा हुआ था। उसके शरीर पर कपड़े तक नहीं थे। इतना कमजोर था कि उसकी गले तथा छाती की हड्डिया साफ नजर आ रही थीं। हाथ पैरों में बिल्कुल ताकत नहीं थी। ऐसा लगता था, मानो बासी ककड़ी सिकुड़ गयी हों। कमजोरी के कारण उसका पेट निकल आया था, जो मिट्टी के बर्तन हंडिया की तरह फूला हुआ था। मुँह ढँकने के लिए कपड़ा न होने के कारण उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने भुखमरी, बेकारी तथा आर्थिक तंगी से जूझते परिवार की दयनीयता का यथार्थ चित्रण किया है।
2. काव्यमयी उपमानों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया है।
3. तत्सम्, तद्भव एवं देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा में प्रभावोत्पादकता आ गयी है।
4. चित्रात्मक–शैली और वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

2

दो रोटियाँ, कटोरा भर दाल तथा चने की तली तरकारी। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद पीढ़े पर पालथी मारकर बैठे रोटी के एक–एक ग्रास को इस तरह चुभला–चबा रहे थे, जैसी बूढी गाय जुगाली करती है। उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष के लगभग थी, किन्तु पचास–पचपन के लगते थे। शरीर के चमड़े झूल रहे

थे और गंजी खोपड़ी आइने की भाँति चमक रही थी। गन्दी धोती के ऊपर अपेक्षाकृत कुछ साफ बनियाइन तार–तार लटक रही थी।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'दोपहर का भोजन' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ यथार्थवादी कहानीकार अमरकांत हैं। इस कहानी में बेकारी के कारण आर्थिक तंगी से जूझते निम्न मध्य वर्गीय परिवार की जिन्दगी का मार्मिक चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत गद्यांश में अमरकांत मुंशी चन्द्रिका प्रसाद के परिवार की भोजन–व्यवस्था में दयनीय–हालत का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ...

व्याख्याः मुंशी चन्द्रिका प्रसाद पीढ़े पर जाकर बैठ गए। उनके सामने भी दो रोटियां, कटोरे में दाल तथा चने की तली हुई सब्जी परोस दी गयी। एक–एक टुकड़ा चबाया नहीं जा रहा था। ऐसा लगता था मानो कोई बूढ़ी गाय रह–रहकर जुगाली कर रही हो। कहने का मतलब है कि उसमें कोई स्वाद नहीं था। आर्थिक तंगी के कारण उनकी उम्र भी पैंतालीस के स्थान पर पचास–पचपन के लगभग महसूस होती थी। शरीर की खाल लटक गयी थी और सिर के बाल भी उड़ गए थे, जिससे सिर शीशे की तरह चमकता था। धोती बिल्कुल गन्दी थी। बनियान कुछ साफ तो थी, लेकिन बिल्कुल फटी हुई थी।

विशेषः

1. कहानीकार ने भोजन तक की कमी की और पाठकों का ध्यान खींचा है। साथ ही स्पष्ट किया है कि समाज में निम्न–मध्यवर्ग के पास शरीर ढकने के लिए वस्त्रों की भी कमी है।
2. भाषा में देशज शब्दों का प्रभावजनित प्रयोग हुआ है।
3. लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रसंगानुकूल प्रयोग मिलता है, जैसे– बूढ़ी गाय का जुगाली करना, आइने की भाँति चमकना, तार–तार लटकना आदि।

3

उन्माद की रोगिणी की भाँति बड़बड़ाने लगी, "पागल नहीं है, बड़ा होशियार है। उस जमाने का कोई महात्मा है। मोहन तो उसकी बड़ी इज्जत करता है। आज कह रहा था कि भैया की शहर में बड़ी इज्जत होती है, पढ़ने–लिखने वालों में बड़ा आदर होता है और बड़का तो छोटे भाइयों पर जान देता है। दुनिया में वह सब कुछ सह सकता है, पर यह नहीं देख सकता कि उसके प्रमोद को कुछ हो जाए।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठय पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'दोपहर का भोजन' से अवतरित है। इसके लेखक हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानीकार 'अमरकांत' हैं। इस कहानी में लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय परिवार की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। प्रस्तुत गद्यांश में कहानीकार सिद्धेश्वरी के मातृत्व हृदय की भावुकता और सदाशयता का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्याः जैसे सिद्धेश्वरी ने पुत्र की बातों को सुनकर चन्द्रिका प्रसाद के चेहरे पर चमक देखी तो पागलपन के रोगी की तरह वह बड़बडाने लगी अर्थात् मुँह–मुँह में ही कुछ कहने लगी। मेरा बेटा पागल नहीं, बड़ा चतुर है, होशियार है। पहले का कोई महात्मा है। मोहन की नजरों में तो उसकी

बहुत इज्जत है अर्थात् सम्मान करता है। आज वह खुद ही कह रहा था कि बड़े भाई की इस शहर में बड़ी इज्जत होती है। सभी पढ़े–लिखे लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। बड़ा बेटा भी अपने छोटे भाइयों पर जान देता है अर्थात् पूरा ध्यान रखता है। दुनिया के सभी कष्ट सहने के लिए तैयार है, लेकिन उसे यह स्वीकार नहीं कि उसके छोटे भाई प्रमोद को कोई नुकसान या बीमारी से हानि हो।

विशेषः

1. इसमें कहानीकार ने मातृत्व–हृदय की कोमलता का सहज चित्रण किया है।
2. देशज शब्दावली का सहज–स्वाभाविक प्रयोग है।
3. शैली में वर्णनपरकता, सरलता एवं मार्मिकता है।
4. तत्सम्, तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है।
5. सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गन्दी साड़ी टँगी थी, जिसमें कई पैबन्द लगे हुए थे। दोनों बड़े लड़कों का कहीं पता नहीं था। बाहर की कोठरी में मुंशी जी औंधे मुँह होकर निश्चिन्तता के साथ सो रहे थे, जैसे डेढ़ महीने पूर्व मकान–किराया–नियंत्रण विभाग की क्लर्की से उनकी छंटनी न हुई हो, और शाम को उनको काम की तलाश में कहीं न जाना हो।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी सुपाठ्य पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित कहानी 'दोपहर का भोजन' से लिया गया है। इसके लेखक हिन्दी के प्रतिष्ठित सामाजिक यथार्थवादी कहानीकार अमरकांत हैं। इस कहानी में लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक तंगी का सटीक चित्रण किया है। प्रस्तुत गद्यांश में मुंशी चन्द्रिका प्रसाद के समस्याग्रस्त जीवन की ओर संकेत करता हुआ कहानीकार कहता है कि–

व्याख्याः घर में गन्दगी फैली हुई थी। इधर–उधर सारा घर मक्खियों से भर रहा था। आंगन में बँधी रस्सी पर एक गन्दी साड़ी टँगी हुई थी, जिसमें जगह–जगह सिलाई के साथ कपड़ा लगा हुआ था। रामचन्द और मोहन का कोई पता नहीं था। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद घर के बाहर की कोठरी में निश्चिन्त होकर उल्टे मुँह सो रहे थे। ऐसा लगता ही नहीं था कि डेढ़ महीने पहले ही मुंशीजी को मकान–किराया–नियंत्रण विभाग से निकाला गया है। ऐसा भी नहीं लगता था कि शाम को उन्हें काम की तलाश में कहीं जाना है।

विशेषः

1. कहानीकार ने आर्थिक–विपन्नता का मार्मिक चित्रण किया है।
2. शैली वर्णनात्मक और चित्रात्मक है।
3. तत्सम्, तद्भव शब्दों के साथ लोकोक्ति एवं मुहावरों का सजीव और प्रभावोत्पक प्रयोग मिलता है।
4. निषेधात्मक वाक्यों द्वारा सकारात्मक अर्थ की प्रतीति कराई गयी है।

आत्मनिर्भरता

बालकृष्ण भट्ट

fuc/k dk lkj

पंडित बाल कृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'आत्मनिर्भरता' मनुष्य को जीवन में अपने भरोसे रहने की शिक्षा देता है। लेखक के अनुसार जो व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं होता है उसे यदि शक्तिहीन भी कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। अपने भरोसो से जीने वाले व्यक्ति संसार में सदा उन्नति करते हैं और पानी में जैसे तूंबी सब के ऊपर रहती है वैसे ही वे सब के ऊपर रहेंगे क्योंकि शारीरिक शक्ति, सैनिक शक्ति, शासन की शक्ति, ऊँचे कुल में पैदा होने की शक्ति, मित्र की शक्ति, तंत्र–मंत्र की शक्ति, अनादि शक्तियाँ भी अपनी शक्ति के सामने व्यर्थ हैं आत्मनिर्भरता से ही आत्मबल आता है, जो सभी शक्तियों में श्रेष्ठ है। इसी आत्मनिर्भरता के कारण अमेरिका, जापान तथा यूरोप के अन्य देश उन्नति कर सकते हैं तथा आत्मनिर्भर न होने के कारण तथा दूसरों का मुंह ताकते रहने के कारण भारतवासी उन्नति नहीं कर सके हैं तथा सदा दासता करते रहते हैं।

लेखक ने भाग्य–भरोसे रहनेवालों को आलसी कहा है क्योंकि 'दैव दैव आलसी पुकारा' ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है। इस के विपरीत जो लोग अपनी सहायता स्वयं करते हैं ईश्वर भी उन की सहायता करता है। किसी भी देश, जाति अथवा व्यक्ति में बल, ओज, गौरव तथा महत्व प्राप्त करने का एकमात्र साधन आत्मनिर्भर बनना है। जब तक कोई अपना कार्य स्वयं नहीं करता तब तक वह किसी दूसरे द्वारा दी गयी सहायता का लाभ भी नहीं उठा सकता। किसी प्रकार के सरकारी कानून अथवा दबाव द्वारा ही आलसी को मेहनती, फिजूलखर्ची की किफायतशार, शराबी को शराब न पीने वाला, क्रोधी को शान्तस्वभाववाला, डरपोक को निडर, झूठे को सच्चा, गरीब को अमीर आदि नहीं बना सकता। परन्तु अगर व्यक्ति स्वयं कोशिश करे तो वह खुद को सुधार सकता है। इस प्रकार एक व्यक्ति के सुधरने से समाज और समाज के सुधरने पर देश भी सुधर सकता है।

लेखक का कथन है कि जिस समाज में प्रत्येक मनुष्य, बच्चे–बूढ़े, स्त्री–पुरूष सभी सभ्य हों वह जाति सभ्य कहलाती है। जिस समाज में आधे अथवा एक तिहाई व्यक्ति सभय हों वह जाति आधी सभ्य मानी जाती है। किसी जाति की उन्नति उस जाति के सभी लोगों के सामूहिक परिश्रम, योग्यता तथा अच्छे चरित्र पर निर्भर करती है तथा अवनति का कारण उस जाति के लोगों का सुस्त, निम्न प्रकृति, स्वार्थीपन आदि होता है। इस अवगुणों को भी किसी सरकारी कानून के द्वारा रोका या समाप्त नहीं किया जा सकता। देशभक्ति की भावना भी किसी कानून के द्वारा किसी व्यक्ति में भरी नहीं जा सकती। जिस जाति की नस–नस में गुलामी का भाव भरा हुआ हो वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकती। केवल आत्मनिर्भर बनने से ही हम अपनी तथा अपनी देश की उन्नति कर सकते हैं। जान स्टुअर्ट मिल के सिद्धांत के अनुसार भी किसी शासक का भयानक से भयानक अत्याचार भी उस देश की जनता का कुछ नहीं बिगाड़ सकता जो आत्म सुधार की भावना से युक्त है।

लेखक का मानना है कि भारतवासियों की वर्तमान दुर्दशा का कारण यह है कि हमारे देश के पुराने लोगों में आत्मनिर्भरता नहीं थी। हम अपनी तरक्की न होने का दोष विदेशी राज अथवा अपने धर्म की रूढ़िवादिता को देते थे। जबकि महापुरूषों के चरित्र का अनुकरण करने, मेहनत करने, अपना काम

आप करने वाले किसान, कुली, कारीगर आदि से सीख कर हम अपनी तथा अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। विभिन्न दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि इसी प्रकार से उन्नति करके ऊँचे बने हैं। हमारे देश में अवतारी पुरुष भी ऐसे ही लोग हुए हैं। परन्तु लेखक को इस बात का बहुत दुख है कि भारत की तीस करोड़ जनता में गीदड़ ही गीदड़ हैं कोई भी पुरुष सिंह नहीं है।

हमारे समाज में इतनी अधिक बुराइयाँ फैल गयी हैं कि हमारे अन्दर आत्मनिर्भरता के गुण विकसित ही नहीं हो रहा है। यूरोप में माता–पिता अपनी संतान को अपने भरोसे जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं किन्तु हमारे देश में अपनी संतान को बाल्यकाल में विवाह करके अपने बच्चों को दूसरे के भरोसे जीने की शिक्षा देकर परोपजीवी बनाया जा रहा है। इससे वे स्वभाविक रूप से पनप नहीं सकते। हमारे देश की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा इस प्रकार अपने बाप–दादाओं की कमाई पर ही जीवन व्यतीत करने के कारण स्वयं कोई पुरूषार्थ नहीं करता है। इसके विपरीत सफल जीवन उसी का माना जाता है जो अपने भरोसे अपने परिवार का पालन–पोषण करता है।

लेखक इस बात से बहुत चिन्तित है कि अंग्रेजी शासन में बालविवाह अधिक होने लगे हैं जिससे देश की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हो रही है। वह चाहता है कि सरकार बालविवाह रोकने के लिए कानून बना कर बाल–विवाह को अपराध घोषित कर ऐसा करने वालों को कड़ी–से–कड़ी सजा दे। बालविवाह से हम अपनी संतान की स्वतंत्रता के अधिकार को समाप्त कर देते हैं जिससे वे आजीवन अपना जीवन एक बोझ के समान ढोते रहते हैं। विदेशों में बाल–विवाह न होने के कारण ही उन्नति हो रही है। शंकर, नानक, कबीर, कृष्ण, चैतन्य, बुद्धदेव, स्वामी दयानन्द आदि का उदाहरण देकर लेखक आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देता है क्योंकि आत्मनिर्भर बन कर ही हम अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। वह अपने इस कथन को 'अरण्य रूदन' मान कर भी गलाफाड़ फाड़ कर दुहराने पर विश्वास रखता है कि शायद किसी पर कुछ प्रभाव पड़ ही जाए।

dfBu 'kCnk d vFk

आत्मनिर्भरता = अपने भरोसे पर रहना। श्रेष्ठ = अच्छा। पौरूषेयत्व = वीरता, शक्ति, बला। अभाव = कमी। अनुचित = गलत, बुरा। लघयन् खलु तेजसा जगन्न महा निच्छति भूतिमन्यतः = तेज और प्रताप से संसार भर को अपने नीचे करते हुए ऊँची उमंगवाले दूसरे के द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते। चतुरंगिणी–सेना = चार प्रकार की सेना जिसमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना होती थी। निज = अपनी, अपना। सिरताज = शिरोमणि, श्रेष्ठ, ऊँचे। सेवकाई = दासता, गुलामी। स्वामित्व = मालिकपन। बहुधा = अक्सर। किफायतशार = कम खर्च करने वाला। परिमित = सीमित। सूम = कंजूस। दपन्धि = घमण्ड से अन्धा। कदयर्म = कंजूस, कृपण। भीरू = डरपोक। समष्टि = समाज। आबाल = बच्चे सहित। वृद्ध = बूढ़ा। बनिता = स्त्री। अर्द्धशिक्षित = आधी पढ़ी–लिखी। सुचाल = अच्छा चाल–चलन। तनज्जुली = अवनति, गिरावट। नेस्तनाबूद = नष्ट करना, पूरी तरह से समाप्त करना। अव्वल दर्जे = प्रथम श्रेणी। जालिम = निर्दयी। हुकूमत = शासन। कौम = जाति। दास्य = गुलामी, दासता। चूक = भूल, गलती। पुरूषार्थी = मेहनत करने वाला। दुर्गति = बुरी दशा। पुश्त = पीढ़ी। खासियत = विशेषता। बाल्य = बाला। कुसंस्कार = बुरे संस्कार। तालीम = शिक्षा। निर्वाह = गुज़ारा। अन्नपानजिता दारा सफलं तस्य जीवनम् = जिसने अन्न–वस्त्र से अपनी संतान और पत्नी को प्रसन्न कर रखा है उसका जीवन सफल है। जुर्म = अपराध। यावज्जीवन = साराजीवन, आजीवन। अरण्य रूदन = जंगल में रोना। देशानुराग = देश के प्रति प्रेम। वांछा = इच्छा, कामना। तालीम = शिक्षा।

l i l x 0;k[;k

1

आत्मनिर्भरता (अपने भरोसे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरूष में पौरूषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता जिनको अपने भरोसे का बल है ये जहां होंगे जल में तूंबी के समान सब के ऊपर रहेंगे। ऐसों ही के चरित्र पर लक्ष्य कर महाकवि भीमराव ने कहा है, ''लघयन् खलु तेजसा जगन्न महा निच्छति भूतिमन्यतः।'' (पृ० 43)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य शिखर' में संकलित पाठ आत्मनिर्भरता से उद्धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक पंडित बाल कृष्ण भट्ट हैं। इस पाठ में लेखक ने हमें आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी है क्योंकि आत्मनिर्भरता से व्यक्ति, जाति, समाज और देश की उन्नति हो सकती है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक आत्मनिर्भरता शब्द की व्याख्या करते हुए बताता है कि आत्मनिर्भरता शब्द का अर्थ 'अपने भरोसे पर रहना' होता है। लेखक ने इस गुण को सब से अच्छा गुण माना है। वह यह भी मानता है कि जिस व्यक्ति में यह गुण नहीं है अर्थात् जो व्यक्ति अपना कार्य, बिना किसी की सहायता के अपने आप नहीं करता है वह व्यक्ति शक्तिहीन है। ऐसे व्यक्ति को शक्तिहीन कहना भी गलत नहीं है। जो लोग अपना काम स्वयं करते हैं तथा जिन्हें अपने आप पर भरोसा है वे लोग जीवन में सदा उसी प्रकार से उन्नति करते हैं तथा ऊँचा उठ जाते हैं जैसे तूंबी सदा पानी के ऊपर रहती है। इसी प्रकार के अपने भरोसे जीने वाले लोगों के बारे में महाकवि भीमराव कहते हैं कि जो लोग अपने तेज और प्रताप से संसार को अपने नीचे कर लेते हैं अर्थात् सब को अपने सामने झुका लेते हैं और जिन में ऊँची उमंग हैं वे लोग कभी भी दूसरों का सहारा लेकर अपना वैभव नहीं बढ़ाते हैं बल्कि अपने भरोसे पर ही सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

विशेषः

(क) आत्मनिर्भरता से ही मनुष्य उन्नति कर सकता है।

(ख) जैसे तूंबी सदा जल के ऊपर रहती है वैसे ही आत्मनिर्भर व्यक्ति भी

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

2

सभ्यता और है क्या? यही कि सभ्य जाति के एक एक मनुष्य आवाल, वृद्ध, बनिता सबों में सभ्यता के सब लक्षण पाये जायें। जिसमें आधे या तिहाई सभ्य हैं वही जाति अर्द्धशिक्षित कहलाती है। कौमी तरक्की भी अलग–अलग एक एक आदमियों के परिश्रम, योग्यता, सुन्नाल और सौजन्य का मानो टोटल है। उसी तरह कौम की तनज्जुली कौम के एक एक आदमी की सुस्ती, नीची प्रकृति, स्वार्थपरता और भांति–भांति की बुराईयों का ग्रैन्ड टोटल है। (पृ० 44)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'आत्म निर्भरता' से उद्घृत किया गया है। इस पाठ के लेखक पंडित बाल कृष्ण भट्ट हैं। इस पाठ में लेखक ने आत्मनिर्भर

बनने की प्रेरणा दी है क्योंकि हम आत्मनिर्भरता से ही अपनी, अपने समाज और देश की उन्नति कर सकते हैं।

व्याख्याः लेखक सभ्यता शब्द की व्याख्या करते हुए स्वयं ही प्रश्न करता है कि सभ्यता क्या है? वह बताता है कि जो जाति सभ्य होती है उस जाति का प्रत्येक मनुष्य, बच्चें, बूढ़ा और स्त्री सभी प्रकार से सभ्यता के गुणों से युक्त होते हैं अर्थात उन सब में सभ्यता के सभी गुण विद्यमान होते हैं। जिस जाति के आधे या तिहाई लोग सभ्य होते हैं वह जाति आधी सभ्य या आधी पढ़ी–लिखी जानी जाती है। इसी प्रकार से प्रत्येक जाति की उन्नति उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति की मेहनत, योग्यता, अच्छा चाल–चलन आदि को जोड़ होता है। इस सब को मिला कर ही किसी जाति की सभ्यता का मूल्यांकन किया जाता हैं इसी प्रकार से किसी जाति की अवनति में भी उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति के आलसीपन, नीच स्वभाव, स्वार्थीपन और अन्य अनेक बुराइयों का कुल जोड़ शामिल रहता है। जो जाति सद्‌गुणों से युक्त है वह सभ्य और दुर्गुणों से युक्त असभ्य कहलाती है। सभ्य उन्नति करते हैं और असभ्य अवनति करते हैं।

विशेषः

(क) सभ्यता और असभ्यता का मूल्यांकन जाति विशेष के गुणों–अवगुणों के आधार पर किया जाता हैं

(ख) भाषा तत्सम प्रधान होते हुए भी उर्दू के कौम, तरक्की, तनज्जुली तथा अंग्रेजी के टोटल, ग्रैन्ड टोटल आदि शब्दों से युक्त है।

(ग) शैली प्रवाहपूर्ण तथा विचारात्मक है।

3

जब तक किसी जाती के हर एक व्यक्ति के चरित्र में आदि से मौलिक सुधार न किया तब तक अव्वल दर्जे का देशानुराग और सर्वसाधारण के हित की वांछा सिर्फ कानून की अचल बदलपन से या नये कानून जारी करने से नहीं पैदा हो सकती। जालिम से जालिम बादशाह की हुकूमत में भी रहकर कोई कौम गुलाम नहीं कही जा सकती, वरन् गुलाम वही कौम है जिसमें एक एक व्यक्ति सब भाँति कदयर्म, स्वार्थपरायण और जातीयता के भाव से रहित है। ऐसी कौम जिसकी नस नस में दास्य भाव समाया हुआ है कभी तरक्की नहीं करेगी।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य शिखर' में संकलित पाठ 'आत्मनिर्भर' से अवतरित किया कया है। इस पाठ के लेखक पंडित बाल कृष्ण भट्ट हैं। इस पाठ में लेखक ने आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी है क्योंकि इसी से व्यक्ति, समाज और देश की उन्नति हो सकती है।

व्याख्याः लेखक का मानना है कि जब किसी जाति के प्रत्येक व्यक्ति के चाल–चलन को प्रारम्भ से ही पूरी तरह सुधारा न जाए तब तक उस में प्रथम श्रेणी का देश के प्रति प्रेम तथा आम जनता की भलाई की इच्छा, केवल कानून में अदल–बदल करके या नया कानून बनाकर, पैदा नहीं की जा सकती। अर्थात् कानून बनाकर किसी जाति के व्यक्ति में देशप्रेम तथा लोक कल्याण की भावना उत्पन्न नहीं की जा सकती। इसके लिए उस के चरित्र में ऐसे गुणों को उत्पन्न करना आवश्यक है जिससे यह भावना उस में अपने आप ही पैदा हो। शासक चाहे कितना भी अत्याचारी या कठोर हो उस के शासनाधीन रहकर भी कोई जाति उसकी दास नहीं कहा जा सकती बल्कि दास वही जाति होती है

जिसके सभी व्यक्ति कंजूस, स्वार्थी और जातीय स्वाभिमान से रहित होते हैं। जिस जाति के प्रत्येक व्यक्ति की रग–रग में गुलामी करने की भावना हो वह जाति कभी भी उन्नति नहीं कर सकती है।

विशेषः

(क) केवल सद्‌गुणों से युक्त व्यक्तियों वाली जाति में ही देश प्रेम तथा जनकल्याण की भावना होती है।

(ख) दास्य मनोवृति के लोग कभी भी उन्नति नहीं कर पाते जबकि स्वाभिमानी जाति को कोई भी दास नहीं बना सकता।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा उर्दू शब्दों से युक्त है। शैली विचारात्मक है।

4

पुराने लोगों से जो चूक और गलती बन पड़ी है उसी का नतीजा वर्तमान समय में हम लोग भुगत रहे हैं। उसी को चाहे जिस नाम से पुकारिये, तथा जातीयता का भाव जाता रहा, एक नहीं है, आपस की हमदर्दी नहीं है इत्यादि। तब पुराने क्रम को अच्छा मानना और उस पर श्रद्धा जमाये रखना हम क्योंकर अपने लिए उपकारी और उत्तम मानें। हम तो उसे निरा चंडूखाने की गप्प समझते हैं कि 'हमारा धर्म हमें आगे नहीं बढ़ने देता'। (पृ० 45)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'आत्मनिर्भरता' से अवतरित किया गया है। इस पाठ में लेखक हमें प्रेरणा देता है कि देश की उन्नति करने के लिए हमें आत्मनिर्भर बनाना होगा।

व्याख्याः लेखक देश की अवनति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखता है कि हमारे पूर्वजों ने जो भूल और गलती की थी उसी का परिणाम हम आज भुगत रहे हैं हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजों की गुलामी सहन करने की भूल की थी। इसलिए आज भी हम दासता के मोह से जकड़े हुए हैं। इसी को आज यह कहते हैं कि उस समय हम लोगों में जातीय स्वाभिमान समाप्त हो गया था। अथवा हम में एकता नहीं रही थी या आपस में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव समाप्त हो गया था। ऐसी दशा में यह हमारे लिए कल्याणकारी तथा अच्छा नहीं है कि हम पुरानी व्यवस्था को ठीक मानते हुए उस पर श्रद्धा रखें। लेखक को यह बात कोरी बकवास लगती है जब हम यह कहते हैं कि हमारी धार्मिक रूढ़ियाँ ही हमें तरक्की नहीं करने देती थीं।

विशेषः

(क) परम्परागत रूढ़ियों को त्यागने पर बल दिया गया है।

(ख) हमें अपने पूर्वजों द्वारा की गयी गलतियों से शिक्षा लेनी चाहिए, उन्हें दोहराना नहीं चाहिए।

(ग) भाषा सहज तथा उर्दू शब्दावली से युक्त है। शैली विचारात्मक है।

5

बहुतेरे सत्पुरूषों के जीवन–चरित्र धर्म ग्रन्थ की समान हैं जिनके पढ़ने से हमें कुछ न कुछ उपदेश जरूर मिलता है। बड़प्पन किसी जातिविशेष या खास दर्जे के आदमियों के हिस्से नहीं पड़ा। जो कोई बड़ा काम करे या जिससे सर्वसाधारण का उपकार हो नही बड़े लोगों की कोटि में आ सकता है। वह चाहे गरीब से गरीब या छोटे से छोटे दर्जे का क्यों न हो बड़े से बड़ा है। वह मनुष्य के तन में साक्षात्–देवता है। हमारे यहाँ अवतार ऐसे ही लोग हो गए हैं। (पृ० 46)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'आत्मनिर्भरता' से उद्धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक पंडित बाल कृष्ण भट्ट हैं। इस पाठ में लेखक ने यह बताया है कि यदि हम अपनी तथा अपने देश की उन्नति करना चाहते हैं तो हमें आत्मनिर्भर बनना होगा।

व्याख्याः लेखक महापुरूषों के जीवन से प्रेरणा लेने के लिए कहता है। उसका कथन है कि अनेक सत्पुरुषों के जीवन–चरित्र हमारे लिए धर्म–ग्रन्थों के समान माननीय हैं जिन्हें पढ़ने से हमें कोई न कोई उपदेश अवश्य ही मिलता है। इसलिए हमें इन्हें पढ़कर जीवन में अपनाना चाहिए। लेखक मानता है कि बड़प्पन किसी विशेष जाति अथवा विशेष वर्ग के व्यक्तियों को ही नहीं मिलता है। उसके अनुसार जो कोई व्यक्ति कोई बड़ा कार्य करता है अथवा जन कल्याण का कार्य करता है वह बड़ा अथवा महान् व्यक्ति बन सकता है। ऐसा व्यक्ति चाहे गरीब से गरीब या छोटे से छोटे दर्जे का भी क्यों न हो बड़ा काम करके बड़े से भी बड़ा व्यक्ति बन जाता है। वह अन्य आदमियों जैसा होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से देवता है। ऐसे ही लोगों को हमारे देश में अवतारी व्यक्ति कहा जाता है।

विशेषः

(क) महापुरुषों के जीवन का अनुकरण करने से हमारा चरित्र ऊँचा उठता है।

(ख) लेखक जाति, वर्ग, जन्म आदि से किसी को महान् नहीं मानता। वह व्यक्ति के कर्मों से उसे महान् मानता है।

(ग) भाषा सहज तथा प्रवाहमय है। शैली विचारात्मक है।

6

समाज में ऐसे कुसंस्कार और निन्दित रीतियाँ चल पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पास तक फटकने नहीं पातीं बहुत तरह के समाज–बंधन तथा खान–पान आदि की कैद जो हमारे पीछे लगा दी गई है उन सबका यही तो परिणाम हुआ कि आजादी जिस पर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरूषेय गुण की लम्बी चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू ही से नहीं आने पाती। जबकि यूरोप के भिन्न–भिन्न देशों में बाप मां अपने लड़कों को तालीम देने के साथ ही साथ अपने भरोसे पर जिन्दगी की किश्ती को किस तरह पार खे ले जाना चाहिए यह लड़कपन से सिखाते हैं। (पृ० 46–47)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'आत्मनिर्भरता' से अवतरित किया गया है। इस पाठ के लेखक पंडित बाल कृष्ण भट्ट हैं। इस पाठ में लेखक ने अपनी तथा देश की उन्नति के लिए हमें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया है।

व्याख्याः लेखक बताता है कि हमारे समाज में आत्मनिर्भरता न आने का क्या कारण है? लेखक के अनुसार हमारे समाज में अनेक बुरे संस्कार और बुरी रीतियाँ प्रचलित हैं जिनके कारण हम आत्मनिर्भर नहीं बन पा रहे। यहाँ तक कि हमारे समाज में अनेक प्रकार के ऐसे बंधन तथा खान–पान आदि की रोक–टोक लगी रहती है जिससे व्यक्ति न तो आजादी से अपने मन के अनुसार कोई कार्य कर सकता है और न ही खा पी सकता है। वह इन बंधनों में ऐसे जकड़ जाता है कि वह उस आजादी के वातावरण में सांस नहीं ले पाता जिससे उसमें प्रारम्भ से ही समाजिक बंधनों में बंध रहने के कारण उस में यह गुण उसमें विकसित ही नहीं हो पाते। इस के विपरीत यूरोप के अनेक देशों में माता–पिता अपनी संतान को अच्छी शिक्षा देने के साथ ही उन में बचपन से ही अपने भरोसे जीवन व्यतीत करने की सीख भी देते रहते हैं।

विशेषः

(क) हमारे देश के रूढ़िवादी संस्कार हमें आत्मनिर्भर नहीं बनने देते।

(ख) सामाजिक बुराइयों तथा अन्धविश्वासों को भी लेखक आत्मनिर्भरता के मार्ग में बाधक मानता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

7

आदमी के लिए आजादी एक बेशकीमती मोती है। वह आज़ादी तब ही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरह की फिकर और चिन्ता से निर्द्वन्द हों और हमारी तबीयत में आत्मनिर्भरता ने दखल कर लिया हो। इस दशा में बड़ी से बड़ी चिन्ता और फिकर हमें उतनी असह्य न मालूम हो जो की वह हमारी स्वच्छंदता को जड़ से उखाड़ सके। किसी वस्तु का जब बीच बना रहता है तो उस को फिर बढ़ा लेना सहज है।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'आत्मनिर्भरता' से उद्धृत किया गया है। इस पाठ में लेखक ने अपनी तथा अपने देश की उन्नति करने के लिए आत्मनिर्भर बनने की प्ररेणा दी है।

व्याख्याः लेखक स्वतंत्रता को मनुष्य के लिए एक अनमोल वस्तु बताते हुए लिखता है कि मनुष्य के लिए स्वतंत्रता एक बहुत ही मूल्यवान मोती के समान है। इस स्वतंत्रता को मनुष्य तभी प्राप्त कर सकता है। जब वह सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाए और उस की प्रकृति आत्मनिर्भरता से युक्त होजाए अर्थात् वह सब प्रकार की चिन्ताओं को छोड़कर आत्मनिर्भर हो जाए। जब मनुष्य आत्मनिर्भर हो जाता है तो उसे कोई भी बड़ी से बड़ी चिन्ता भी उतनी असहनीय नहीं लगती कि वह उस की आज़ादी में बाधक बन सके अथवा उसकी आज़ादी को नष्ट कर सके। जिस प्रकार किसी वस्तु के बीज से उस वस्तु को उगाकर बढ़ाकर लेना आसान होता है उसी प्रकार से जब मनुष्य आत्मनिर्भर हो जाता है तो वह कुछ भी कर सकता है।

विशेषः

(क) स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।

(ख) आत्मनिर्भरता मनुष्य को कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना करने योग्य बना देता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान है परन्तु कहीं–कहीं उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। शैली विचारात्मक है।

vu'khyuh d i'uk d mÙkj

प्र०1 बालकृष्ण भट्ट के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः जीवनः आधुनिक हिन्दी साहित्य के भारतेन्दुयुग के गद्यकारों में श्रेष्ठ पंडित बाल कृष्ण भट्ट का जन्म 3 जून, सन् 1844 ई० में इलाहाबाद में हुआ था। उनके के पिता का नाम पंडित बेनी प्रसाद था। इन की प्रारम्भिक शिक्षा मिशन स्कूल में हुई थी। संस्कृत की शिक्षा उन्होंने अपने घर पर प्राप्त की थी। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने मिशन स्कूल और कायस्थ पाठशाला में अध्यापक के रूप में कार्य किया था। बाद में नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन कार्य करने लगे। इन्होंने इलाहाबाद में भारती भवन पुस्तकालय की स्थापना की थी। इन्होंने हिन्दी वर्द्धिनी सभा, इलाहाबाद की ओर से 1 सितम्बर, सन् 1877 ई० को 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्र निकाला और लगातार 32 वर्षों तक इस का सम्पादन करते रहे। 20 जुलाई, सन् 1914 ई० में उन का देहावसान हो गया।

साहित्यः पंडित बाल कृष्ण भट्ट का बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार माना जाता है। उन्होंने निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की रचना करने के साथ–साथ सम्पादन कार्य भी किया था। इस की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

निबन्ध संग्रह – साहित्य सरोज, साहित्य सुमन, भट्ट निबंधावली भाग एक और दो।

उपन्यास – नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान।

नाटक – बालविवाह, दमयन्ती स्वयंवर, वेणी संहार, पद्मावती, रेल का विकट खेल।

हिन्दी साहित्य में निबन्धकला के प्रवर्त्तक के रूप में पंडित बाल कृष्ण भट्ट को स्मरण किया जाता है। क्योंकि इन्होंने ही सर्वप्रथम मौलिक चिन्तन से पूर्ण निबन्ध लिखना प्रारम्भ किया था। उन्होंने एक हज़ार के लगभग निबंध लिखे हैं जिन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं:

(क) ***सामाजिक निबंध –*** पंडित बाल कृष्ण भट्ट द्वारा रचित सामाजिक निबंधों के अन्तर्गत वे निबंध आते हैं जिनमें उन्होंने तत्कालीन सामाजिक जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या का विश्लेषण किया है। उन निबंधों में संयुक्त परिवार प्रथा के गुण–दोष, पाखंडी साधु–सन्यासियों, तीर्थस्थलों पर व्याप्त भ्रष्टाचार, बाल–विवाह, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, रूढ़िवादिता, स्त्री शिक्षा, वैश्यावृति आदि विषयों पर लेखक ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने ने अपने इन निबंधों के माध्यम से सामाजिक बुराईयों का विरोध करते हुए तत्कालीन समाज में नई क्रान्ति, चेतना तथा जागृति लाने का प्रयास किया था। कौलीन्य, जात–पाँत, मानवी–सम्पत्ति, तीर्थों की तीर्थता, कौम, भिक्षावृति, सुगृहिणी' आदि इन के इसी प्रकार के निबंध हैं।

(ख) ***राजनीतिक निबंध –*** राजनीतिक निबंधों में भट्ट जी ने तत्कालीन शासन व्यवस्था की कटु आलोचना करते हुए उन की दोहरी नीति का भंडाफोड़ा है। इन्होंने व्यापार तथा नौकरशाही द्वारा अंग्रेजों की शोषण–प्रवृत्ति, कूटनीति एवं चरित्रहीनता, पक्षपातपूर्ण न्याय, अनुचित करों की निन्दा, पुलिस का दमन, भाषा–नीति, ज़मीदारों द्वारा आम जनता का शोषण, शासन में व्याप्त

भ्रष्टाचार आदि विषयों पर अधिकारिक रूप से कलम चलाई है। इन्होंने तत्कालीन सरकार के विरूद्ध जनमत जगाने के लिए देशभक्ति से पूर्ण निबंध भी लिखे हैं। 'व्यवस्था या कानून, राजभक्ति और देशभक्ति, भेदभाव नीति, प्रतिनिधि शासन, दुर्भिक्ष दलित भारत' आदि इन के इसी प्रकार के प्रसिद्ध निबंध हैं।

(ग) ***साहित्यिक निबंध*** – पंडित बाल कृष्ण भट्ट द्वारा साहित्य, साहित्य–शास्त्र, भाषा, अलंकार, नाटक, रंगमंच, उपन्यास आदि विषयों पर रचित निबंध इस श्रेणी में आते हैं। इन निबंधों में लेखक के मौलिक चिन्तन के दर्शन होते हैं। 'सभ्यता और साहित्य, रसाभास, प्रतिमा, खड़ी बोली का पद्य, हिन्दी की वर्तमान दशा, शब्द परिचय आदि इन के साहित्यिक निबंध हैं। इन निबंधों में लेखक ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हुए भाषा, भाषा में परिवर्तन, विभिन्न भाषाओं के पारस्परिक सम्बंधों पर भी प्रकाश डाला है।

(घ) ***अन्य निबंध*** – पंडित बाल कृष्ण भट्ट ने उपयुक्त निबंधों के अतिरिक्त मनोविज्ञान, भक्ति, ज्ञान, गृहस्थजीवन, कृषि, वाणिज्य, शिक्षा, चरित्र आदि विषयों पर भी निबंध लिखे हैं। इन निबंधों के शीर्षक 'चरित्र पालन, मुक्ति और भक्ति, ज्ञान और भक्ति, मन और ज्ञान, नाक, कान, घर, दर्पण, सूदखोरी, लक्ष्मी, वकील आदि हैं। इस निबंधों में लेखक ने सहज और स्वाभाविक भाषा में विषय का प्रतिपादन अत्यन्त कुशलता से किया है। विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लेखक ने जहाँ अपनी विचारगत नूतनता से परिचित कराया है वहीं उसमें वर्णन शैली की विविधता के भी दर्शन होते हैं।

रचनाशैली की दृष्टि से भट्ट जी के निबंध विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्मक हैं। अपने निबंधों में तत्सम प्रधान भाषा के साथ–साथ इन्होंने तत्कालीन लोक जीवन में प्रचलित उर्दू, अंग्रेजी, देशज भाषाओं के शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों के प्रयोग से इन के निबंध अधिक रोचक तथा प्रभावशाली बन गए हैं। इन का निबंध साहित्य अत्यन्त सहज, स्वाभाविक तथा संवेदनात्मक है।

प्र०2 'आत्मनिर्भरता' निबंध का कथ्य अपने शब्दों में लिखिये।

उत्तरः बाल कृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'आत्मनिर्भरता' मनुष्य को जीवन में अपने भरोसे रहने की शिक्षा देता है। लेखक के अनुसार जो व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं है उसे यदि शक्तिहीन भी कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। अपने भरोसे जीने वाले व्यक्ति संसार में सदा उन्नति करते हैं और पानी में जैसे तूंबी सब के ऊपर रहती है वैसे ही वे भी सब के ऊपर रहेंगे क्योंकि शारीरिक, सैनिक शक्ति, शासन की शक्ति, ऊँचे कुल में पैदा होने की शक्ति, मित्र की शक्ति, तंत्र–मंत्र की शक्ति आदि शक्तियाँ भी अपनी शक्ति के सामने व्यर्थ हैं। आत्मनिर्भरता से ही आत्मबल आता है, जो सभी शक्तियों में श्रेष्ठ है। इसी आत्मनिर्भरता के कारण अमेरिका, जापान तथा यूरोप के अन्य देश उन्नति कर सके हैं तथा आत्मनिर्भरता न होने के कारण तथा दूसरों का मुंह ताकते रहने के कारण भारतवासी उन्नती नहीं कर सके हैं तथा सदा दासता करते रहते हैं।

लेखक ने भाग्य–भरोसे रहनेवालों को आलसी कहा है क्योंकि 'दैव दैव आलसी पुकारा' ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है। इस के विपरीत जो लोग अपनी सहायता स्वयं करते हैं ईश्वर भी उन की सहायता करता है। किसी भी देश, जाति अथवा व्यक्ति में बल, ओज, गौरव तथा महत्व प्राप्त करने का एकमात्र साधन आत्मनिर्भर बनना है। जब तक कोई अपना कार्य स्वयं नहीं करता तब तक वह किसी दूसरे द्वारा दी गयी सहायता का लाभ भी नहीं उठा सकता।

किसी प्रकार के सरकारी कानून अथवा दबाव द्वारा ही आलसी को मेहनती, फिजूलखर्ची की किफायतशार, शराबी को शराब न पीने वाला, क्रोधी को शान्त स्वभाववाला, डरपोक को निडर, झूठे को सच्चा, गरीब को अमीर आदि नहीं बना सकता। परन्तु अगर व्यक्ति स्वयं कोशिश करे तो वह खुद को सुधार सकता है। इस प्रकार एक व्यक्ति के सुधरने से समाज और समाज के सुधरने पर देश भी सुधर सकता है।

लेखक का कथन है कि जिस समाज में प्रत्येक मनुष्य, बच्चे–बूढ़े, स्त्री–पुरुष सभी सभ्य हों वह जाति सभ्य कहलाती है। जिस समाज में आधे अथवा एक तिहाई व्यक्ति सभ्य हों वह जाति आधी सभ्य मानी जाती है। किसी जाति की उन्नति उस जाति के सभी लोगों के सामूहिक परिश्रम, योग्यता तथा अच्छे चरित्र पर निर्भर करती है तथा अवनति का कारण उस जाति के लोगों का सुस्त, निम्न प्रकृति, स्वार्थीपन आदि होता है। इस अवगुणों को भी किसी सरकारी कानून के द्वारा रोका या समाप्त नहीं किया जा सकता। देशभक्ति की भावना भी किसी कानून के द्वारा किसी व्यक्ति में भरी नहीं जा सकती। जिस जाति की नस–नस में गुलामी का भाव भरा हुआ हो वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकती। केवल आत्मनिर्भर बनने से ही हम अपनी तथा अपने देश की उन्नती कर सकते हैं। जान स्टुअर्ट मिल के सिद्धांत के अनुसार भी किसी शासक का भयानक से भयानक अत्याचार भी उस देश की जनता का कुछ नहीं बिगाड़ सकता जो आत्म सुधार की भावना से युक्त है।

लेखक का मानना है कि भारतवासियों की वर्तमान दुर्दशा का कारण यह है कि हमारे देश के पुराने लोगों में आत्मनिर्भरता नहीं थी। हम अपनी तरक्की न होने का दोष विदेशी राज अथवा अपने धर्म की रूढ़िवादिता को देते थे। जबकि महापुरूषों के चरित्र का अनुकरण करने, मेहनत करने, अपना काम आप करने वाले किसान, कुली, कारीगर आदि से सीख कर हम अपनी तथा अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। विभिन्न दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि इसी प्रकार से उन्नति करके ऊँचे बने हैं। हमारे देश में अवतारी पुरूष भी ऐसे ही लोग हुए हैं। परन्तु लेखक को इस बात का बहुत दुःख है कि भारत की तीस करोड़ जनता में गीदड़ ही गीदड़ हैं कोई भी पुरूष सिंह नहीं है।

हमारे समाज में इतनी अधिक बुराइयाँ फैल गयी हैं कि हमारे अन्दर आत्मनिर्भरता के गुण विकसित ही नहीं हो रहा है। यूरोप में माता–पिता अपनी संतान को अपने भरोसे जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं किन्तु हमारे देश में अपनी संतान को बाल्यकाल में विवाह कर के अपने बच्चों को दूसरे के भरोसे जीने की शिक्षा देकर परोपजीवी बनाया जा रहा है। इससे वे स्वभाविक रूप से पनप नहीं सकते। हमारे देश की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा इस प्रकार अपने बाप–दादाओं की कमाई पर ही जीवन व्यतीत करने के कारण स्वयं कोई पुरूषार्थ नहीं करता है। इसके विपरीत सफल जीवन उसी का माना जाता है जो अपने भरोसे अपने परिवार का पालन–पोषण करता है।

लेखक इस बात से बहुत चिन्तित है कि अंग्रेजी शासन में बालविवाह अधिक होने लगे हैं जिससे देश की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हो रही है। वह चाहता है कि सरकार बालविवाह रोकने के लिए कानून बना कर बाल–विवाह को अपराध घोषित कर ऐसा करने वालों को कड़ी–से–कड़ी सजा दें। बालविवाह से हम अपनी संतान की स्वतंत्रता के अधिकार को समाप्त कर देते हैं जिससे वे आजीवन अपना जीवन एक बोझ के समान ढोते रहते हैं। विदेशों में बाल–विवाह न होने के कारण ही उन्नति हो रही है। शंकर, नानक, कबीर, कृष्ण, चैतन्य, बुद्धदेव, स्वामी दयानन्द आदि का उदाहरण देकर लेखक आत्मनिर्भरता बनने की प्रेरणा देता है

क्योंकि आत्मनिर्भर बन कर ही हम अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। वह अपने इस कथन को 'अरण्य रूदन' मान कर भी गलाफाड़ फाड़ कर दुहराने पर विश्वास रखता है कि शायद किसी पर कुछ प्रभाव पड़ ही जाए।

प्र०3 निबंध के तत्वों की दृष्टि से आत्मनिर्भरता निबंध की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः निबंध एक ऐसी गद्य रचना होती है जिस में लेखक किसी एक विषय पर अपने विचार क्रमबद्ध रूप में सहजता के साथ रोचक भाषा–शैली में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से निबंध में सरलता और सुबोधता के साथ–साथ निबंधकार का व्यक्तित्व तथा उसके विचारों की अभिव्यक्ति भी रहती है। निबंध की रचना के पीछे जिन मूलभूत उपकरणों का हाथ होता है उन्हें निबंध के तत्व कहते हैं। पंडित बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'आत्मनिर्भरता' की निबंध के तत्वों पर समीक्षा निम्नलिखित तत्वों के आधार पर की जा सकती है–

(क) ***बुद्धितत्व*** – निबंध में बुद्धि–तत्व से तात्पर्य उस विचार शक्ति से है जो किसी निबंधकार को चिन्तन–मनन की ओर प्रेरित करते हुए उसे किसी विषय पर लिखने की प्रेरणा देती है। 'आत्मनिर्भरता' नामक निबंध के प्रारम्भ में ही हमें लेखक की विचार शक्ति का परिचय प्राप्त हो जाता है जब वह 'आत्मनिर्भरता' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखता है, ''आत्मनिर्भरता (अपने भरोसे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरूष में पौरूषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिस को अपने भरोसे का बल है ये जहाँ होंगे जल में तूंबी के समान सब के ऊपर रहेंगे।'' इसी विचारशीलता के कारण भट्ट जो अपनी बात निर्भीकतापूर्वक स्पष्ट शब्दों में कहते हैं इन सब बातों से कुछ न होगा जब तक बाल्यविवाह रूपी कोढ़ हमारा साफ न होगा। हम जानते हैं हमारा यह रोना चीखना केवल अरण्य–रूदन मात्र हैं; फिर भी गला फाड़ फाड़ चिल्लाते रहेंगे। कदाचित् किसी भी तबीयत पर कुछ असर पैदा हो जाय।''

(ख) ***अनुभूति–तत्व*** – जिस लेखक की अनुभूति जितनी गहन होती है उस की रचना भी उतनी ही महान् होती है। मानव जीवन के विविध क्रिया व्यापारों को लेखक देखकर अपनी अनुभूति को मज़बूत करता है और फिर अपनी रचना में उसे शब्दों के द्वारा मुखरित करता है। भट्ट जी ने अपने आस–पास के जीवन को सूक्ष्मता से निरखा–परखा था जिस कारण उन के निबंधों में अनुभूति की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। 'आत्मनिर्भरता' निबंधों में लेखक को चिन्ता का विषय यह है कि हमारे देश की उन्नति क्यों नहीं हो रही? इस का निष्कर्ष वह यह निकलता है कि ''हिन्दुस्तान का जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहाँ के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल ही गए। इसी से सेवकाई करना यहाँ के लोगों से जैसी खूबसूरती के साथ बन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसे पर रहना जब हमारा गुण नहीं तब क्यों कर सम्भव है कि हमारे में प्रभुत्व शक्ति को अवकाश मिले।''

(ग) ***कल्पना–तत्व*** – लेखक कुछ भी लिखने से पूर्व उस विषय से सम्बन्धित तथ्यों को अपने आस–पास से सहेज कर कल्पना के माध्यम से शब्दों द्वारा प्रस्तुत करता है। कल्पना उन सभी विचारों, अनुभूतियों आदि को साकार रूप देने में सहायक सिद्ध होती है जिन्हें लेखन अपनी रचना के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहता है। पंडित बाल कृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों की रचना में कल्पनाशीलता का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया है। इससे वे अपने विचारों को अधिक सजीवता से प्रस्तुत कर सके हैं। भारत की

तत्कालीन दुर्दशा पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं – 'पुत्र जन्म में लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुःख होता है कि जहां तीस करोड़ गीदड़ थे वहां एक की गिनती और बढ़ी, क्योंकि हिन्दुस्तान की हमारी बिगड़ी गिरी कौम में सिंह का जन्मना सर्वथा असम्भव सा प्रतीत होता है और न हम लोगों के ऐसे पुण्य काम हैं कि हमारे बीच सब सिंह ही सिंह जन्में।'' भट्ट जी के निबंधों में मौलिक विवेचन, सरसता, अनूठी विचारणा तथा अनुपम व्यंग्य इसी कल्पना–तत्व के कारण ही संभव हुआ है।

(घ) ***अहं–तत्व*** – जब लेखक अपने निबंध में अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ता है तो उस में अहं–तत्व के पर्याप्त दर्शन होते हैं। वे प्रत्येक कथन को अपने व्यक्तिगत विचारों से पुष्ट करते चलते हैं। तत्कालीन देश की शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए 'आत्मनिर्भरता' निबंध में जब वे लिखते हैं, ''हिन्दुस्तान का जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहां के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल ही गया इसी से सेवकाई करना यहाँ के लोगों से जैसी खूबसूरती के साथ बन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसे पर रहना जब हमारा गुण नहीं तब क्यों कर संभव है कि हमारे में प्रभुत्व शक्ति को अवकाश मिले।' इस कथन से उनके कथन में स्पष्टवादिता के दर्शन होते हैं। अंग्रेजी शासन की आलोचना पर दुःखकारिता, कर्त्तव्यपरायणता, सहृदयता आदि भावों का उन के निबंधों में प्रत्यक्षीकरण इसी अंह–तत्व के कारण संभव हुआ है।

(ड़) ***भाषा–शैली*** – पंडित बाल कृष्ण भट्ट हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे। 'हिन्दी प्रदीप' मासिक–पत्र के माध्यम से उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी के गद्य के प्रचार प्रसार तथा इसे सुसंस्कृत एवं समृद्ध बनाने में पूर्ण योगदान दिया था। इन के निबंधों की भाषा तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त होते हुए भी बोलचाल के अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों से भी युक्त है। जैसे– ''आदमी के लिए आज़ादी एक बेशकीमती मोती है। वह आज़ादी तब ही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरह की फिकर ओर चिन्ता से निर्द्वन्द्व हों और हमारी तबीयत में आत्मनिर्भरता ने दखल कर लिया हो।' इन वाक्यों में आदमी, आज़ादी, बेशकीमती, हासिल, फिकर, तबीयत, दख़ल आदि उर्दू–अरबी–फारसी के शब्द तथा निर्द्वन्द्व, आत्मनिर्भरता तत्सम प्रधान शब्द हैं। इन्होंने 'दैव दैव आलसी पुकारा', 'अपनी सहायता आप करनेवालों की ईश्वर भी सहायता करता है' आदि उक्तियों का सार्थक प्रयोग किया है। इन की भाषा में प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है। इन्होंने विचारात्मक शैली का प्रयोग किया है जिस में लेखक के व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

प्र०4 'आत्मनिर्भरता' निबंध में किन समस्याओं को उभारा गया है? उल्लेख कीजिए।

उत्तरः पंडित बाल कृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'आत्मनिर्भरता' देश की तत्कालीन सांस्कृतिक, समाजिक तथा राजनीतिक स्थिति का यथार्थ अंकन करते हुए देशवासियों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देता है जिससे हम अपने देश की उन्नति कर सकें। इसी संदर्भ में लेखक ने इस निबंध में निम्नलिखित समस्याओं की ओर भी संकेत किया है।

(क) ***परतंत्रता की समस्या*** – लेखक गुलामी को देश की अवनति का मुख्य कारण मानते हुए परतंत्रता के बंधनों से मुक्त होने के लिए कहता है। उस का मानना है कि 'हिन्दुस्तान का जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहाँ के लोगों से जैसी

खूबसूरती के साथ बन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं।'' लेखक का मानना है कि 'आज़ादी एक बेशकीमती मोती है।' इसे प्राप्त करने के लिए वह हमें आत्मनिर्भर बनने के लिए कहता है। इसी परतंत्रता के कारण हम दास्य मनोवृत्ति वाले बन गए हैं।

(ख) ***बाल विवाह –*** लेखक बाल–विवाह को भारतीय समाज के लिए भयंकर समस्या मानता है क्योंकि इस से अच्छे नागरिक पैदा नहीं होते हैं। इस कारण देश उन्नति भी नहीं कर पाता। लेखक के विचार में, ''जब से यहाँ ब्रह्मचर्य की प्रथा उठा दी गई और दुधमुँहों का ब्याह जारी कर दिया गया तब से आज तक बराबर हमारी घटती ही होती जाती है।' देश की उन्नति तब तक नहीं हो सकती जब तक ''बाल्य विवाह रूपी कोढ़ साफ न होगा।'' बाल विवाह के द्वारा हमारे देश में युवक–युवतियों की प्रतिभा को कुण्ठित किया जाता है। वे केवल अपना और अपने समाज की तथा देश की उन्नति के लिए उन के पास न समय और न साधन ही रहते हैं।

(ग) ***जनसंख्या वृद्धि की समस्या –*** लेखक ने इस निबंध में जनसंख्या वृद्धि की समस्या पर भी चिन्ता व्यक्त की है। उसका मानना है कि बाल विवाह के कारण हमारे देश में जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इसे रोकने के लिए लेखक चाहता है कि सरकार कानून बनाकर बालविवाह पर रोक लगाये और इसे अपराध घोषित कर बालविवाह करने–कराने वालों को कठोर दण्ड दे। वह मानता है कि ''हमारी उतनी अधिक बढ़ती जैसी बाल्य–विवाह की कृपा से ही हो रही है किस काम की! सिवा इसके कि हिन्दुस्तान की पृथ्वी का बोझ बढ़ता जाय।''

(घ) ***आत्मनिर्भरता के अभाव की समस्या –*** वर्षों विदेशी शासकों के द्वारा शासित होने के कारण भारतवासियों में आत्मसम्मान का भाव समाप्त हो गया है। वे परोपजीवी हो गए हैं। इस कारण किसी भी काम के लिए वे दूसरों का सहारा चाहते हैं। इसलिए लेखक कहता हैं कि, वास्तव में सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात अपनी सहायता अपने आप करने का भाव हमारे बीच हुई नहीं। यह सब वर्तमान दुर्गति उसी का परिणाम है। 'आत्मनिर्भर न होने से हम किस्मत के भरोसे रहकर आलसी भी बन गए हैं। यही कारण है की ''हमारे देश की आबादी के इस हिस्से में आठ हिस्सा ऐसा है जो केवल बाप–दादों की कमाई या परम्परा–प्राप्त जीविका अथवा वृति से निर्वाह करता है।'' इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशों में हुई उन्नति का कारण वहाँ के लोगों में आत्मनिर्भरता का भाव होना मानकर लेखक देशवासियों को भी आत्मनिर्भरता बनने के लिए कहता है।

(ड.) ***समुचित शिक्षा का अभाव –*** लेखक देशवासियों में आत्मनिर्भरता के अभाव का एक कारण देशवासियों को उचित शिक्षा न मिलना मानता है। यहाँ बाल विवाह प्रचलित होने के कारण युवक–युवतियाँ सही शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को तो शिक्षा प्राप्त करने के अवसर मिलते ही नहीं हैं। दस–बारह वर्ष की कन्याओं का विवाह करके उन्हें गृहस्थी के जुए में जोत दिया जाता है। लड़कपन से ही चक्की का पाट गले में बाँधकर चिता तक पहुंचने तक पति–पत्नी पिसते ही रहते हैं। यदि उन्हें उचित शिक्षा प्रदान की जाती तो ये जीवन–संग्राम के लिए अच्छी प्रकार से तैयार हो सकते थे।

(च) ***रूढ़िवादिता की समस्या*** – भारतीय समाज अनेक परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों में जकड़ा हुआ है। इस कारण भी वह उन्नति नहीं कर पाता। संतान का छोटी आयु में विवाह करना भी रूढ़िवादिता है। इस प्रकार से धर्म के नाम पर तथा खान–पान निषेध के नाम पर प्रगतिवादी विचारों को नहीं अपना पाते तथा कूप मंडूक बने रहते हैं। भाग्यवादी बनना भी हमारे कुसंस्कारी होने का परिणाम है। इस कारण हम लोग अपनी अवनति का दोष दूसरों पर मड़ते हुए कहते हैं, ''जातीयता का भाव जाता रहा, एका नहीं है, आपस में हमदर्दी नहीं है, धर्म आगे नहीं बढ़ने देता अथवा विदेशीराज से शासित होने के कारण हम तरक्की नहीं कर पाये।'' लेखक इस सब को बहानेबाज़ी मानता है तथा आत्मनिर्भरता को ही एक ऐसा गुण मानता है जिससे हम सभी क्षेत्रों में उन्नति कर सकते हैं।

अतः स्पष्ट है कि 'आत्मनिर्भरता' निबन्ध में पंडित बाल कृष्ण भट्ट ने तत्कालीन समाज में प्रचलित अशिक्षा, बालविवाह, गुलामी, जनसंख्या वृद्धि आदि की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए हमें आत्मनिर्भरता का गुण अपनाने के लिए प्रेरित किया है क्योंकि आत्मनिर्भर बन कर ही हम अपनी तथा अपने देश की उन्नति करते हुए इन समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं।

प्र०5 'आत्मनिर्भरता' निबंध की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः पंडित बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'आत्मनिर्भरता' नैतिक मूल्यों की विवेचना करने वाला निबन्ध है। इस निबन्ध में लेखक ने खड़ी बोली हिन्दी के संस्कृतनिष्ट रूप के साथ लोक प्रचलित उर्दू, अंग्रेजी, देशज आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन की शैली मुख्य रूप से विचार प्रधान है जिसमें कहीं–कहीं आत्मकथात्मक, व्यंग्यात्मक तथा भावात्मक शैली के दर्शन भी होते हैं। इन की भाषा–शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***भाषा*** – पंडित बाल कृष्ण भट्ट हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषाओं के अच्छे विद्वान थे। इन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' मासिक–पत्र के माध्यम से तत्सम प्रधान खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार–प्रसार किया था। इस कारण उन्होंने अपने निबंधों में मुख्य रूप से तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया है, जैसे– ''आत्मनिर्भरता ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरूष में पौरुषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता।'' इन्होंने अपनी भाषा को स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए उर्दू के बुनियाद, तरक्की, किस्मत, परहेजगार किफायतशार, कौम, तनज्जुली आदि, अंग्रेजी के टोटल, कॉलेज, आदि तथा संस्कृत की सूक्तियों जैसे – 'एके नापि सुपत्रेणं सिंही स्वपति निर्मयम्' आदि का खुलकर प्रयोग किया है।

उनकी भाषा में प्रवाहमयता और भावनुकूलता के दर्शन होते हैं। किसी कथन की व्याख्या करते समय उस की भाषा अत्यंत सरल तथा सहज हो जाती है। जैसे 'ईश्वरीय सानुकूल और सहायक उन्हीं का होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। इस कथन को और अधिक स्पष्ट करने के लिए वे आगे लिखते हैं– ''अपने आप अपनी सहायता करने की दासता आदमी में सच्ची तरक्की की बुनियाद है।''

इस प्रकार भट्ट जी की भाषा में विविधता, स्वाभाविकता, विषयानुकूलता तथा प्रवाहमयता है। भाषाओं में सरसता लाने के लिए इन्होंने मुहावरों, सूक्तियों, लोकोक्तियों आदि का यथावसर सटीक प्रयोग किया है।

(ख) ***शैली –*** पंडित बाल कृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। इन के निबंधों की रचना शैली में विविधता के दर्शन होते हैं। इससे इसकी बहुलता तथा बहुमुखी प्रतिभा का ज्ञान होता है। 'आत्मनिर्भरता' मुख्यरूप से विचारात्मक शैली में रचित निबंध है। इस में लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे– ''पुरूषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा गीदड़ों की खासियत वाले सौ पुत्र भी किस काम के पुत्र जन्म में लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुःख होता है कि जहाँ तीस करोड़ गीदड़ थे वहाँ एक की गिनती और बढ़ी।''

भट्ट जी ने कहीं–कहीं सूत्रात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे – ''राजा का भयानक से भयानक अत्याचार देश पर कभी कोई असर नहीं पैदा कर सकता जब तक उस देश के एक एक व्यक्ति में अपने सुधर की अटल वासना दृढ़ता के साथ है।'' इस प्रकार के विवरणों से वे अपनी बात को पुष्ट करते चलते हैं।

उन्होंने उद्धरण–शैली का प्रयोग करते हुए अपने प्रत्येक कथन को स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया है। जैसे ''आत्मनिर्भरता (अपने भरोसे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरूष में पौरुषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता।'' इस कथन के पश्चात् वे अपने भरोसे रहने वाले व्यक्तियों की तुलना करते हुए कहते हैं – ''जिनको अपने भरोसे का बल है ये जहाँ होंगे जल में तूंबी के समान सब के ऊपर रहेंगे।'' संस्कृत कथनों से उन्होंने विषय को और भी रोचक तथा सरस बनाया हैं जैसे – ''लघयन् खलु तेजसा जगन्न महा निच्छति भूतिमन्यतः'' कथन का वे स्वयं ही अर्थ भी लिखते हैं कि 'तेज और प्रताप से संसार भर को अपने नीचे करते हुए ऊँची उमंग वाले दूसरों के द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते।'' इसका आशय यही हुआ कि आत्मनिर्भर व्यक्ति स्वयं के प्रयासों से महान बनता है।

अतः कह सकते हैं कि भट्ट जी की शैली विभिन्नताओं से युक्त होते हुए भी रोचक, सहज, बोधगम्य तथा प्रभावशाली है।

पीछे मत फेंकिये

बाल मुकुन्द गुप्त

fuc/k dk lkj

बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित निबंध 'पीछे मत फेंकिये' एक व्यंग्यात्मक निबंध है जिस में लेखक ने परतंत्र भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए अंग्रेज़ी शासन की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष किया है। इस निबंध की रचना लेखक ने उस समय की थी जब लॉर्ड कर्ज़न दूसरी बार भारत का गवर्नर जनरल बन कर आया था। वह उसके आने की तुलना लगभग सौ वर्ष पूर्व जुलाई, सन् 1805 ई० में लॉर्ड कार्नवालिस के दूसरी बार गवर्नर–जनरल बन कर भारत आने से करता है।

लेखक के अनुसार जब लॉर्ड कार्नवालिस दुबारा गवर्नर–जनरल बन कर भारत आये थे तब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। लॉर्ड कार्नवालिस को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत भेजा था। उन दिनों कम्पनी–राजकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। उन्हें हुल्कर और सिन्धिया से युद्ध करना पड़ रहा था। राज्य का कोष रिक्त हो गया था क्योंकि कर वसूली नहीं हो रही थी। सेना को कई–कई महीनों से वेतन भी नहीं मिल रहा था। ब्रिटिश शासकों का कम्पनी से विश्वास उठ रहा था। इन स्थितियों में लॉर्ड कार्नवालिस के हाथ–पाँव फूल गए थे और भारत में आने के तीन महीने बाद ही इस सत्तर वर्षीय लॉर्ड की गाजीपुर में मृत्यु हो गयी थी।

इन दिनों संचार तथा आने जाने के तीव्र साधन उपलब्ध नहीं थे इस कारण लॉर्ड कार्नवालिस की मृत्यु का समाचार भी देशवासियों को कई दिनों तक ज्ञान न हो पाया था। जितने दिनों में लॉर्ड कार्नवालिस तब कलकत्ता से गाजीपुर पहुंचा अब उससे भी कम समय में लार्डें कर्ज़न विलायत से हिन्दुस्तान पहुंच गया है। कार्नवालिस जब हिन्दुस्तान आया तो उसे अनेक देशी राजाओं से युद्ध करना पड़ा था परन्तु कर्ज़न के आने पर बम्बई में अनेक राजा, ज़मींदार, रईस उस की चापलूसी करने के लिए एकत्र हो गए थे क्योंकि इस समय तक भारत में अंग्रेजों के पैर जम गए थे। कुछ राजे–महाराजे तो कलकत्ता भी उसे बधाई देने पहुंच गए थे। उस समय राज–कोष भरा हुआ था पर जनता बहुत गरीब थी। ब्रिटिश सरकार में भी लॉर्ड कर्ज़न की अच्छी पहुंच थी तथा वहाँ का प्रधानमंत्री इनका मित्र था। सम्राट को भी इन पर पूरा विश्वास था। केवल इतना ही नहीं ब्रिटेन के समाचार–पत्रों में भी लॉर्ड कर्ज़न के भारतीय कारनामों का गुणगान होता रहता था।

लॉर्ड कर्ज़न के दूसरी बार भारत आने पर देश में ब्रिटिश शासन के सौ वर्ष हो गए थे तथा सब तरफ उन का ही बोलबाला था। सभी देशी राजे–महाराजे उनकी जय जयकार करते थे तथा उन का प्रभाव सारे देश पर था। आवागमन तथा संचार के वैज्ञानिक साधनों ने उनके शासन को सरल तथा सुविधाजनक बना दिया था। गुप्त जी को इस बात पर दुःख हो रहा है कि ब्रिटिश सरकार की इतनी तरक्की हो जाने पर भी हिन्दुस्तान का वजूद समाप्त हो रहा था। अंग्रेज़ी सरकार हिन्दुस्तानियों को पीछे धकेल रही थी और उनकी शक्ति को क्षीण कर रही थी। अंग्रेज़ों का विचार था कि हिन्दुस्तानियों में उनकी अपेक्षा काम करने की शक्ति कम है जबकि लेखक का विश्वास है कि हिन्दुस्तानी बुद्धि, बल और कौशल से अंग्रेज़ों से किसी प्रकार से भी कम नहीं हैं तथा वे भी सभी कार्य सहजता से कर सकते हैं। समस्त संसार में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्रशंसा होती है। यहाँ के निवासी अपनी

भाषा के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी आदि भाषायें भी लिख–बोल सकते हैं परन्तु एक भी अंग्रेज़ ऐसा नहीं है जो हिन्दुस्तानियों की तरह शुद्ध हिन्दी बोल सकता हो। इस प्रकार हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों के समान सब कुछ कर सकते हैं परन्तु उन के समान न तो गोरे हो सकते हैं और न ही उन जैसा भाग्य लेकर आए हैं।

लेखक लॉर्ड कर्ज़न को सम्बोधित करते हुए कहता है कि समय सदा एक–सा नहीं रहता। यह परिवर्तनशील हैं। इस संसार में जितने भी शक्तिशाली शासक हुए हैं सभी एक दिन मिट्टी में मिल गए। कोई अपने साथ कुछ नहीं ले गया। कईयों का तो नाम तक भी शेष नहीं रहा। जो अच्छे कार्य करता है उसी का नाम रहता है। लॉर्ड कर्ज़न पहले भी छः वर्षों तक यहाँ रहे थे और अब भी उन्हें यहां आए काफी समय हो गया है। उन्हें अभी दो वर्षों तक और यहाँ रहना है। इसलिए यदि वे चाहें तो तीस करोड़ हिन्दुस्तानियों के लिए कुछ अच्छा करके अपना नाम कमा सकते हैं। विगत एक हज़ार वर्षों से यहां के निवासियों की गिरती हुई दशा को सुधारने के लिए वे योजनाएँ बना कर लागू कर सकते हैं यहां के लोगों का जीवन–स्तर ऊँचा उठा कर उन्हें जीवन–यापन के समुचित साधन दिला सकते हैं। वह चाहता है कि लॉर्ड कर्ज़न हिन्दुस्तानियों को पीछे न फैंकें बल्कि आगे बढ़ाये।

dfBu 'kCnksa dk vFkZ

कसर = कमी। दृष्टि कीजिये = देखिए। रंङकास = गरीब, दरिद्र। पदारूढ़ = पद पर बैठना। निर्जीव = मुर्दा, मरे हुए के समान। घोर = भयंकर, भीषण, कठोर। परतंत्रता = गुलामी। लुप्त = समाप्त होना, नष्ट होना। सजातीय = अपनीजात वाले। श्रम = मेहनती, परिश्रम। वक्तृता = भाषण देना, बोलना। सहिष्णुता = सहन करना, सहनशीलता। अनुकरण = नकल करना, देखादेखी करना। सदृश = समान, जैसा। पार्थक्य = भेद, जुदाई होने का भाव, जुदाई, अलगाव। कङ्गल = गरीब। अर्पण = देना, प्रदान करना, भेंट करना। विचारना = सोचना। संकीर्ण = संकुचित, तुच्छ । यथेच्छाचारिता = मनमाना कार्य करना।

lanHkZ 0;k[;k

1

सौ साल पूरा होने में अभी महीनों की कसर है। उस समय ईस्ट–इण्डिया कम्पनी ने लार्ड कार्नवालिस को दूसरी बार उस देश का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा था। तब से अब तक आप ही को भारतवर्ष का फिर से शासक बनकर आने का अवसर मिला है। सौ साल के उस समय की ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तब में और अब में कितना अंतर हो गया है, क्या से क्या हो गया है? (पृ० 49)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित 'पीछे मत फेंकिये' पाठ से उद्धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। यह एक व्यंग्यात्मक लेख हैं जिसमें लेखक ने पराधीन देश की दुर्दशा का चित्रण करते हुए अंग्रेज़ों की शोषण प्रवृति पर कटाक्ष किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक कहता है कि लगभग सौ वर्ष पहले जब भारत पर ईस्ट–इण्डिया कम्पनी का राज्य था तो उस समय कम्पनी ने लार्ड कार्नवालिस को दुबारा भारत का गवर्नर जनरल बना कर भेजा था। तब से लेकर अब तक अन्य कोई भी शक्ति दुबारा भारत का गर्वनर जनरल

बनकर नहीं आया। नहीं आया केवल आप अर्थात् लॉर्ड कर्ज़न को दुबारा भारत का गवर्नर जनरल बनकर आने का अवसर मिला है। लेखक लॉर्ड कर्ज़न को सम्बोधित करते हुए कहता है कि आज से सौ साल पहले के उस समय पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि तब और अब के समय में कितना अन्तर आ गया है और कितना परिवर्तन हो गया है। जो जैसा था वैसा न हो कर सब कुछ ही बदल गया है।

विशेषः

(क) इस पंक्तियों में लेखक लॉर्ड कार्नवालिस और लॉर्ड कर्ज़न के दुबारा गवर्नर जनरल बनकर आने के समय देश में हुए परिवर्तनों की ओर संकेत कर रहा है।

(ख) भाषा सहज, सरल तथा तद्भव शब्दों से युक्त हैं

(ग) शैली वर्णनात्मक है।

2

जागता हुआ रंङक अति चिन्ता का मारा सो जाने और स्वप्न में अपने को राजा देखे, द्वार पर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैला के अबुल हसन की भाँति कोई तरल युवक प्याले पर प्याले उड़ाता घर में बेहोश हो और जागने पर आंखें मलते–मलते अपने को बगदाद का खलीफा देखे, आलीशान सजे महल की शोभा उसे चक्कर में डाल दे, सुन्दरी दासियों के ज़ेवर और कामदार वस्त्रों की चमक उसकी आंखों में चकाचौंधा लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतों की मधुर ध्वनि उसके कानों में अमृत डालने लगे, तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो जितना सौ साल पहले की भारत में अंग्रेज़ी राज्य की दशा को आजकल की दशा के साथ मिलने से हो सकता है। (पृ० 49)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्यशिखर' में संकलित पाठ 'पीछे मत फेंकिये' से उद्धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। यह एक व्यंग्यात्मक आलेख है जिसमें लेखक ने अंग्रेज़ों की शोषण वृत्ति पर कटाक्ष करते हुए लॉर्ड कर्ज़न ने भारतवासियों की दशा सुधारने का अनुरोध किया है।

व्याख्याः इस पंक्तियों में लेखक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सौ साल के शासन में आए परिवर्तन का वर्णन करते हुए लिखता है कि तब से अब तक अनेक परिवर्तन हो गये हैं। अपने कथन को स्पष्ट करते हुए लेखक लिखता है कि यह परिवर्तन वैसे ही है जैसे कोई भूखाभिखारी चिन्ता में लीन सो जाए और सपने में स्वयं को विभिन्न सुख–सुविधाओं से सम्पन्न किसी राजा के समान अनुभव करे। उस के महल के बाहर हाथी झूम रहे हों और उसके पास सब कुछ हो। अथवा अलिफ लैला की कहानियों के अबुलहसन की तरह तरल पेय पी कर बेहोश होने के बाद होश आने पर स्वयं को बगदाद का शासक बना देखें। बड़े–बड़े आलीशान सजे–धजे महलों को देख कर वह आश्चर्यचकित हो जाए। उसकी सेवा में लगी हुई दासियों के आभूषण तथा कढ़ाई वाले वस्त्र उसे चकाचौंध कर दें। उसे मधु–मधुर स्वर वाले वाद्य–यन्त्रों के स्वर मंत्र–मुग्ध कर दें इस सब से भी इतना अधिक आश्चर्य नहीं हो सकता जितना कि सौ साल पहले की अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था के साथ आज के अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था के साथ तुलना करने से होता है। पहले सभी देशवासी अंग्रेज़ी शासन का विरोध कर रहे थे जबकि आज सभी अंग्रेज़ी शासन के सामने नतमस्तक हैं।

विशेषः

(क) लेखक ने अंग्रेज़ी शासन के भारत में पूरी तरह से पैर जमाने तथा भारतीयों की निरंतर दयनीय होती दशा का वर्णन किया है।

(ख) लेखक की कल्पना शक्ति का अद्‌भुत चमत्कार देखा जा सकता है जो उसने रंक में राजा बनने की है।

(ग) भाषा तद्‌भव शब्दों से युक्त सरल है। शैली भावपूर्ण है।

3

किन्तु और ही समय हैं। माई लार्ड! लार्ड कार्नवालिस के दूसरी बार गवर्नर जनरल होकर भारत आने और आप के दूसरी बार आने में बड़ा अंतर है। प्रताप आप के साथ है। अंग्रेज़ी राज्य के भाग्य का सूर्य मध्याह्न में है। उस समय के बड़े लाट को जितने दिन कलकत्ते से गाजीपुर जाने में लगे होंगे, आप उनसे कम दिनों में विलायत से भारत पहुंच गये।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'पीछे मत फेंकिये' से उद्‌धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। यह एक व्यंग्यात्मक निबंध है जिसमें लेखक ने तत्कालीन अंग्रेज सरकार की शोषण वृति पर कटाक्ष करते हुए लॉर्ड कर्ज़न से भारतवासियों के लिए कुछ अच्छा करने का अनुरोध किया।

व्याख्याः इस पंक्तियों में लेखक लॉर्ड कर्ज़न और लॉर्ड कार्नवालिस के दुबारा भारतवर्ष के गवर्नर जनरल बन कर आने पर परिवर्तित स्थितियों का वर्णन करते हुए लिखता है कि जब लॉर्ड कार्नवालिस के दुबारा भारतवर्ष के गवर्नर जनरल बन कर आने पर परिवर्तित स्थितियों का वर्णन करते हुए लिखता है कि जब लॉर्ड कार्नवालिस दुबारा भारतवर्ष के गवर्नर जनरल बन कर आए थे तो उन का सबने विरोध किया था परन्तु लॉर्ड कर्ज़न के दुबारा गवर्नर बन कर आने पर सबने उन का स्वागत किया है। अब समय बदल गया है और सभी परिस्थितियाँ अंग्रेज़ी शासन के अनुकूल हैं। अंग्रेज़ी राज्य का यश निरंतर बढ़ रहा है। जिस प्रकार दोपहर के सूर्य में प्रखरता होती है वैसे ही अंग्रेज़ी शासन रूप सूर्य की प्रखरता से चमक रहा है। उस समय लॉर्ड कार्नवालिस को कलकत्ते से गाजीपुर तक आने में जितना समय लगा था उससे भी कम समय में लॉर्ड कर्ज़न विलायत से भारत आ गये हैं। इस प्रकार आवागमन के साधनों में भी उन्नति हुई है।

विशेषः

(क) विगत सौ वर्षों में ब्रिटिश राज्य के विस्तार तथा भारत में उन के शासन की स्थापना की ओर लेखक ने संकेत किया है।

(ख) भाषा सरल तथा अंग्रेज़ी के बोलचाल के शब्दों से युक्त हैं

(ग) शैली सम्बोधनात्मक है।

4

संसार में अब अंग्रेज़ी प्रताप अखण्ड है। भारत के राजा अब आपके हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर–चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार लगाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाईये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाज़िर हैं। आपके हुक्म की तेज़ी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ को पिघलाती है, फारस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म्म करती है। जल, स्थल, वायु और आकाश मण्डल में सर्वत्र आपकी विजय है। (पृष्ठ 50)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'पीछे मत फेंकिये' से उद्धृत किया गया है। इस पाठ के लेखक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। इस पाठ में लेखक ने परतंत्र भारत में अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय जनता के शोषण का विरोध करते हुए अंग्रेज़ों की नीतियों पर व्यंग्य किया है तथा राष्ट्रीय भावना को जगाने के लिए देशवासियों को उत्साहित किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक व्यंग्यात्मक रूप से अंग्रेज़ी साम्राज्य की विस्तारवादी नीति की आलोचना करते हुए लिखता है कि समस्त संसार में अब अंग्रेज़ी साम्राज्य का यश फैला हुआ है। भारत के राजे अब अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रतिनिधि लॉर्ड कर्ज़न की आज्ञा पालन करने के लिए तैयार रहते हैं। वे चाहें तो उन्हें एकत्र करके उनसे जुलूस निकलवा सकते हैं अथवा उन्हें अपने दरबार में उपस्थित रहने के लिए कहकर उनसे अपनी वंदना करा सकते हैं। वे चाहें तो उन्हें विलायत भी भेज सकते हैं या कलकत्ता बुलवा सकते हैं। वे इन राजे–महाराजों से जो भी चाहे करवा सकते हैं और वे उनका आदेश पालन करने के लिए सदा उपस्थित रहते हैं। अंग्रेज़ी शासन की विस्तारवादी नीति पर कटाक्ष करते हुए लेखक लिखता है कि आप के क्रोध करने से तिब्बत के पहाड़ों पर जमी हुई बर्फ पिघल जाती है, फारस की खाड़ी का पानी सूख जाता है और काबुल की पहाड़ियाँ भी नर्म हो जाती है। इस प्रकार अंग्रेज़ी साम्राज्य का दरबार जल, स्थल और आकाश तक छाया हुआ है।

विशेषः

(क) अंग्रेज़ी साम्राज्य की विस्तारवादी प्रवृत्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।

(ख) भाषा में उर्दू के शब्दों तथा मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(ग) शैली भावपूर्ण किन्तु व्यंग्यात्मक है।

5

इस देश में एक महा प्रतापी राजा का वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उस के यहाँ जल भरता था, पवन उसके यहाँ चक्की चलाता था, चाँद–सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे, इत्यादि। पर अंग्रेज़ी प्रताप उससे भी बढ़ी गया है। समुद्र अंग्रेज़ी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकायें बैठने के लिए कुर्सी, मूढ़े। बिजली कलेकं चलानेवाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूती, इत्यादि इत्यादि। (पृ०–51)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्यशिखर' में संकलित तथा बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित व्यंग्यात्मक निबंध 'पीछे मत फेंकिये' से उद्धृत किया गया है। इस पाठ में लेखक ने अंग्रेज़ी शासन की निरंकुश नीति की कटु आलोचना करते हुए भारतीयों को उचित सम्मान देने की बात कही है।

व्याख्याः लेखक के अनुसार संसार में अंग्रेज़ी साम्राज्य की विस्तारवादी नीति को कोई भी चुनौती देने की शक्ति नहीं रखता है। वह अंग्रेज़ी साम्राज्य की अहंकारी प्रवृत्ति की तुलना रावण से करते हुए लिखता है कि इस देश में भी एक ऐसे महाप्रतापी राजा का वर्णन प्राप्त होता है जिस के घर पर इन्द्र देवता जल भरता था, पवन देवता चक्की चलाता था और चाँद–सूर्य उसके घर पर रोशनी करते थे। उस रावण से भी अंग्रेज़ी साम्राज्य का प्रताप और भी अधिक बढ़ गया है। क्योंकि समुद्र इस का मल्लाह बन गया है, पर्वतों की चोटियाँ उन के लिए बैठने की कुर्सियाँ हैं और बिजली उसकी मशीनों को चलाने वाली दासी तथा हज़ारों मील तक समाचार पहुंचानेवाली दूतियों के समान हैं। इस प्रकार उन का प्रभाव सर्वत्र फैल गया है।

विशेषः

(क) लेखक ने अंग्रेज़ी साम्राज्य की रावण के राज्य से तुलना कर के अंग्रेज़ी साम्राज्य के अंत की कल्पना भी रावण के राज्य जैसी की है।

(ख) 'अहंकारी का सिर नीचा' भाव को इन पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा तद्भव शब्दों से युक्त है। शैली व्यंग्यात्मक है।

6

आश्चर्य है माई लार्ड! एक सौ साल में अंग्रेज़ी राज्य और अंग्रेज़ी प्रताप की तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे! इस अपार उन्नति के समय में आप जैसे शासक के जी में भारतवासियों को आगे बढ़ाने की जगह पीछे धकेलने की इच्छा उत्पन्न हो। उनका हौसला बढ़ाने की जगह उनकी हिम्मत तोड़ने में आप अपनी बुद्धि का अपव्यय करें। (पृ०–51)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित पाठ 'पीछे मत फेंकिये' से लिया गया है, जिसके लेखक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। इस पाठ में लेखक ने अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष करते हुए भारतवासियों में राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना जगाने का प्रयास किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न को सम्बोधित करते हुए कहता है कि कितनी हैरानी की बात है कि भारत में जिस ब्रिटिश साम्राज्य को राज करते हुए एक सौ साल हो गए हैं और इस समय में उन्होंने इतनी अधिक उन्नति भी कर ली है कि उन का यश संसार में सर्वत्र फैल रहा है उसी प्रतापी ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहकर भी भारतवासियों को इतनी अधिक दुर्दशा हो रही है कि वे अपना अस्तित्व ही खोते जा रहे हैं। इस प्रकार इतनी अधिक उन्नति करने वाले ब्रिटिश साम्राज्य के आप भारत में शासक बन कर आए हैं तो आप जैसे व्यक्ति को भारत को उन्नत करने के स्थान पर इसे और अधिक गिराने की बात नहीं सोचनी चाहिए। लेखक चाहता है कि लॉर्ड कर्ज़न भारतीयों को प्रोत्साहित करने के स्थान पर उन्हें हतोत्साहित न करें। उन्हें भारतीयों की दशा को दयनीय बनाने में अपनी बुद्धि को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

विशेषः

(क) अंग्रेज़ों को वैभवपूर्ण दिनों तथा भारतवासियों की दयनीय दशा का निरूपण किया गया है।

(ख) तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(ग) शैली सम्बोधनात्मक एवं व्यंग्यात्मक है।

7

किन्तु इस संसार में आरम्भ में बड़ा भारी पार्थक्य होने पर भी अन्त में बड़ी भारी एकता है। समय अन्त में सब को एक मार्ग पर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा कर पेट भरने वाले कंगाल का परिणाम एक ही होता है। मट्टी मट्टी में मिल जाती है और यह जीते जी लुभाने वाली दुनिया यहीं रह जाती है। कितने ही शासक और कितने ही नरेश इस पृथिवी पर हो गये, आज उन का कहीं पता निशाना नहीं है। थोड़े–थोड़े दिन अपनी–अपनी नौबत बजा गये, चले गये। बड़ी तलाश से इतिहास के पन्नों अथवा टूटे फूटे खण्डहरों में उनके दो–चार चिह्न मिल जाते हैं। (पृष्ठ 51–52)

प्रसंग: प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित व्यंग्यात्मक निबंध 'पीछे मत फेंकिये' से उद्धृत किया गया है, जिसके लेख बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। इस निबंध में लेखक ने भारतवासियों पर ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष करते हुए देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने का प्रयास किया है।

व्याख्या: इन पंक्तियों में लेखक संसार की असारता पर विचार करते हुए ब्रिटिश शासकों को भारतवासियों पर अत्याचार न करने के लिए कहता है। लेखक का विचार है कि इस संसार में भिन्नता होते हुए भी एक बहुत बड़ी एकता भी है। एकता यह है कि अन्तिम समय में सभी को एक ही रास्ते पर जाना होता है। अर्थात् संसार में चाहे लोग भिन्न–भिन्न ढंग से जीवन व्यतीत करें किन्तु मृत्यु के पश्चात् सब की एक ही दशा होती है। चाहे किसी देश का कोई सम्राट हो अथवा भीख मांग कर अपना पेट भरने वाला कोई भिखारी हो सब मरने के बाद एक ही दशा को प्राप्त करते हैं। मरने के बाद मिट्टी में ही मिल जाते हैं और जीवित रहते समय जो दुनिया का आकर्षण हमें आकर्षित करते हैं वे सब के सब यहीं रह जाते हैं। इस संसार में अनेक राजे, महाराजे और शासक इस पृथ्वी पर राज करके चले गए पर आज उन की किसी को याद भी नहीं है और न ही उन का कोई नामोनिशान बाकी है। सभी कुछ दिनों तक अपना–अपना राज्य करके चले गए। यदि बहुत खोज–बीन की जाए अथवा इतिहास में तलाश किया जाए या पुराने टूटे–फूटे खण्डहरों में खोज की जाए तो किसी राजा–महाराजा के होने के कुछ चिह्न अवश्य मिल जाते हैं।

विशेष:

(क) लेखक ने मृत्यु को एक सच्चाई माना है जो राजा–रंक को एक समान आती है।

(ख) भाषा तत्सम, तद्भव शब्दों तथा मुहावरों से युक्त है।

(ग) शैली भावात्मक है।

8

अब यह विचारना आप ही के जिम्मे है कि उस देश की प्रजा के साथ आपका क्या कर्त्तव्य है। हजार साल से यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जावे? इसके गिराने में बड़े से बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकों की

यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है। किन्तु उसके उठाने और सम्भालने में जो लाभ हैं, उनकी तुलना नहीं हो सकती। (पृष्ठ–52)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित निबंध 'पीछे मत फेंकिये' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेख ने अंग्रेज़ों की शोषण प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए भारतवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने का प्रयास किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक लॉर्ड कर्ज़न को भारतवासियों के दयनीय दशा सुधारने के लिए कहता है। लेखक देशवासियों की दयनीय दशा का वर्णन करने के बाद लॉर्ड कर्ज़न को कहता है कि अब उन्होंने ही यह निर्णय करना है कि जिस देश के वे शासक बन कर आए हैं उस देश की प्रजा के प्रति उनके कर्त्तव्य क्या है? विगत हजार वर्षों से गुलाम रहने के कारण यहाँ की प्रजा की दशा बहुत दयनीय हो गयी है। क्या वे यह चाहते हैं कि आने वाले सौ–पचास वर्षों में यहाँ की प्रजा की दशा और भी अधिक खराब होती चली जाये? यदि इस प्रकार भारतीय जनता की दशा खराब होती चली जाए तो इससे केवल उन्हीं तुच्छ हृदय वाले शासकों की मनमानी कुछ दिन और चल सकती है जो केवल जनता का शोषण करना जानते हैं। इस के स्थान पर यदि इस गिरी हुई प्रजा को ऊँचा उठाया जाए और इसे उन्नत बनाया जाए तो इससे आप को जो लाभ होगा उस लाभ की तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती है।

विशेषः

(क) लेखक चाहता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि भारतीय जनता का शोषण न करके उसे उन्नति करने का अवसर प्रदान करे।

(ख) भाषा तत्सम प्रधान है।

(ग) शैली विचारात्मक है।

vu|'khyuh d: i:'uk d: mÙkj

प्र०1 बाल मुकुन्द गुप्त के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **परिचयः** बाबू बाल मुकुन्द गुप्त का जन्म सन् 1865 ई० में हरियाणा के झज्जर नगर के निकट गुड़ियाना गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला पूरनमल तथा पितामह का नाम लाला गोवर्धन दास था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई थी तथा बाद में विद्यालय गए, किन्तु अपने पिता और दादा के मृत्यु के कारण अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाये थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उस का विवाह अनारदेवी के साथ हो गया था। अध्ययन की रूचि के कारण इक्कीस वर्ष की आयु में इन्होंने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी स्वाध्याय से इन्होंने उर्दू, हिन्दी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं पर विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन्होंने स्वतंत्र लेखन के साथ–साथ उर्दू में प्रकाशित अखबारे चुनार, कोहेनूर, ज़माना, अवधपंच और भारत–प्रलाप का सम्पादन भी किया था। पंडित मदन मोहन मालवीय के प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया था और तीन दैनिक पत्रों – हिन्दोस्थान, हिन्दी बंगवासी और भारत–मित्र का सम्पादन किया केवल बयालीस वर्ष की अल्प आयु, 18 सितम्बर 1907 ई०, में इन का देहावसान हो गया था।

साहित्यः बाबू बाल मुकुन्द गुप्त बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। इन्हें प्रबुध पत्रकार, कुशल सम्पादक, गंभीर चिंतक, ओजस्वी निबंधकार, संवेदनशील कवि, देशभक्ति, समाज सुधारक आदि के रूप में जाना जाता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'शिवशम्भु के चिट्ठे, 'चिट्ठे और खत,' 'बाल मुकुन्द गुप्त निबन्धावली', 'स्फुट कविताएँ', 'बाल मुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली' आदि हैं।

बाबू बाल मुकुन्द गुप्त का साहित्य जगत में प्रवेश पत्रकारिता के माध्यम से हुआ था। पहले उर्दू और बाद में हिन्दी के विभिन्न पत्रों का सम्पादन करते हुए उन्होंने अनेक समसामयिक विषयों पर सम्पादकीय, लेख, कविताएँ आदि लिखी थीं। उनके निबंधों तथा अन्य रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का स्वर अत्यन्त प्रखरता से उभर कर आया है। ब्रिटिश साम्राज्य के तत्कालीन प्रतिनिधि गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न की दमनकारी नीतियों के विरूद्ध उन्होंने 'शिव शम्भु का चिट्ठा' तथा 'भारत मित्र' की सम्पादकीय टिप्पणियों में खुलकर शब्दवाण छोड़े हैं। अपनी राष्ट्रीयता की भावना तथा अंग्रेज़ी शासन की आलोचना के कारण ही उन्हें राजारामपाल सिंह के पत्र 'हिन्दोस्थान' की नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। इस सम्बन्ध में पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी का यह कथन अवलोकनीय है कि 'हिन्दी पत्रकार–कला के इतिहास में यह शायद पहला ही मौका था जबकि गवर्नमेण्ट के विरूद्ध बहुत बड़ा लेख लिखने के कारण किसी पत्रकारों को च्युत किया हो।'' अपने देश प्रेम की भावना उन उस कथन को स्पष्ट होती है जब लॉर्ड कर्ज़न कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिए गए अपने भाषणों में पूर्व के लागों को मिथ्यावादी तथा सत्य का अनादर करने वाला कहता है तो गुप्तजी 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से लिखते हैं कि जो सत्यप्रियता उस देश को सृष्टि के आदि से मिली है, जिस देश का ईश्वर 'सत्यज्ञानमनन्तम् ब्रह्म' है, वहां के लोगों को सभा में बुला के, ज्ञानी और विद्वान का चोला पहनकर, उन के मुंह पर झूठा और मक्कार कहने लगे। विचारिये तो यह कैसे अधःपतन की बात है? जिस स्वदेश को श्रीमान ने आदर्श सत्य का देश कहा है और वहां के लोगों को सत्यवादी कहा है, उस का आला नमूना श्रीमान ही हैं? यदि सचमुच विलायत वैसा ही देश हो, जैसे आप फरमाते हैं और भारत भी आपके कथनानुसार मिथ्यावादी और धूर्त देश हो, तो भी तो क्या कोई इस प्रकार कहता है? अपनी सत्यवादिता प्रकाश करने के लिए दूसरे को मिथ्यावादी कहना ही क्या सत्यवादिता का सबूत है?''

इन्होंने अपने निबंधों में विभिन्न सामाजिक कुरीतियों की भी खुलकर आलोचना की है तथा समाज सुधारने के लिए लोगों को प्रेरित किया है। जल के अभाव से त्रस्त रायगढ़ नामक रियासत के टपरदा गाँव के निवासियों की दुर्दशा की ओर तत्कालीन शासकों का ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने लिखा था कि रियासती सरकार ऐसे गाँवों में खुदवा कर जलकष्ट निवारण क्यों नहीं करती?'' विधवा–विवाह, अनमेल विवाह, अन्धविश्वास, बाल–विवाह, साम्प्रदायिकता आदि विभिन्न विषयों पर उन्होंने अपने निबंध लिखे हैं।

बाबू बाल मुकुन्द गुप्त ने हिन्दी भाषा और व्याकरण को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए 'भारतमित्र' के माध्यम से सार्थक प्रयास किया था। इन की अपनी भाषा खड़ी बोली हिन्दी थी। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार ''किसी प्रकार का विषय हो गुप्त जी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढ़ा देती थी। इनकी हिन्दी बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। वे अपने विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेट कर रखते थे कि उनका आभास बीच–बीच में ही मिलता था''। इन्होंने अपनी कविताओं में भी तत्कालीन शासकों के साथ–साथ चापलूसी हिन्दुस्तानियों पर भी व्यंग्य किया है। 'पंजाब में लायल्टी' शीर्षक कविता

के माध्यम से उन्होंने पंजाब के लोगों को अंग्रेज़ों की भक्ति पर तीक्ष्ण कटाक्ष करते हुए वे लिखते हैं–

सब के सब पंजाबी अब हैं लायलटी में चकनाचूर,
सारा ही पंजाब देश बन जाने को है लायलपुर।
सुनते हैं पंजाब देश सीधा सुरपुर को जावेगा,
उसलायल भारत में रहकर इज्जत नहीं गँवावेगा।''

इन की शैली सर्वत्र व्यंग्यकता रही है जिस में कहीं–कहीं आत्मकथात्मक एवं विवरणात्मक सर्वत्र व्यंग्यात्मक रही है जिस में कहीं–कहीं आत्मकथात्मक एवं विवरणात्मक शैली के दर्शन भी होते हैं। इनके व्यंग्य विचार प्रधान होने के कारण तीक्ष्ण प्रहार करते हैं।

प्र०2 'पीछे मत फेंकिये' निबंध की मूल संवेदना अपने शब्दों में लिखिये।

उत्तरः बाबू बाल मुकुन्द गुप्त ने अपने व्यंग्यात्मक निबंध 'पीछे मत फेंकिये' में मूलरूप से ब्रिटिश साम्राज्य की भारतीयों के प्रति दमनकारी नीतियों का विरोध करते हुए भारतवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाकर उनमें देश की रक्षा की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया है। लॉर्ड कर्ज़न जब दूसरी बार भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो ब्रिटिश साम्राज्य का समस्त संसार में बोलबाला हो रहा था परन्तु भारतीय जनता की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। लॉर्ड कर्ज़न ने भारतीयों को उच्चपदों में अयोग्य घोषित कर उनके स्थान पर अंग्रेज़ों को लगा दिया था जबकि ''श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वक्तृता में, सहिष्णुता में, किसी बात में इस देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं। वरच एक दो गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भर में किसी जाति के लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानी फारसी पढ़ के ठीक फारिस वालों की भाँति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं। अंग्रेज़ी बोलने में वह अंग्रेज़ों की पूरी नकल कर सकते हैं।''

अंग्रेज़ी सरकार की दमनकारी नीतियों के कारण यहाँ के राजे–महाराजे भी स्वयं को शक्तिहीन समझने लगे हैं तथा लॉर्ड कर्ज़न के दूसरी बार गवर्नर–जनरल बन कर आने पर उसके स्वागत के लिए बम्बई, कलकत्ता पहुंच जाते हैं। उन की दयनीय दशा का वर्णन लेखक ने इन शब्दों में किया है, ''भारत के राजा अब आपके हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये,चाहे दरबार लगाकर सलाम करवाइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिए, वह हाज़िर हैं।'' इस प्रकार तत्कालीन भारतीय राजे–महाराजे ब्रिटिश साम्राज्य के सम्मुख अपना अस्तित्व खो बैठे थे ओर अंग्रेज़ी सरकार के हाथों की कठपुतली बन कर उनके इशारों पर नाचा करते थें

ब्रिटिश साम्राज्य इतना अधिक शक्ति सम्पन्न हो गया था कि अपने बल के अहंकार में वह सबको तुच्छ समझने लगा था। उनके हुक्म की तेजी से तिब्बत के पहाड़ों की बर्फ पिघलती है, फारिस की खाड़ी का जल सूख जाता था, काबुल के पहाड़ नर्म हो जाते थे। सर्वत्र उनकी विजय के नगाड़े बजते थें अंग्रेज़ी सरकार के अंहभाव की तुलना रावण से करते हुए लेखक कहते हैं– ''इस देश में एक महाप्रतापी राजा का वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहाँ जल भरता था, पवन उस के यहाँ चक्की चलाता था, चाँद सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे, इत्यादि।'' इस कथन के माध्यम से लेखक ब्रिटिश शासन को भी रावण

के शासन के समान अत्याचारी शासन बताता है जिस के अन्त की कल्पना भी वह रावण के अन्त के समान ही करता है।

लेखक ने ब्रिटिश साम्राज्य की विस्तारवादी नीति पर भी कटाक्ष किया और कहा है कि इतना अत्याचार नहीं करना चाहिए क्योंकि समय अन्त में सब को एक मार्ग पर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा मांग कर पेट भरने वाले कंगाल का परिणाम एक ही होता है। मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। और यह जीते जी लुभाने वाली दुनिया यहीं रह जाती है।'' इसलिए वह लॉर्ड कर्ज़न को भी स्मरण दिलाता है कि 'बीते हुए समय को फिर लौटा लेने की शक्ति किसी में नहीं है, आप में भी नहीं। दूर की बात दूर रहे, उन पिछले सौ साल ही में कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है? कदापि नहीं।'' इसलिए लेखक चाहता है कि लॉर्ड कर्ज़न को यह सोच विचार करना चाहिए कि वह उस देश की प्रजा को कैसे ऊँचा उठा सकता है।

लेखक ने लॉर्ड कर्ज़न से भारतीय जनता को पीछे न फेंकने का अनुरोध इसलिए किया है क्योंकि लॉर्ड कर्ज़न की बात ब्रिटिश सरकार मानती है। 'इण्डिया आफिस आप के हाथ की पुतली है। विलायत के प्रधानमंत्री आप के प्रिय मित्र हैं। सम्राट का आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायत के प्रधान समाचार पत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच–बीच में आपका गुणगान सुनाना पुण्य कार्य समझते हैं। इस प्रकार यदि लॉर्ड कर्ज़न चाहे तो भारतवासियों की दयनीय दशा सुधारने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से आर्थिक सहायता भी ले सकता है और उस के चाहने पर रुपयों की वर्षा भी हो सकती है क्योंकि विलायत के सभी मंत्री इन की मुट्ठी में हैं। यह कार्य करने से इतिहास में अंग्रेज़ी सरकार का नाम भी सदा अमर हो जाएगा कि उन्होंने गिरती जाति के तीस करोड़ लोगों को उठाया था।

लेखक ने भारतवासियों में आत्मनिर्भरता और देश प्रेम जागृत करने के लिए भारत के गौरवशाली अतीत की ओर भी संकेत किया है और बताया है कि भारत सदा आज के समान दीन–हीन स्थिति में नहीं था। हज़ार वर्षों तक परतंत्र रहते हुए भी भारतवासी अपना अस्तित्व बचा कर रखे हुए है। औरंगज़ेब, अलाउद्दीन, महमूद, तैमूर, नादिर शाह जैसे शासक भी इस जाति को नष्ट नहीं कर सके हैं। आगे भी यह जाति इसी प्रकार अपनी रक्षा करती रहेगी। सारा संसार भारतवासियों के प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की प्रशंसा आज भी कर रहा है।

अतः कह सकते हैं कि 'पीछे मत फेंकिये' निबंध की मूल संवेदना ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में नियुक्त शासकों द्वारा भारतीय जनता पर किए जा रहे अत्याचारों का विरोध करना है। जिसे लेखक ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में रावण राज्य कहा है। उस के साथ ही वह ब्रिटिश शासकों की अहंकारी मनोवृत्ति पर भी कटाक्ष करता है कि इस संसार में मनुष्य सदा नहीं रहता केवल उस का यश ही शेष रह जाता है। यदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि जनकल्याण की भावना से देश में कार्य करते हुए यहाँ की जनता का जीवन–स्तर सुधारेंगे जो सभी उन्हें याद करेंगे अन्यथा जैसे अन्य शासक शासन कर के मिट्टी में मिल गए वैसे ही उन का भी अन्त हो जाएगा तथा कोई उन्हें याद भी नहीं करेगा।

प्र०3 निबंध–कला की दृष्टि से 'पीछे मत फेंकिये' निबंध की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित निबन्ध 'पीछे मत फेंकिये' एक व्यंग्य प्रधान निबंध है जिसमें उन्होंने भारत की परतंत्र दशा पर दुःख व्यक्त करते हुए ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीति पर कटाक्ष किया है। इस निबंध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***बुद्धि–तत्व –*** किसी भी निबंध में बुद्धि–तत्व से तात्पर्य उस विचारशक्ति से होता है जो निबंधकार को चिन्तन–मनन की ओर अग्रसर करते हुए उसे किसी एक विषय पर सोचने के लिए बाध्य कर देती है। जिसके परिणामस्वरूप वह किसी विशेष विषय अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप से व्यक्त कर उसे निबंध का रूप दे देता है। 'पीछे मत फेंकिये' निबंध की रचना के पीछे ब्रिटिश शासकों की दमनकारी नीति, प्राचीन भारत की गौरव गाथा तथा तत्कालीन भारत की दयनीय दशा ने लेखक के विचारों को आन्दोलित किया जिसके परिणामस्वरूप इस निबंध की रचना हुई। संसार में अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रचण्ड तेज ने सर्वत्र अपनी धूम मचा रखी है। उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत का अपनी रही सही हैसियत खो देना लेखक को अच्छा नहीं लगता। इसीलिए वह तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न से अनुरोध करता है, ''आप जैसे शासक के जी में भारतवासियों को आगे बढ़ाने की जगह पीछे धकेलने की इच्छा उत्पन्न हो। उन का हौसला बढ़ाने की जगह उनकी हिम्मत तोड़ने में आप अपनी बुद्धि का अपव्यय करें!' यह लेखक को उचित नहीं लगता है। यह सब लेखक के विचारशील होने का ही परिणाम है। इसी के कारण वह अपनी बात निर्भीकता और स्पष्टता से कह सका है।

(ख) ***अनुभूति तत्व –*** किसी भी निबंध में प्रौढ़ता, गम्भीरता, परिपुष्टता आदि का समावेश अनुभूति से ही होता है। लेखक अपने अनुभवों को ही शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इन अनुभवों का संबंध उस के आस–पास के जीवन से रहता है। 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में भी लेखक ने तत्कालीन समाज में व्याप्त ब्रिटिश सरकार के दमन–चक्र को बहुत नज़दीक से देखा–परखा था। जिस कारण वह अपने देशवासियों की दयनीय दशा देख कर व्यथित हो उठता है और ब्रिटिश साम्राज्य के तलवे चाटने वाले राजा–महाराजाओं का इस प्रकार वर्णन करता है, ''आप के स्वागत के लिए कोड़ियों राजा, रईस, बम्बई दौड़े गये और जहाज से उतरते ही उन्होंने आप का स्वागत करके अपने भाग्य को धन्य समझा। कितने ही बधाई देने कलकत्ते पहुँचे और कितने ही चले आ रहे हैं।'' अपने अनुभवों के आधार पर ही वे भारतीय जनता की दयनीय दशा का सजीव वर्णन कर सके हैं।

(ग) ***कल्पना तत्व –*** प्रत्येक रचनाकार किसी भी रचना से पूर्व अपने अनुभवों को कल्पना के माध्यम से सजाकर मूर्तरूप प्रदान करता है। 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में भी लेखक ने ब्रिटिश शासन में भारतीय जनता के दमन के अनुभवों को अपनी कल्पना के माध्यम से सजाया है। ब्रिटिश साम्राज्य की निरंकुशता और अत्याचारी प्रवृत्ति की तुलना रावण के शासन से करते हुए लेखक लिखता है, ''इस धराधाम में अब अंग्रेज़ी प्रताप के आगे कोई उँगली उठाने वाला नहीं हैं इस देश में एक महाप्रतापी राजा का वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उस के यहाँ जल भरता था, पवन उसके यहाँ चक्की चलाता था, चाँद–सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे, इत्यादि पर अंग्रेज़ी प्रताप उस से भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेज़ी राज्य का मल्लाह है,

पहाड़ों की उपत्यकायें बैठने के लिए कुर्सी, मूढ़े। बिजली कले चलाने वाली दासी, इत्यादी।' अपनी इस कल्पना शक्ति द्वारा उसने ब्रिटिश सम्राज्य पर यह व्यंग किया है कि उस का अंत भी रावण जैसा ही होगा।

(घ) ***अहं–तत्व*** – निबंधों में लेखक की अपनी प्रकृति के दर्शन अंह–तत्त्व के माध्यम से ही होते हैं। 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में लेखक ने अत्यन्त निर्भीकता, स्वच्छंदता एवं ईमानदारी से अपने विचार व्यक्त किए हैं। अंग्रेज़ी साम्राज्य की विस्तारवादिता का वह स्पष्ट वर्णन इन शब्दों में करता है – ''आप के हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बर्फ पिघलती है, फारिस की खाड़ी का जल सुख जाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म करती है। जल, स्थल, वायु और आकाश मण्डल में सर्वत्र आपकी विजय है।'' इस निडरता के कारण वह लॉर्ड कर्ज़न की ब्रिटिश साम्राज्य में पहुंच का वर्णन करते हुए उन्हें कहता है 'अब यह विचारना आप ही के जिम्मे है कि इस देश की प्रजा के साथ आप का क्या कर्त्तव्य है। कहिये क्या पसन्द है? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना?''

(ड.) ***भाषा–शैली*** – 'पीछे मत फेंकिये' एक व्यंग्यात्मक निबंध है जिसमें लेखक ने विषयानुकूल आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए कहीं–कहीं तत्सम प्रधान शब्दावली का भी प्रयोग किया है। कुछ स्थलों पर इन की भाषा में उग्रता भी आ जाती है। जैसे– 'हजारों साल से यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ–पचास साल गिरती चली जाये? इसके गिरने से बड़े से बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकों की यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है।' इन की शैली सर्वत्र व्यंग्यात्मक है जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सराकर की दमनकारी नीति पर कटाक्ष किए हैं। जैसे भारत के चापलूसी राजा–महाराजाओं का यह वर्णन, ''भारत के राजा अब आप के हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार लगाकर सलाम कराईये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाईये, चाहे कलकत्ते बुलाईये, जो चाहे सो कीजिए, वह हाज़िर हैं।'' उनके निबंधों में सर्वत्र रोचकता बनी रहती है तथा समस्त भावों को पूर्णता से व्यक्त किया जाता है। इन के निबंध आकार में संक्षिप्त होते हैं परन्तु अपनी बात पूरी तरह से कह देते हैं।

अतः कह सकते हैं कि बाबू बाल मुकुन्द गुप्त का निबंध 'पीछे मत फेंकिये' निबंध कला की दृष्टि से एक सफल तथा श्रेष्ठ निबन्ध है।

प्र०4 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित हुआ है– स्पष्ट कीजिए?

उत्तरः बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित निबंध 'पीछे मत फेंकिये' एक व्यंग्यात्मक निबंध है जिसमें लेखक ने अंग्रेज़ी शासन की भारतीयों की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष करते हुए राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित किया हैं इस निबंध में लेखक ने सर्वप्रथम उन भारतीय राजाओं पर व्यंग्य किया है जो ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में प्रतिनिधि बन कर आए गवर्नर–जनरल लॉर्ड कर्ज़न की चापलूसी करने में लगे हुए हैं। लेखक के अनुसार लॉर्ड कर्ज़न के स्वागत के लिए कोड़ियों राजा, रईस बम्बई दौड़े गये और जहाज से उतरते ही उन्होंने आप का स्वागत करके अपने भाग्य को धन्य समझा। कितने ही बधाई देने कलकत्ते पहुंचे और कितने और चले आ रहे हैं।... भारत के राजा अब आप के हुक्म के बन्दे हैं विलायत भिजवाईये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिए, वह हाज़िर हैं।'' इन राजाओं की अपेक्षा लेखक उन

राजाओं को अच्छा समझता है जिन्होंने जुलाई सन् 1805 ई० में दूसरी बार भारत का गर्वनर जनरल बनकर आये लॉर्ड कार्नवालिस का मुकाबला किया था। हुल्कर और सिन्धियाँ के राजाओं ने उसके सामने घुटने नहीं टेके थे। इस प्रकार के तुलनात्मक विवरण से वह देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहता है।

लेखक ने भारत की प्राचीन गौरवशाली परम्परा का उल्लेख करते हुए भी राष्ट्रीय चेतना जगाने का प्रयास किया है। उस का मानना है कि हज़ार वर्षों से परतंत्रता की पीड़ा सहन करके भारतवासियों ने अपना अस्तित्व बचा कर रखा हुआ है। इसलिए वे लिखते हैं, ''जिस जाति से पुरानी कोई जाति उस धराधाम पर मौजूद नहीं, जो हजार साल से अधिक की घोर पराधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्या की आलोचना करके विद्वान और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं। जिसने सदियों तक इस पृथिवी पर अखण्ड शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्व का प्रचार किया, वह जाति क्या पीछे हटाने और धूल में मिला देने योग्य है?'' लेखक का यह कथन निर्जीव में भी प्राण फूंक देता है और ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों से त्रस्त भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाने में सफल हुआ है।

लेखक को भारतवासियों की क्षमता में पूर्णविश्वास है। वह मानता है कि भारतवासी सभी कार्य सम्पूर्ण कुशलता से कर सकते हैं। लेखक को लॉर्ड कर्ज़न का यह निर्णय उचित नहीं प्रतीत होता जो वह अनेक पदों से भारतीयों को हटा कर अंग्रेज़ों को नियुक्त कर देता है। इसलिए वह लॉर्ड कर्ज़न को कहता है कि ''आज जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समाई की भारतवासी बहुत से काम करने योग्य नहीं ओर उनको आप के सजातीय ही कर सकते हैं। आप परीक्षा करके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊँचे से ऊँचे कार्यों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं। श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, कार्य में, वक्तृता में, सहिष्णुता में, किसी बात में इस देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं।'' इस से भी लेखक राष्ट्रीय चेतना जगाने में सफल हुआ है क्योंकि वह भारतीयों के गुणों का वर्णन करने में स्वयं को समर्थ पाता है। उसे तो यह भी विश्वास है कि ''एक दो गुण भारतीयों में ऐसे हैं कि संसार भर में किसी जाति के लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानी फारसी पढ़कर ठीक फारसी वालों की भांति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं अंग्रेज़ी बोलने में वह अंग्रेज़ों की पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठतालू को अंग्रेज़ों के सदृश्य बना सकते हैं। पर एक भी अंग्रेज़ ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्तानियों की भांति साफ हिन्दी बोल सकते हैं। किसी बात में हिन्दुस्तानी पीछे रहने वाले नहीं है।'' इस प्रकार देशवासियों की गौरवगाथा कह कर लेखक देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहता है।

लेखक के मन में अपने देश के प्रति प्रेम है इसी कारण वह देश की जनता की दयनीय दशा सहन नहीं कर सकता। इसी कारण वह लॉर्ड कर्ज़न से कहता है कि एक सौ साल में अंग्रेज़ी राज्य और अंग्रेज़ी प्रताप की तो उतनी उन्नति हो गयी है परन्तु उसी प्रतापी ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत का अस्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है। वह उस स्थिति को उचित नहीं मानता और चाहता है कि लॉर्ड कर्ज़न के भारत में अभी भी दो साल बाकी हैं इसलिए इस समय में वे जो चाहें कर सकते हैं चाहें तो उस देश की तीस करोड़ प्रजा को अपनी अनुरक्त बना सकते हैं। और इस देश के वैसरायों में अपना नाम छोड़ सकते हैं। इसके लिए उन्हें भारतवासियों की दयनीय दशा को सुधारना होगा इसलिए लेखक उन्हें

सम्बोधित करते हुए कहता है कि अब यह विचारना आप ही के जिम्मे है कि इस देश की प्रजा के साथ आपका क्या कर्त्तव्य हैं हजार साल से यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ–पचास साल गिरती चली जाय? उसके गिरने में बड़े से बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकों की यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है! किन्तु उसके उठाने और सम्भालने में जो लाभ हैं, उसकी तुलना नहीं हो सकती। इतिहास में सदा नाम रहेगा कि अंग्रेज़ों ने एक गिरी जाति के तीस करोड़ आदमियों को उठाया था। माई लार्ड! दोनों में जो पसन्द हो, वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसंद है? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना?'' लेखक की स्पष्टवादिता इसी ओर संकेत करती है कि वह राष्ट्र प्रेम के लिए किसी भी परिणाम की चिन्ता किए बिना गवर्नर जनरल को भी खुले दिल से अपने मन की बात कहने में झिझकता नहीं है। वह चापलूसी करने के स्थान पर निडरता पूर्वक अपने देशवासियों के हित की बात कहने में गौरव का अनुभव करता है और यह सब यही सिद्ध करता है कि बाबू बाल मुकुन्द गुप्त राष्ट्रीय भावना से युक्त साहित्यकार थे तथा वे तत्कालीन भारतवासियों में अपनी लेखनी के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते थे।

प्र०5 'पीछे मत फेंकिये' निबंध के आधार पर बाल मुकुन्द गुप्त की व्यंग्यशैली और भाषा पर प्रकाश डालिए?

उत्तरः साहित्यकार अपनी भावनाओं को भाषा के माध्यम से रोचक शैली में प्रस्तुत करता है। बाबू बाल मुकुन्द गुप्त प्रारंभ में उर्दू में लिखते थे। वे उर्दू के ज़माना, कोहेनूर, भारत–प्रलाप आदि उर्दू के पात्रों के सम्पादक भी रह चुके थे। पंडित मदन मोहन मालवीय की प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया था। इस कारण इन की भाषा में उर्दू–फारसी के शब्दों का भी पर्याप्त होता है। 'पीछे मत फेंकिये' इन का एक व्यंग्यात्मक निबंध है जिसमें उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष किया है। इस निबंध की भाषा–शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***भाषा*** **–** बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, बंगला, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के भी ज्ञाता थे। इन्होंने अपनी रचनायें खड़ी बोली हिन्दी में लिखी हैं। इन की हिंदी से प्रभावित होकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि ''अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिख सकता था – बाल मुकुन्द गुप्त।'' उन्होंने 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में भी इसी खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया है जिस में तत्सम, तद्भव तथा देशी–विदेशी शब्दों का सहजरूप से प्रयोग किया गया है। जैसे – ''अब यह विचारना आप ही के जिम्मे है कि इस देश की प्रजा के साथ आपका क्या कर्त्तव्य है। हजार साल से यह प्रजा गिरी दशा में है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जाये? इसके गिरने में बड़े से बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकों की यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है!''

अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने मुहावरों का यथास्थान अच्छा प्रयोग किया हैं इससे इनके द्वारा किया गया व्यंग्य भी बौना हो जाता है। चक्कर में डालना, चकाचौंध हो जाना, कसर रहना, मुँह ताकना, हैसियत खोना, मिट्टी में मिट्टी मिलना, डंका बजना आदि मुहावरों के प्रयोग इस निबंध में देखे जा सकते हैं। जैसे– ''इस समय भगवान ने इसे एक और जाति के हाथ में अर्पन किया है, जिसकी बुद्धि, विद्या और प्रताप का संसार भी में डंका बज रहा है।

इसकी भाषा सरस, सहज और प्रवाहमयी है जिससे विषय–वस्तु के प्रतिपादन में क्रमबद्धता बनी रहती है तथा पाठक पढ़ने में डूब जाता है। जैसे– ''संसार में अब अंग्रेज़ी प्रताप अखण्ड है। भारत के राजा अब आप के हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार लगाकर सलाम कराईये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलाइये, जो चाहे सो कीजिए। वह हाज़िर है।'' इन के कथनों में वचन–वक्रता से व्यंग्म सजीव हो उठता है जैसे – ''समुद्र अंग्रेज़ी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकायें बैठने के लिए कुर्सी, मूढ़े। बिजली कलें चलाने वाली दासी!''

इस प्रकार कह सकते हैं कि इन की भाषा में ही व्यंग्य की अपार शक्ति विद्यमान रहती है जिसे वे लक्षणा तथा व्यंजन शब्द शक्तियों द्वारा व्यक्त करते हैं।

(ख) ***शैली*** **–** बाबू बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा रचित निबंध 'पीछे मत फेंकिये' एक व्यंग्य–प्रधान निबंध है जिस में लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस निबंध में अत्यंत शालीनता के साथ तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में प्रतिनिधि गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न को सम्बोधित करते हुए लेखक ने जहाँ भारतीय जनता की दयनीय दशा का वर्णन किया है वहीं लॉर्ड कर्ज़न को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि वह विगत हजार वर्षों से गिरी दशा में रहने वाली भारतीय प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करे कि इतिहास में अंग्रेज़ों का नाम इस कारण अमर हो जाए कि उन्होंने एक गिरी हुई जाति के तीस करोड़ लोगों को ऊपर उठाया था। इसके लिए वे एक ओर भारत के चापलूसों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं, ''आपके स्वागत के लिए कोड़ियों राजा, रईस बम्बई दौड़े गए और जहाज से उतरते ही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्य को धन्य समझा।'' तो दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य की विस्तारवादी नीतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए वे लिखते हैं, ''इस धराधाम में अब अंग्रेजी प्रताप के आगे कोई उँगली उठानेवाला नहीं है। इस देश में एक महाप्रतापी राजा का वर्णन इस प्रकार किया जाता तथा कि इन्द्र उसके यहाँ रोशनी करते थे, इत्यादि।'' इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य की रावण से तुलना करके लेखक रावण के समान ही ब्रिटिश साम्राज्य के अन्त की कामना करता है।

लेखक की व्यंग्यात्मक शैली में वचन–वक्रता के चमत्कार सर्वत्र देखे जा सकते हैं ब्रिटिश साम्राज्य की अनीतियों की चर्चा करते हुए लेखक ने लिखा है कि ''आश्चर्य है माई लार्ड! एक सौ साल में अंग्रेज़ी राज्य और अंग्रेज़ी प्रताप की तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दें'' अंग्रेज़ी सरकार की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष करते हुए लेखक लिखता है– ''आपके हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बर्फ को पिंघलाती है, फारिस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म्म करती हैं जल, स्थल, वायु और आकाशमण्डल में सर्वत्र आपकी विजय है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पीछे मत फेंकिये' निबंध में बाबू बाल मुकुन्द गुप्त ने तत्कालीन साहित्य जगत में प्रचलित खड़ी बोली हिन्दी के साहित्यिक रूप का प्रयोग किया है जिसमें लोक प्रचलित उर्दू, अंग्रेज़ी, देशज, तद्भव तथा तत्सम शब्दों की प्रधानता है। मुहावरों और लोकोक्तियों का भी लेखक ने सटीक प्रयोग करते हुए

अपनी भाषा को सरस तथा प्रभावशाली बना दिया है। इस की शैली पैने कटाक्षों से युक्त व्यग्यांत्यक है। इनके व्यंग्य पाठक के मर्मस्थल पर प्रहार करने में सक्षम हैं।

श्रद्धा–भक्ति

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

fuc/k dk lkj

'श्रद्धा–भक्त' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित एक मनोभावों से सम्बन्धित विचारात्मक निबंध है, जिसमें लेखक ने श्रद्धा और भक्ति में सम्बन्ध तथा श्रद्धा, भक्ति और प्रेम में अन्तर तथा सम्बन्ध स्थापति करने का सार्थक प्रयास किया है।

(क) ***श्रद्धा*** – श्रद्धा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि जब किसी व्यक्ति में आम व्यक्तियों से अधिक गुण अथवा शक्ति देखकर हमें जो आनन्द का अनुभव होता है, वह श्रद्धा है। जब किसी के प्रति हमारे मन में श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता है तो हम उस व्यक्ति के विशिष्ट गुणों, आदर्शों आदि से प्रभावित हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा हो जाती है उसकी हम निन्दा नहीं सुन सकते, हम सदा उस की उन्नति की कामना करते हैं।

प्रेम और श्रद्धा में अन्तर स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हें कि प्रेम एकान्तिक भाव है जबकि श्रद्धा सामाजिक भाव हैं प्रेम में प्रेमी एकान्त चाहता है ओर प्रिय को केवल अपने तक ही सीमित रखना चाहता है। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता है। इसमें तीन पक्ष श्रद्धेय, श्रद्धेय के गुण तथा श्रद्धालु होते हैं। श्रद्धालु, जिस पर श्रद्धा रखता है, चाहता है कि उस के श्रद्धेय पर अन्य भी श्रद्धा रखें। इस लिए प्रेम को स्वप्न और श्रद्धा को जागरण कहा गया है। क्योंकि प्रेम का आधार कल्पना होती है जबकि श्रद्धा का आधार श्रद्धेय के प्रत्यक्ष कर्म, गुण आदर्श आदि होते हैं। आचार्य शुक्ल श्रद्धा के तीन रूप प्रतिमा, शील और साधन–सम्पत्ति सम्बन्धित मानते हैं।

प्रतिभा–सम्बन्धित श्रद्धा से आचार्य शुक्ल का तात्पर्य श्रद्धेय के प्रति श्रद्धालु की उस श्रद्धा से है जो उसके मन श्रद्धेय की गुणों को देखकर उत्पन्न होती है। इसके लिए श्रद्धेय को विशिष्ट गुणों से युक्त तथा श्रद्धालु को उन गुणों को ग्रहण करने में निपुण होना चाहिए। शील–सम्बन्धित श्रद्धा सदाचारी व्यक्ति के प्रति उत्पन्न होती है तथा साधन–सम्पत्ति से सम्बन्धित श्रद्धा किसी व्यक्ति विशेष की कला, संगीत, बल, विद्वता आदि में निपुणता देखकर होती है। इसी प्रकार की श्रद्धा विभिन्न मानसिक स्थिति के लोगों के विभिन्न प्रकार के गुणों के कारण होती है। जैसे शारीरिक बल को प्रमुखता देनेवाला किसी पहलवान के प्रति ही श्रद्धा रखेगा। परन्तु इस प्रकार की श्रद्धा का दुरूपयोग भी हो सकता है क्योंकि यदि किसी पहलवान पर श्रद्धा रखने वाला उसे खूब खिलाता–पिलाता है तो उस पहलवान का गुण्डापन दूसरों को कष्ट भी पहुंचाया सकता है जिस का दोष पहलवान के प्रति श्रद्धा रखने वाले को भी मिलेगा। इसलिए इन तीनों प्रकार की श्रद्धाओं में से शील सम्बन्धित श्रद्धा जनसाधारण के लिए सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि इस से समाज का भला हो सकता है।

आचार्य शुक्ल मानते हैं कि किसी के प्रति श्रद्धा रखने से व्यक्ति को अपने कार्य सम्पादित करने में सहजता रहती है। इससे आत्मविश्वास और साहस पैदा होती है। भीरूता अथवा चापलूसी का श्रद्धा से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। श्रद्धालु श्रद्धेय को सदा प्रसन्न करना चाहता है परन्तु उससे बदले में कुछ नहीं चाहता है। वह श्रद्धेय को यह भी जाकर नहीं कहता कि मेरी श्रद्धा स्वीकार करें। हम घर बैठे भी किसी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हें। श्रद्धेय समाज की स्थिति या सुख का विधान करता है और श्रद्धालु समाज उस की स्थिति और सुख का विधान करता है।

(ख) ***भक्ति*** **–** आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति माना है। उस के अनुसार जब श्रद्धालु में अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा के साथ–साथ प्रेम भी उत्पन्न हो जाता है तो भक्ति भाव पैदा हो जाता है। इस दशा में भक्त अपने आराध्य को सदा अपने पास देखना चाहता है। वह अपना जीवन उसे समर्पित कर देना चाहता है। वह अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देता है। भक्ति में दैत्यभाव का होना अनिवार्य माना गया है। भक्ति अपने आराध्य के सम्मुख स्वयं को अत्यन्त दीनहीन अवस्था में प्रस्तुत करके उनकी अनुकंपा की कामना करता है। भक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि द्वारा अपने आराध्य का गुणगान करते हुए उनकी समीपता की कामना करता रहता है। भक्ति का उदय भक्त के हृदय में होता है। वह अपने आराध्य के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा और प्रेम में निमग्न होकर निरंतर उन की ओर आकर्षित होता चला जाता है। इस प्रकार साधक के मन में भक्ति भावना पुष्ट हो जाती है।

भक्ति में समाज कल्याण की भावना भी छिपी रहती है। इसलिए भक्त को विभिन्न सिद्धान्तों के चक्कर में फंसकर केवल कर्म सौंदर्य की ओर आकर्षित होना चाहिए क्योंकि सद्वृतियों का अनुसरण करने से ही हम लोक कल्याण भरते हुए अपना जीवन ऊँचा उठा सकते हैं। बुरे के साथ भला, पाप के साथ पुण्य, न्याय के साथ अन्याय आदि भी जुड़े रहते हैं इसलिए कभी भी अनिष्ट से भयभीत नहीं होना चाहिए तथा भगवद् भक्ति में लीन रहना चाहिए। स्वानुभूति द्वारा ही परमानुभूति को प्राप्त किया जा सकता है। भक्त का मन श्रद्धा और प्रेम के कारण ही परमात्मा के विशत रूप की ओर खिंचता है और उसे पूर्ण पुरूष जान कर आनन्दित होता है।

हिन्दू धर्म में कर्म का अधिक महत्व है। राम, कृष्ण ने कर्म के द्वारा ही लोक जीवन में अपना स्थान बनाया था। इसी कारण वे आज भी हमारे उपास्य हैं। कर्म सौंदर्य की उपासना क्षात्र धर्म में ही संभव है। इसमें शक्ति के साथ क्षमा, वैभव के साथ विनय, पराक्रम के साथ रूप माधुर्य, तेज के साथ कोमलता, सुख–भोग के साथ परदुःख कातरता, प्रताप के साथ धर्म–पथ का आलम्बन आदि विद्यमान रहता है। अतः क्षात्र–धर्म का पालन आवश्यक माना गया है। आचार्य शुक्ल मानवों की विभिन्न वृत्तियों में से लोग रक्षा के मार्ग को श्रेष्ठ मानते हैं जो क्षात्र–धर्म का ही मार्ग है।

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम दोनों के मिलन से भक्ति का उदय माना है। उनके अनुसार भक्ति में आस्था मन की दृढ़ता से उत्पन्न होती है। भक्त सदा अपने श्रद्धेय की निकटता पाना चाहता है। और उसे अपने पास देखना चाहता है। श्रद्धा और भक्ति दोनों में ही सात्त्विक गुणों का होना आवश्यक है। मन, वचन और कार्य से सात्त्विक और आदर्श गुण ही श्रद्धा–भक्ति के मूल कारण हैं। इन दोनों में हृदय की सधन अनुभूति ही प्रधान रहती है।

dfBu 'kCnk d vFk

श्रद्धा = आस्था; ईश्वर, धर्म अथवा बड़ों के प्रति आदरपूर्ण और पूज्यभाव। भक्ति = ईश्वर के प्रति श्रद्धा और प्रेम। पोषित = पाला हुआ। व्याघात = बाधा, रूकावट। वांछित = चाहिए। विस्तृत = फैला हुआ। घनत्व = घनापन। आश्रय = सहारा। सत्कर्म = अच्छे कार्य। सद्वृत्तियाँ = अच्छी आदतें। अग्रसर = आगे बढ़ना। क्लेश = कष्ट। अन्तः करण = मन, हृदय। संघटन = बनावट। मध्यस्थ = बिचौलिया । अपेक्षित = इच्छित, चाहा हुआ। अनिर्दिष्ट = अनिश्चित, जिस का वर्णन न किया जा सके। अज्ञात = जिसका पता न हो। अभिलाषी = इच्छुक। मोहित = मुग्ध। परिणत = बदला हुआ, एक से दूसरे रूप में आया हुआ। रूचि = पसंद। आकुल = व्याकुल। सूत्रपात = प्रारम्भ। व्यष्टि रूप = व्यक्तिगत रूप से। श्रद्धालु = श्रद्धा करने वाला। श्रद्धेय = जिस पर श्रद्धा की जाए। समष्टि–रूप = सामाजिक रूप में। उद्भाविका = उत्पन्न होने वाली। मर्मज्ञता = किसी बात का गूढ़ रहस्य जाननेवाला। दोषारोपण = दोष लगाना। दृष्टान्त = उदाहरण। कृत्य = कार्य। साध्य = लक्ष्य। मनोहारिणी = अकर्षक, मन को हरने वाली। अन्वेषक = खोजी, खोज करने वाला, आविष्कार करने वाला। मद्यप = शराबी। पात्रता = योग्यता। परकीय = पराय। स्वकीय = अपना। अभीष्ट = चाहा हुआ, मनपसंद। याचकता = मांगने का भाव। निराकरण = सोच–समझ कर सही निर्णय करना। निष्फल = व्यर्थ, बेकार। प्रादुर्भाव = प्रकट होना, अस्तित्व में आना, उत्पन्न होना। विभक्त = अलग। उपार्जित = पैदा किया हुआ। अर्पित = समर्पित करना। लोक–हितकारिणी = लोगों का कल्याण करने वाली बुद्धि, दृढ़ निश्चयी। सामीप्य = निकटता। अनुभूति = अनुभव करना। प्रवृत्ति = मन का किसी ओर झुकाव, सांसारिक भोग विलास में लीन रहना। निवृत्ति = मुक्ति, सांसारिकता से दूर रहना। मर्कट = बन्दर। मत्स्य = मछली। तुल्य = समान। परिमित = सीमित, कम। सर्वांड्गपूर्ण = सब प्रकार से पूरा उद्यत = तैयार। गर्हित = बुरा, निन्दनीय। अभिलाषा = इच्छा।

lçlx 0;k[;k

1

किसी मनुष्य में जन–साधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देख उस के सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द–पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ–साथ पूज्य बुद्धि का संचार है। यदि हमें निश्चय हो जायेगा कि कोई मनुष्य बड़ा वीर, बड़ा सज्जन बड़ा गुणी, बड़ा दानी, बड़ा विद्वान, बड़ा परोपकारी व बड़ा धर्मात्मा है तो वह हमारे आनन्द का एक विषय हो जायगा। हम उसका नाम आने पर प्रशंसा करने लगेंगे, उसे सामने देख अन्दर से सिर नवायेंगे। (पृ० 53)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति की परिभाषा देते हुए इन दोनों भावों में सम्बन्ध स्थापित किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक श्रद्धा की परिभाषा देते हुए इसकी व्याख्या करता है। लेखक के अनुसार जब हम किसी व्यक्ति में ऐसे खास गुण अथवा शक्ति को देखते हैं जो आम आदमियों में नहीं होते तो उन विशेष गुणों अथवा शक्ति को देखते हैं जो आम आदमियों में नहीं होते तो उन विशेष गुणों अथवा शक्ति को देखकर हमारे मन में एक ऐसा स्थायी तथा बहुत समय तक रहने वाला आनन्द उत्पन्न होता है जो उसके गुणों को बार–बार स्मरण करने से और भी बढ़ता रहता है इसी

आनन्द की भावना को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा में हम आनन्दपूर्वक दूसरे व्यक्ति के गुणों आदि के कारण उसे अपने से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा महान् समझते हैं और इसके साथ ही हमारे मन में उस व्यक्ति के प्रति आदर तथा सम्मान के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के प्रति हमारे मन में पूज्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं वह हमारे लिए श्रद्धेय हो जाता है तथा उस के प्रति हमारे मन में सदा श्रद्धा बनी रहती है तथा उसे देखकर हमें आनन्द की अनुभूति होती हैं जब कभी हमें यह पता चलता है कि कोई व्यक्ति हमसे बहुत बड़ा, बहुत सज्जन, बहुत गुणी, बहुत दानी, बहुत विद्वान, बहुत परोपकारी और बहुत धर्मात्मा है तो हम उस के गुणों के प्रति आकर्षित हो जाते हैं और उसके गुणों को देखकर सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। जबकी उस व्यक्ति का कोई नाम लेगा तो उसका नाम सुनते ही हम उनकी प्रशंसा करने लगेंगे और उसे अपने सामने देखकर सम्मानपूर्वक उन्हें सिर झुकाकर नमस्कार करेंगे।

विशेषः

(क) लेखक ने श्रद्धा को एक आनन्द देने वाला भाव बताया है।

(ख) किसी व्यक्ति के विशेष गुणों को देखकर ही उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक और विश्लेषणात्मक है।

2

प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम स्वाधीन कार्यों पर उतना निर्भर नहीं– कभीं–कभीं किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। किसी की सुन्दर आँख या नाक देखकर उस के प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होगी, प्रीति उत्पन्न हो सकती है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। (पृष्ठ–53)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक ने प्रेम और श्रद्धा में अंतर स्पष्ट किया है। लेखक के अनुसार प्रेम और श्रद्धा में बहुत अन्तर है। प्रेम किसी के कार्य को देखकर उत्पन्न नहीं होता। बल्कि प्रेम तो कभी–कभी किसी के रूप–सौंदर्य के बाह्य आकर्षण से ही हो जाता है। प्रेम होने के समय प्रेम करने वाले के बस में कुछ नहीं होता। प्रेम अपने आप ही किसी को देखने मात्र से ही हो सकता है। इसके विपरीत श्रद्धा में यह स्थिति नहीं होती है। लेखक का विचार है कि किसी के शारीरिक सौन्दर्य अथवा किसी की सुन्दर आँख या नाक देखकर उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा नहीं होती बल्कि उससे प्रेम हो सकता है। प्रेम करते समय हम प्रिय पात्र के गुण–दोषों का विचार नहीं करते। प्रेम करने के लिए तो केवल इतना ही बहुत होता है कि वह व्यक्ति हमें अच्छा लगने लगता है। परन्तु श्रद्धा में यह बात नहीं होती है। श्रद्धा करने के लिए यह ज़रूरी है कि जिस व्यक्ति पर हमें श्रद्धा हो वह व्यक्ति किसी न किसी बात में हम से श्रेष्ठ होता है इसलिए हमारी श्रद्धा का पात्र बन जाता है। उसके गुणों के प्रति हमारा सम्मान ही उसे श्रद्धेय और हमें उस का श्रद्धालु बना देता है।

विशेषः

(क) लेखक ने प्रेम को श्रद्धा से अलग भाव बताया है।

(ख) प्रेम के लिए प्रिय पात्र के प्रति हमारा आकर्षण होना आवश्यक है जबकि श्रद्धा के लिए श्रद्धेय के गुणों के प्रति हमारा सम्मान होना आवश्यक है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली व्याख्यात्मक है।

3

कर्त्ता से बढ़कर कर्म का स्मारक दूसरा नहीं। कर्म की क्षमता प्राप्त करने के लिए बार–बार कर्त्ता ही की ओर आँख उठती है। कर्मों से कर्त्ता की स्थिति को जो मनोहरता प्राप्त हो जाती है उस पर मुग्ध होकर बहुत से प्राणी उन कर्मों की ओर प्रेरित होते हैं। कर्त्ता अपने सत्कर्म द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य की सद्वृत्तियों के आकर्षण का एक शक्ति केन्द्र हो जाता है। जिस समाज में किसी ज्योतिष्मान् शक्ति केन्द्र का उदय होता है उस समाज में भिन्न–भिन्न हृदयों से शुभभावनाएँ मेघ–खण्डों के समान उड़कर तथा एक ओर और एक साथ अग्रसर होने के कारण परस्पर मिलकर, इतनी धनी हो जाती हैं कि उनकी घटा–सी उमड़ पड़ती है और मंगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारे दुःख और क्लेश बह जाते हैं। (पृ० 53–54)

प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य शिखर' में संकलित तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत गई हैं। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक बताता है कि किस प्रकार कोई व्यक्ति अपने शुभ कार्यों के द्वारा समाज के लिए श्रद्धेय बन जाता है। लेखक का विचार है कि कर्म का सबसे बड़ा स्मारक उस कर्म को करने वाला व्यक्ति होता है। कर्म की सफलता उस के कर्त्ता पर ही निर्भर करती है। इसलिए जब हम किसी कर्म को करने के लिए प्रस्तुत होते हैं तो सबसे पहले ध्यान उस व्यक्ति की ओर जाता है जिसने वह कर्म किया होता है। जिन कार्यों को करने से किसी व्यक्ति को जो समाज में उच्च एवं महान् स्थान प्राप्त हो जाता है उसे देखकर ही अन्य बहुत से लोगों को भी इसी प्रकार के सद्कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार वह कार्य करने वाला व्यक्ति अपने अच्छे कार्यों के कारण बहुत से लोगों को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा देने का स्रोत बन जाता है और सब उससे अच्छे कार्य करने की प्रेरणा लेना चाहते हैं। जिस भी समाज में इस प्रकार के सद्कार्य करने वाले महापुरूष का जन्म होता है, उस समाज में अनेक लोगों के हृदय से उस व्यक्ति के लिए अनेक शुभकामनाएँ ऐसी निकल पड़ती हैं जैसे आकाश में अनेक बादलों के टुकड़े एक साथ उड़कर चले आ रहे हो और अपनी घनघोर वर्षा द्वारा संसार के सभी दुःख–दर्दों को मिटा रहे हों। इस प्रकार सद्कार्यों रूपी मेघों से सद्–फलरूपी मंगलवर्षा से संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण हो जाता है।

विशेषः

(क) लेखक कर्त्ता को उस के सद्कार्यों का स्मारक मानता है क्योंकि व्यक्ति अपने सद्कार्यों द्वारा ही महान् तथा पूज्य बनता है।

(ख) लेखक ने सामाजिकों को सद्कार्य करने के लिए प्रेरित किया है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली सूत्रात्मक और विवेचनात्मक है।

4

हमारे अन्तःकरण में प्रिय के आदर्श रूप का संघटन उसके शरीर या व्यक्तिमात्र के आश्रय से हो सकता है पर श्रद्धेय के आदर्श रूप का संघटन उस के फैलाये हुए कर्म–तंतु के उपादान से होता है। प्रिय का चिन्तन हम आँख मूंदे हुए, संसार को भुलाकर करते हैं, पर श्रद्धेय का चिन्तन हम आँख खोले हुए, संसार का कुछ अंश सामने रख कर करते हैं। यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं, पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। (पृ० 54)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है। इस निबन्ध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक ने श्रद्धा और प्रेम के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखता है कि किसी का शारीरिक सौंदर्य अथवा व्यक्तित्व, हमारे मन में विद्यमान प्रिय की आदर्श कल्पना के अनुरूप होने पर हमें उस व्यक्ति से प्रेम करने के लिए प्रेरित कर सकता है परन्तु किसी के प्रति श्रद्धा हमें उस व्यक्ति में विशिष्ट गुणों तथा उस के श्रेष्ठ कार्यों को देखकर ही होती है। प्रिय के विषय में चिन्तन हम आँख बंद कर के तथा सारे सांसारिक कार्यकलापों को भुलाकर करते हैं परन्तु श्रद्धेय के बारे में चिन्तन हम संसार का कल्याण का सोचकर तथा खुली आँखों से करते हैं। लेखक प्रेम को स्वप्न और श्रद्धा को जागरण मानता है। प्रेमी कल्पना लोक में विचरण करता रहता है परन्तु श्रद्धालु समाज की यथार्थ भूमि पर रहता है। प्रेम में स्वार्थ का भाव होता है इसलिए प्रेमी प्रिय को संसार से अलग करके केवल अपने तक सीमित रखना चाहता है। इसलिए प्रेम में केवल दो पक्ष प्रिय और प्रेमी होते हैं जबकि श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं। प्रेम में किसी की मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं होती परन्तु श्रद्धा में मध्यस्थ की आवश्यकता होती है। श्रद्धा में श्रद्धालु को श्रद्धेय से जोड़ने का कार्य श्रद्धेय के गुण करते हैं। इसलिए श्रद्धा में तीन पक्ष श्रद्धेय, श्रद्धेय के गुण तथा श्रद्धालु होते हैं।

विशेषः

(क) लेखक ने प्रेम में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता अनुभव नहीं की है जबकि श्रद्धा में श्रद्धेय के गुण अथवा कर्म मध्यस्थ का कार्य करते हैं।

(ख) प्रेमी निरंतर कल्पना लोक में खोया रहता है अतः प्रेम को स्वप्न कहा गया है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली सूत्रात्मक एवं विचार प्रधान है।

5

श्रद्धा एक सामाजिक भाव है, इससे अपनी श्रद्धा के बदले में हम श्रद्धेय से अपने लिए कोई बात नहीं चाहते। श्रद्धा धारण करते हुए हम अपने को उस समाज में समझते हैं जिसके किसी अंश पर चाहे हम व्यक्ति रूप में उसके अन्तर्गत न भी हों – जानबूझकर उसने कोई शुभ प्रभाव डाला। श्रद्धा स्वयं ऐसे कार्यों के प्रतिकार में होती है जिनका शुभ प्रभाव अकेले हम पर नहीं बल्कि सारे मनुष्य समाज पर पड़ सकता है। श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है जिसे हम केवल समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रकट करते हैं। (पृ० 55)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक श्रद्धा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखता है कि श्रद्धा एक सामाजिक भाव है अर्थात् श्रद्धा का प्रभाव किसी एक व्यक्ति पर नहीं बल्कि पूरे समाज पर पड़ता है। इसलिए किसी के प्रति अपनी श्रद्धा के बदले उस श्रद्धेय से अपने लिए कुछ नहीं मांगते हैं श्रद्धा में व्यक्तिगत स्वार्थ पूरा करने की भावना नहीं होती है। जब किसी के प्रति हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है तो इस का मुख्य कारण यह होता है कि हम स्वयं को उस समाज का ही एक भाग मान कर चलते हैं। जिस पर उस व्यक्ति ने कुछ अच्छा प्रभाव डाला है अथवा समाज के लिए कुछ अच्छा किया है जिस के प्रति हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई है अथवा जो हमारा श्रद्धेय है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस व्यक्ति ने हमारे लिए व्यक्तिगत रूप से कोई कार्य किया हो। किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उस व्यक्ति के समाज के प्रति किए गए शुभ कार्यों के प्रति होती है। उस व्यक्ति के इन शुभ कार्यों का प्रभाव सिर्फ हम पर ही नहीं बल्कि सारे समाज पर पड़ता है। इसलिए श्रद्धा एक ऐसी भावना है जो श्रद्धेय द्वारा किए गए शुभ कार्यों के बदले हम उसका आभार व्यक्त करने के लिए समाज के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त करते हैं।

विशेषः

(क) लेखक ने श्रद्धा को एक सामाजिक भाव बता कर उसे समष्टिगत भाव बताया है।

(ख) श्रद्धा श्रद्धेय के समाज के लिए किए गए शुभ कार्यों से उसके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए उत्पन्न होती है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

6

श्रद्धा का मूल–तत्त्व है दूसरे का महत्त्व स्वीकार अतः जिनकी स्वार्थबद्ध दृष्टि अपने से आगे नहीं जा सकती अथवा अभिमान के कारण जिन्हें अपनी ही बड़ाई के अनुभव की लत लग गई है उनकी इतनी समाई नहीं कि वे श्रद्धा ऐसे पवित्र भाव को धारण करें। स्वार्थियों और अभिमानियों के हृदय में श्रद्धा नहीं टिक सकती। उसका अन्तःकरण इतना संकुचित और मलिन होता है कि वे दूसरों की कृति का यथार्थ मूल्य नहीं परख सकते । (पृ० 56)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक यह स्पष्ट करता है कि किसी व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा का उत्पन्न होना माना जाता है। इस प्रकार श्रद्धा के मूल में यह भाव रहता है कि हम श्रद्धेय के कार्यों का महत्व स्वीकार कर लें। इस कारण वह लोग जो केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते हैं या अपने अहंकार में इतने डूबे रहते हैं कि वे अपने बड़प्पन के सम्मुख दूसरे की अच्छाई, गुणों तथा शुभ कार्यों को कोई महत्व नहीं देते तो उनके मन में कभी किसी के प्रति श्रद्धा जैसा पवित्र भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता है। लेखक की मान्यता है कि जो लोग स्वार्थी और अभिमानी हैं उनके मन में श्रद्धा का

भाव कभी भी नहीं आ सकता। स्वार्थ और अहंकार के कारण उन का मन इतना अधिक संकुचित और तुच्छ भावों से युक्त होता है कि वे दूसरे व्यक्ति द्वारा किए गए अच्छे कार्यों और उसके गुणों का उचित रूप से मूल्यांकन भी नहीं कर पाता।

विशेषः

(क) श्रद्धालु को श्रद्धेय का महत्व स्वीकार करना पड़ता है।

(ख) अभिमानी तथा स्वार्थी व्यक्ति कभी भी श्रद्धावान नहीं हो सकता।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

7

दूसरों की श्रद्धा संसार में एक अत्यन्त वांछनीय वस्तु है, क्योंकि वह एक प्रकार का ऐसा परकीय निश्चय या विश्वास है जिसके सहारे स्वकीय कार्य सुगम होता है– जीवन की कठिनता कम होती है। जिस पर लोगों की अश्रद्धा होती है– उसके लिए व्यवहार के सब सीधे और सुगम मार्ग बन्द हो जाते हैं – उसे या तो काँटों पर या ढाई कोस नौ दिन में चलना पड़ता है। (पृष्ठ 60)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है, जिसमें श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक सामाजिक जीवन में श्रद्धा का महत्त्व स्पष्ट करते हुए लिखता है कि संसार में जीवन यापन करने के लिए श्रद्धा का होना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे दूसरे में एक ऐसा विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि अनेक कार्य सहजता से किए जा सकते हैं। श्रद्धेय के गुण ही दूसरों के मन में श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा जाग्रत करते हैं। इसलिए उनके जीवन की कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। और उनका प्रत्येक कार्य सहजता से पूरा हो जाता है। उनके शत्रु भी शत्रुता त्याग देते हैं। इसके विपरीत जिन पर लोगों की श्रद्धा नहीं होती उनके लिए सरल से सरल मार्ग भी कठिन हो जाते हैं और कोई उनकी सहायता भी नहीं करता है। उसे निरंतर कठिनाइयों का सामना करते हुए अनेक विध्न–बाधाओं के बीच दुर्गम पथ पर चलना पड़ता है और उसका जीवन दूभर हो जाता है। उसे लगता है मानो वह कांटों पर चल रहा है अथवा नौ दिन में ढाई कोस ही चल पाया है। उस का कोई भी कार्य सफल नहीं होता है।

विशेषः

(क) श्रद्धेय श्रद्धा प्राप्त कर निरंतर जनकल्याण के कार्य करता रहता है।

(ख) जिसे श्रद्धा नहीं मिलती वह सदा असफल रहता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा लोकोक्तियों से युक्त है। शैली विचारात्मक है।

8

श्रद्धा–वश दान में उपयोगिता का तत्व छिपा हुआ है। स्मृतियों में श्रद्धा–वशदान पर बड़ा ज़ोर दिया गया है और ऐसे दान के विषय में पात्रापात्र का विचार भी खूब किया गया है। विद्या–दान में रत

विद्वानों को, परोपकार में रत कर्म–वीरों को, मानव–ज्ञान की वृद्धि में तत्पर तत्त्वान्वेषकों को जो अभाव हो उसे हमें समाज की भूख समझनी चाहिए। इन्हें जो कुछ हम श्रद्धावश देते हैं वह ठीक समाज के दुरूस्त पेट में जाता है, जहाँ से रस–रूप में उसका संचार अंग–अंग होता हैं (पृष्ठ 63–64)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से अवतरित किया गया हैं इन निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप की व्याख्या की है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक दान कैसे व्यक्ति को और किस प्रकार देना चाहिए विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखता है कि जब हम किसी को श्रद्धा–भाव से दान देते हैं तो वह दान–देना बहुत सफल होता है। प्राचीन स्मृतियों आदि ग्रन्थों में भी श्रद्धा से दिए गए दान का महत्व स्वीकार किया गया है और साथ यह भी बताया गया है कि दान देते समय यह भी विचार करना चाहिए कि जिसे हम दान दे रहे हैं वह दान लेने योग्य उचित व्यक्ति है भी या नहीं? उसी व्यक्ति को दान देना चाहिए जो दान लेने योग्य हो। कुपात्र को दान नहीं देना चाहिए। यदि हम विद्या–दान करने में लगे हुए विद्वानों, परोपकार कार्य करने में लगे हुए पुरूषार्थियों, मानव को ईश्वर के सम्बन्ध में उपदेश देने वालों को अभावग्रस्त देखकर दान देते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान समाज कल्याण के काम आता है। ऐसे लोगों को हम अपनी श्रद्धा के अनुसार जो कुछ भी दान देते हैं वह समाज सुधार के काम आता है और उस से समाज के विभिन्न वर्गों की भलाई होती है।

विशेषः

(क) लेखक श्रद्धा से दिए हुए दान को उपयोगी मानता है।

(ख) दान देते समय दान देने वाले की पात्रता का विचार करके सुपात्र को दान देना चाहिए, कुपात्र को दान नहीं देना चाहिए।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

9

श्रद्धा और प्रेम के योग्य का नाम भक्ति है। जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा–भाजन के सामीप्य–लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय की दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि से आनन्द का अनुभव होने लगे– जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति–रस का संचार समझना चाहिए। (पृष्ठ 64)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक भक्ति की परिभाषा देते हुए लिखता है कि जब श्रद्धा–भाव के साथ प्रेम भी जुड़ जाता है तो दोनों से मिलकर उत्पन्न भाव को भक्ति कहते हैं। श्रद्धालु की श्रद्धेय के प्रति भक्ति–भावना का उत्पन्न होना है। उस दशा में श्रद्धालु के मन में अपने श्रद्धेय को पूजन का भाव बहुत अधिक बढ़ जाता है और वह उस के प्रति भक्ति–भावना का उत्पन्न होना है। उस दशा में श्रद्धालु के मन में अपने श्रद्धेय को पूजने का भाव बहुत अधिक बढ़ जाता है। और वह उस के प्रति

श्रद्धा रखते हुए उसके निकट रहने की इच्छा भी करने लगता है। वह श्रद्धेय के विभिन्न रूपों के दर्शन करने की भी इच्छा करने लगता है। इस दशा को श्रद्धेय के प्रति उत्पन्न भक्ति कहा जाता है। जब हम अपने श्रद्धेय के दर्शनों, उसके बारे में सुनने, उन के नाम का कीर्तन करने, उन का ध्यान करने आदि से आनन्द का अनुभव करने लगते हैं और उन से सम्बन्धित श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त भी उनसे सम्बन्धी अन्य बातों की ओर भी हमारा मन खिंच जाता है तो समझना चाहिए कि हमारे मन में उनके प्रति भक्ति–रस का संचार हो गया है।

विशेषः

(क) लेखक ने श्रद्धा और प्रेम के योग से उत्पन्न भाव को भक्ति कहा है।

(ख) भक्ति भाव में श्रद्धालु श्रद्धेय से निकटता चाहने लगता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली सूत्रात्मक है।

10

व्यक्ति–सम्बन्ध हीन सिद्धान्त–मार्ग निश्चय निश्चयात्मिक बुद्धि को चाहे व्यक्त हो, पर प्रवर्त्तक मन को अव्यक्त रहते हैं। वे मनोरंजनकारी तभी लगते हैं, जब किसी व्यक्ति के जीवन–क्रम के रूप में देखे जाते हैं। शील की विभूतियाँ अनन्तरूपों में दिखाई पड़ती हैं। मनुष्य जाति ने जब से होश संभाला, तब से वह अनन्त रूपों को महात्माओं के आचरणों तथा आख्यानों और चरित्र–सम्बन्धी पुस्तकों में देखती चली आ रही है। जब उन रूपों पर मनुष्य मोहित होता है, तब सात्विकशील के और आप से आप आकर्षित होता है। (पृष्ट 66)

प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत की गयी हैं। इस निबंध में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक अव्यवहारिक सिद्धांतों की व्यर्थता तथा उन्हें व्यावहारिक तथा सार्थकरूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए लिखता है कि उन सिद्धान्तों या उपदेशों का जीवन में कोई महत्व नहीं होता है जो किसी व्यक्ति को उस के व्यावहारिक जीवन में कोई सहायता नहीं देते हैं। इसलिए कहा जाता है कि अव्यावहारिक सिद्धान्त देखने में चाहे अच्छे लगें परन्तु वे व्यावहारिक और जीवनोपयोगी न होने के कारण ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं। इसलिए सिद्धान्त वाक्य और उपदेश तभी अच्छे लगते हैं जब वे मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में भी सहायक सिद्ध होते हैं, तभी लोग इनसे प्रभावित होकर इन का महत्त्व समझ सकते हैं। शील और सदाचार के ये सिद्धांत अनेक रूपों में दिखाई देते हैं। ये सिद्धान्त और आदर्श व्यक्ति के जीवन क्रम से सम्बन्धित होने के कारण प्रभावपूर्ण और मनोरम लगते हैं। मनुष्य ने जब से चेतना प्राप्त की है तब से वह उन आदर्शों एवं सिद्धान्तों को संत–महात्माओं के उपदेशों तथा लिखितरूप में सुनता–पढ़ता आ रहा है। वह अपने महापुरूषों के चरित्र में इन सिद्धान्तों को साक्षात रूप में देखकर इन के प्रति आकर्षित होता है तो वह स्वयं इन अच्छे सिद्धान्तों और आदर्शों को अपने जीवन में भी अपनाने लगता है।

विशेषः

(क) लेखक ने अव्यावहारिक सिद्धान्तों तथा आदर्शों को समाज के लिए उचित नहीं माना है।

(ख) समाज व्यावहारिक सिद्धान्तों तथा आदर्शों को अपनाता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

11

अपने व्यवहार–पथ में आश्रय–प्राप्ति के निमित मनुष्य के लिए ईश्वर की स्वानुरूप भावना ही सम्भव है। स्वानुभूति द्वारा ही वह उस परमानुभूति की धारणा कर सकता है। उसीसे मातृ हरि ने 'स्वानुभूत्यैक मानव' कहकर नमस्कार किया है। यदि चिन्मय में अपनी इतनी अनुभूति का भी निश्चय मनुष्य को न हो तो वह प्रार्थना आदि क्यों करने जाये? (पृष्ठ 69)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' में से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप निरूपण किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक स्पष्ट करता है कि मनुष्य ईश्वर की भक्ति क्यों करता है? लेखक के अनुसार संसार का प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए किसी ऐसे महान–व्यक्ति की शरण में जाना चाहता है, जो उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आश्रय दे सके। इसी सहारे को प्राप्त करने के लिए मनुष्य अपनी भावनाओं और अनुभूतियों के अनुसार ईश्वर के स्वरूप की कल्पना करके उनकी अराधना करता है। अपनी अनुभूतियों के द्वारा वह उस परम–अनुभूति अर्थात् परमात्मा की कल्पना करता है और उसे स्वयं से अधिक श्रेष्ठ, पूर्ण, सामर्थ्यवान आदि मानकर उसकी पूजा–अर्चना करता है। इसी कारण मातृहरि के रस कथन को लेखक ने स्वीकार किया है कि अपनी अनुभूति के द्वारा ही हम उस परमात्मा के स्वरूप को जान सकते हैं। अपनी कल्पना के आलोक में ही मनुष्य उस परमात्मा को देखकर वह उसकी पूजा करने जाता है।

विशेषः

(क) मनुष्य अपने जीवन में सदा सफलता और सुख प्राप्त करने के लिए ही ईश्वर की आराधना करता है।

(ख) ईश्वर के स्वरूप की कल्पना मनुष्य अपनी भावनाओं के अनुरूप करता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

12

संसार से तटस्थ रहकर शान्ति–सुखपूर्वक लोक–व्यवहार सम्बन्धी उपदेश देनेवालों का उतना अधिक महत्व हिन्दू–धर्म में नहीं है जितना संसार के भीतर घुसकर उसके व्यवहारों के बीच सात्विक विभूति की ज्योति जगानेवालों का है। हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गए हैं। अपने जीवन द्वारा कर्म–सौंदर्य संघटित करने वाले ही अवतार कहे गए हैं। कर्म–सौंदर्य के योग से उनके स्वरूप में इतना माधुर्य आ गया है कि हमारा हृदय आप से आप उनकी ओर खींचा पड़ता है। (पृष्ठ 71)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप का निरूपण किया है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक इस बात पर बल देता है कि जो व्यक्ति कर्म करने को प्रमुखता देते हैं वे ही महापुरूष तथा अवतारी पुरूष बन जाते हैं। लेखक का विचार है कि हिन्दू धर्म में संसार से दूर रह कर उपदेश देने वालों की अपेक्षा संसार में रह कर अपने कर्मों, व्यवहारों तथा कार्यों के अनुरूप व्यावहारिक उपदेश देने वालों का महत्व बहुत अधिक है। इस प्रकार के महापुरूषों को जनता श्रद्धा और भक्ति भाव से पूजती है और इन्हीं उपदेशकों को अवतारी पुरूष भी माना जाता है। इनके कार्यों तथा आदर्श जीवन के कारण इनका व्यक्तित्व सौंदर्य और माधुर्य से इतना अधिक परिपूर्ण हो जाता है कि इन्हें देखनेवाले का हृदय अपने आप ही इन की ओर आकर्षित होने लगता है।

विशेषः

(क) अपने महान कार्यों तथा सद्व्यवहार द्वारा ही कोई व्यक्ति महापुरूष बन जाता है और उसे ही समाज अपनी श्रद्धा और भक्ति भेंट करता है।

(ख) जो व्यक्ति जीवन–संघर्षों का सामना करते हुए उपदेश देता है उसके उपदेशों को समाज ग्रहण करता है किन्तु जीवन–संघर्षों से पलायन करने वाले के उपदेशों को समाज महत्त्व नहीं देता है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

vu|'khyuh d: ç'uk d: mÙkj

प्र०1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **जीवनः** हिन्दी साहित्य इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक एवं निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में सन् 1884 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित चन्द्रबली शुक्ल था। अपनी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कुछ समय तक इन्होंने मिर्ज़ापुर के विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्य किया था। सन् 1908 ई० में उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के 'हिन्दी–शब्द–सागर' के सह सम्पादक के रूप में कार्य किया तथा 'नगरी प्रचारिणी' पत्रिका का सम्पादन भी किया। कुछ समय तक इन्होंने काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी–प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया था। 2 फरवरी, 1941 को इनकी मृत्यु हो गयी थी। आचार्य शुक्ल अत्यन्त सरल तथा सहज व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे श्याम वर्ण, मंझले कद तथा लम्बी–लम्बी मूंछों वाले सामान्य व्यक्तियों जैसे लगते थे। बाहर जाते समय वे पाश्चात्य वेशभूषा अर्थात् कोट, पैण्ट, टाई लगाकर निकलते थे तथा घर में धोती पहनते थे। इस प्रकार उनकी वेशभूषा में भारतीय एवं पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता था। उनकी प्रकृति अत्यन्त गम्भीर थी, परन्तु उनकी रचना धार्मिकता में व्यंग्य–विनोद की झलक भी मिलती है।

साहित्यः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने निबंध, आलोचना, कविता, कहानी, अनुवाद कोश–निर्माण, सम्पादन, इतिहास लेखन आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता का परिचय दिया है। इन की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

कहानी – ग्यारह वर्ष का समय

काव्य – मनोहर छटा आदि, बुद्धचरित (अनुवादित)

नाटक – हास्य विनोद, पृथ्वीराज चौहान

उपन्यास – शशांक (बंगला से अनुवादित)

इतिहास – हिन्दी साहित्य का इतिहास

निबंध – चिन्तामणी (चार भाग); जायसी, तुलसी और सूर पर लिखी भूमिकाएँ।

सम्पादन – हिन्दी शब्द–सागर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, तुलसी ग्रंथावली, जायसी, ग्रंथावली, भ्रमरगीत–सार आदि।

आचार्य शुक्ल के निबंध–साहित्य को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) ***मनोविकार सम्बन्धी निबंध*** – चिन्तामणि, भाग एक में लेखक द्वारा रचित दस मनोविकारों सम्बंधी निबंध प्राप्त होते है, जो भावयामनोविकार, उत्साह, श्रद्धा–भक्ति, करूण, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, कृपा, ईर्ष्या, भय तथा क्रोध हैं। इन निबंधों में जीवन की व्यावहारिक पृष्ठभूमि और मनोवैज्ञानिक आधार पर विभिन्न मनोविकारों की व्याख्या की गई है। ये सभी निबंध लोक जीवन के लिए आदर्श हैं तथा इनमें मनोविज्ञान और नीति का सुन्दर समन्वय हुआ है। इनमें तत्कालीन समस्याओं पर कटाक्ष करते हुए उन समस्याओं को सुलझाने के लिए मौलिक सुझाव भी दिए गए हैं।

(ख) ***समीक्षात्मक निबंध*** – शुक्ल जी के सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी चार निबंध–कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्मक बोध के विविध रूप अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। 'कविता क्या है' में उन्होंने कविता की परिभाषा, लक्षण, प्रयोजन, शक्ति, भाषा, अलंकार, स्वरूप आदि पर विस्तार से विचार किया है।' काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था में यह बताया गया है कि आनन्द की दो अवस्थाएं साधना और सिद्धावस्था होती हैं। इसके साथ ही इस में लोकमंगल के विधान की विधियाँ भी बताई गई हैं। 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' में साधारणीकरण का रस–प्रक्रिया में योगदान स्पष्ट किया गया है। 'रसात्मक बोध के विविध रूप' निबंध में शुक्ल जी ने साहित्य और जीवन के विभिन्न मतों, सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का वर्णन करते हुए उस के स्वरूप और रस की व्याप्ति पर विचार किया है।

व्यावहारिक समीक्षा से सम्बन्धित इन के निबंध भारतेन्दु हरिशचन्द्र तुलसी का भक्ति मार्ग, मानस की धर्म भूमि आदि हैं। इन निबंधों में उन्होंने साहित्यकार की साहित्यिक विशेषताओं के साथ–साथ उसकी धारणाओं, मान्यताओं एवं आदर्शों का भी वर्णन किया है। 'काल में प्राकृतिक दृश्य', 'काव्य में रहस्यवाद', ' काव्य में अभिव्यंजनवाद' आदि निबंधों में उन्होंने काव्य के क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों तथा मतों की समीक्षा की है।

(ग) ***भूमिकाओं के रूप में लिखित निबंध*** – आचार्य शुक्ल ने तुलसी, सूर, जायसी तथा भारतेन्दु से सम्बन्धित ग्रन्थावलियों अथवा रचनाओं के संकलनों की भूमिकाओं के रूप में जो निबंध लिखे हैं उनमें इन साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व की

उन्होंने विस्तृत विवेचना की है। इस भूमिकाओं से इन साहित्यकारों के जीवन और साहित्य का विस्तृत परिचय प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी निबंध साहित्य की अमूल्य निधि तथा इस क्षेत्र के सम्राट हैं।

प्र०2 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध के मूल–भाव को अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तरः 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप का निरूपण करते हुए श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का अन्तर भी स्पष्ट किया है।

लेखक का विचार है कि जब किसी मनुष्य के 'सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा विशेष गुण अथवा शक्ति देखकर उस के प्रति जो आनन्द मिश्रित सुख की अनुभूति होती है उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धालु अपने श्रद्धेय के लोक–कल्याणकारी कार्यों से ही उसकी ओर आकर्षित होकर उसके प्रति श्रद्धावान हो जाता है। वह चाहता है कि उसके समान दूसरे लोग भी उसके श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा व्यक्त करें। इसके विपरीत प्रेम भाव है जिसमें प्रेम प्रिय को केवल अपने तक सीमित रखता है और उसे अपने अतिरिक्त किसी अन्य का प्रिय पात्र नहीं बनने देना चाहता। इस कारण श्रद्धा को जागरण और प्रेम को स्वप्न कहा गया है। श्रद्धा में श्रद्धालु संसार को अपने साथ जोड़ कर श्रद्धेय का चिन्तन करता है परन्तु प्रेम में प्रेमी एकान्त में अपने प्रिय की स्मृतियों में डूब जाता है।

इस कारण लेखक ने श्रद्धा को एक सामाजिक–भाव माना है क्योंकि समाज में किसी व्यक्ति के समाज–कल्याण करने के कार्य ही उसे सामाजिकों की श्रद्धा का पात्र बना देते हैं। इसमें श्रद्धालु श्रद्धेय का महत्व स्वीकार कर लेता है। श्रद्धा प्रतिभा, शील और साधन–सम्पति से सम्बन्धित होती है। किसी व्यक्ति की प्रतिभा अथवा उसके सद्–व्यवहार और साधन–सम्पति सम्पन्न व्यक्तियों से प्रभावित होकर हम उन्हें श्रद्धेय और स्वयं को श्रद्धालु मानने लगते हैं। श्रद्धा के द्वारा जीवन में अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। श्रद्धा केवल सुयोग्य व्यक्ति के प्रति होनी चाहिए, ढोंगी अथवा पाखण्डियों के प्रति श्रद्धा नहीं होनी चाहिए।

भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब श्रद्धालु अपने श्रद्धेय के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते–करते उनके सामीप्य लाभ के लिए व्याकुल हो उठता है तो यह स्थिति भक्ति की होती है। भक्ति में भक्त सदा अपने आराध्य के दर्शनार्थ व्याकुल रहता हैं श्रद्धा किसी व्यक्ति से दूर रहकर भी हम व्यक्त कर सकते हैं परन्तु भक्ति में आराध्य की निकटता की आवश्यकता रहती है। भक्त स्वयं को सदा दीनहीन समझ कर आराध्य की कृपा की कामना करता रहता है। भक्ति भक्त को सदा आदर्श के पथ पर चलने की प्रेरणा देती रहती है। भक्त श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन द्वारा अपने आराध्य के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करता है।

इस प्रकार आचार्य शुक्ल श्रद्धा और भक्ति को मानव के हृदय में स्थित सात्विक भाव मानते हैं। श्रद्धा के द्वारा हम किसी विशिष्ट गुण या शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति का महत्व स्वीकार कर उसका सम्मान करते हैं। श्रद्धेय अपने विशिष्ट और महान कार्यों से ही जन–सामान्य की श्रद्धा का पात्र बनता है। ऐसी स्थिति में वह जनकल्याण के कार्य अच्छी प्रकार से कर सकता

है। इस प्रकार महान करने वाले व्यक्ति ही अपने कार्यों से महापुरूष और फिर अवतारी पुरूष बन जाते हैं और समाज उन की आराधना करने लगती है। यह आराधना ही भक्ति है। भक्ति में श्रद्धा के साथ–साथ प्रेम भी जुड़ जाता है और आराध्य की निकटता की कामना करने लगते हैं। अतः श्रद्धा और भक्ति दोनों ही भावों में हृदय की सघन अनुभूति की प्रधानता होती है।

प्र०3 निबंध कला की दृष्टि से 'श्रद्धा–भक्ति' की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' एक मनोविकारों से सम्बन्धित निबंध है, जिसमें लेखक ने श्रद्धा और भक्ति नामक सात्विक भावों के स्वरूप का निरूपण किया है। इस निबंध की निबंध कला की दृष्टि से प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है।

(क) ***बुद्धितत्व*** – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अधिकांश निबंध विचार–प्रधान हैं। इसलिए इनमें बुद्धि–तत्व की प्रधानता प्राप्त होती है। इस कारण इनके निबंधों में जब विचारों का स्वरूप उपस्थित होता है, तो उनके विचार एक के बाद इस प्रकार से व्यक्त होते हैं कि विचारों की एक शृंखला–सी बन जाती है। जैसे 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में वे पहले श्रद्धा की परिभाषा करते हैं और उस के बाद श्रद्धा के स्वरूप, प्रेम और श्रद्धा में अन्तर, श्रद्धा के तीन भेद, श्रद्धा के विभिन्न उपयोग, श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति बताकर श्रद्धालु और भक्त में अन्तर स्पष्ट करते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए, नवधा भक्ति, आराध्य की कल्पना, क्षात्रधर्म के लोक कल्याणकारी रूप आदि का वर्णन किया है। इस प्रकार सभी विचार–खण्ड एवं शृंखला में बंधे प्रतीत होते हैं। यह बुद्धि–तत्त्व के कारण ही संभव हुआ है।

(ख) ***अनुभूति तत्व*** – आचार्य शुक्ल के निबंधों में अनुभूति की तीव्रता के दर्शन होते हैं। इनके मनोविकार सम्बन्धी निबंधों में अनुभूति की प्रौढ़ता एवं प्रांजलता के दर्शन होते हैं। 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में इस प्रकार के अनेक विचार बिखरे हुए हैं जिनसे लेखक की व्यक्तिगत एंव सामाजिक अनुभूति अत्यन्त कुशलता के साथ व्यक्त हुई है। जैसे ''पाप का फल छिपानेवाला पाप छिपाने वाले से अधिक अपराधी है पर ऐसे बहुत से लोग होते हें जो किसी का घर जलाता है तो कहते हैं कि होम करते जला है। दुराचारियों के जीवन का सामाजिक उद्योग करने के लिए संसार की मर्यादा स्थापित करने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रवृत किया। यदि अधर्म में तत्पर कौरवों का नाश न होता और पांडव जीवन–भर मारे–मारे ही फिरते तो संसार में अन्याय और अधर्म की ऐसी लीक खिंच जाती जो मिटाये न मिटती।'' यह लेखक के प्रौढ़ अनुभूति तत्व का ही उदाहरण।

(ग) ***कल्पना तत्त्व*** – आचार्य शुक्ल ने निबंध–रचना में कल्पना को बहुत महत्त्व दिया है। उनके अनुसार ''जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उस के सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी के 'भावना' और आजकल के लोग 'कल्पना' कहते हैं। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार और भावों के प्रवर्तन के लिए भी भावना या कल्पना अपेक्षित होती है।'' आचार्य शुक्ल ने अपने निबंधों में विविध पदार्थों, व्यापारों और मनोभावों के चित्र प्रस्तुत करने में कल्पना–तत्व का

आश्रय लिया है। जैसे 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में 'भक्ति' की परिभाषा तथा व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं – ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा–भाजन के सामीप्य–लाभ की प्रवृत्ति हो, उस की सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।..... जब श्रद्धेय का उठना–बैठना, चलना, फिरना, हँसना, बोलना, क्रोध करना आदि भी हमें अच्छा लगने लगे तब हम समझ लें कि हम उस के भक्त हो गए।''

(घ) ***अहं–तत्व –*** प्रत्येक निबंधकार अपने निबंध में वैयक्तिकता का समावेश इसी तत्व के माध्यम से करता है। आचार्य शुक्ल के निबंधों में भी उनके व्यक्तित्व की आभा स्पष्ट दिखाई देती है। इससे इनके निबंधों में गम्भीरता, गहनता, गुरुता आदि का समावेश हो गया है। उदाहरण के लिए 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में श्रद्धा और प्रेम का अन्तर स्पष्ट करते हुए वे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं ''प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो।..... प्रिय का चिन्तन हम आँख मूंदे हुए, संसार को भुलाकर, करते हैं, पर श्रद्धा का चिन्तन हम आँख खोले हुए, संसार का कुछ अंश सामने रखकर करते हैं।''

(ड.) ***भाषा–शैली –*** आचार्य शुक्ल ने अपने निबंधों में तत्सम प्रधान भाषा का अधिक प्रयोग किया है। कहीं–कहीं लोकप्रचलित उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इनकी भाषा भावानुरूप तथा प्रवाहमयी है। इन की शैली विचारात्मक है। परन्तु कहीं–कहीं सूत्रात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं। जैसे– ''यदि प्रेम स्वप्न है, तो श्रद्धा जागरण है।'' ''कर्त्ता से बढ़कर कर्म का स्मारक दूसरा नहीं।'' ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'' कहीं–कहीं इन्होंने व्याख्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है जैसे श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है'' कहकर बाद में वे 'भक्ति' की विवेचना करते हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि आचार्य शुक्ल के निबंध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं तथा निबंध के तत्वों के अनुरूप हैं।

प्र०4 श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का अन्तर स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल की चिन्तन दृष्टि को स्पष्ट कीजिए?

उत्तरः श्रद्धा–श्रद्धा एक ऐसा सात्विक गुण है जो किसी व्यक्ति में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक विशेष गुण अथवा शक्ति देखकर तथा उससे प्रभावित होकर दूसरों के मन में उस व्यक्ति के प्रति उत्पन्न होता है। श्रद्धालु श्रद्धेय के प्रति आकर्षित होकर अन्य लोगों को भी अपने श्रद्धेय के प्रति आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। श्रद्धेय के कर्मों से ही श्रद्धालु के मन में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा एक सामाजिक भाव है इसलिए श्रद्धालु के श्रद्धालुओं की संख्या में वृद्धि चाहता है। श्रद्धा में समाज–कल्याण की भावना होती है अतः श्रद्धालु अपने श्रद्धेय के लोकहितकार्यों को देखकर सब को इस तथ्य से अवगत कराता है। श्रद्धा तब उत्पन्न होती है जब हम श्रद्धेय के कार्यों से प्रभावित होते हैं। श्रद्धा में त्याग की भावना होती है।

प्रेम – प्रेम किसी व्यक्ति के प्रति उसके सौंदर्य, बात–चीत का ढंग आदि को देखने मात्र से ही हो जाता है। प्रेम करने के लिए व्यक्ति के गुण, अवगुणों, कार्यों आदि का विचार नहीं किया जाता। प्रेम एकान्त चाहता है। यह व्यक्ति निष्ठभाव है। इसमें केवल दो पक्ष प्रिय और प्रेमी होते हैं। यह एक संकुचित भाव है। प्रेमी प्रिय पर केवल अपना अधिकार रखना चाहता है। उसका संसार अपने प्रिय तक ही सीमित होता है। प्रेम कल्पना पर आधारित होने के कारण स्वप्न कहा जाता है। प्रेम में प्रेमी प्रिय के चिंतन में लीन होकर समस्त संसार को भूल जाता है। प्रेम अपने अनुभवों पर आधारित होता है। इसके लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती है। इस का सम्बन्ध हृदय से होता है। प्रेम हो जाने का कारण भी पता नहीं चलता है। यह कहीं भी, किसी से भी और किसी भी स्थिति में हो जाता है। इसमें प्रेमी प्रिय से प्रतिदान भी चाहता है।

भक्ति – श्रद्धा में जब प्रेम का समिलन हो जाता है तो उसे भक्ति कहते हैं। भक्ति अपने आराध्य की भक्ति करते हुए उनके सभी रूपों के दर्शन भी करना चाहता है। भक्त अपने आराध्य की भक्ति करते हुए अपने आराध्य के कर्मों के संपादन में योगदान देते हुए उनके महत्व का भी अधिकारी बनता है। भक्ति में भक्त अपने आराध्य के सम्मुख अपनी दीनता व्यक्त कर उनकी कृपा की कामना करता है। श्रद्धेय की जब हम आराधना करने लगते हैं और उसका हँसना–बोलना, चलना–फिरना, उठना–बैठना, क्रोध करना आदि भी हमें अच्छा लगने लगता है तो वह हमारा आराध्य बन जाता हैं इस प्रकार भक्ति श्रद्धा से अगली सीढ़ी है।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि श्रद्धा और भक्ति दोनों ही सात्विक भाव हैं। प्रेम व्यक्तिनिष्ठ भाव है। श्रद्धा में श्रद्धालु श्रद्धेय का महत्व उसके विशेष कर्मों तथा गुणों के आधार पर करता है तथा उसे समाज में अन्य लोगों द्वारा भी श्रद्धेय स्वीकार कराता है। भक्ति में भक्त आराध्य के निकट रहना चाहता है और अपनी दीनता व्यक्त कर उससे अपने उद्धार की प्रार्थना करता है जबकि प्रेम में प्रेमी केवल अपने प्रिय तक ही सीमित रह जाता है। इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने अपने चिन्तन द्वारा प्रेम को व्यक्तिनिष्ठ तथा श्रद्धा और भक्ति को सामाजिक एवं सात्विक भाव बाताया है। वे श्रद्धा से भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। भक्ति के माध्यम से मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है। इसके विपरीत प्रेम स्वार्थ–भावना से युक्त होने के कारण मनुष्य को सांसारिकता में ही लिप्त रखता है।

प्र०5 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध की शैली का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' एक मनोविकार सम्बन्धी विचार प्रधान निबंध है, जिस में लेखक ने श्रद्धा और भक्ति नामक भावों की व्याख्या की है। इन निबंध में लेखक ने परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करते हुए विभिन्न शैलियों का भी प्रयोग किया है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है–

(क) ***विचारात्मक शैली –*** आचार्य शुक्ल ने 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में मुख्य रूप से विचारात्मक शैली का प्रयोग किया है। जैसे– ''किसी मनुष्य में जन–साधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द–पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं।'' इसी प्रकार से अन्यत्र भी इसी शैली के दर्शन होते हैं– ''भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृत्ति

होती है जिसके द्वारा हमारी महत्व के अनुकूल गति का प्रसार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है।''

(ख) ***सूत्रात्मक शैली –*** लेखक ने श्रद्धा–भक्ति निबंध में सूत्रात्मक शैली का बहुत अधिक प्रयोग किया है। इस शैली में पहले कोई सूत्र वाक्य देकर बाद में लेखक उसकी व्याख्या या विवेचना करता है। उस निबंध में कुछ सूत्र–वाक्य हैं–

'यदि प्रेम स्वप्न है, तो श्रद्धा जागरण।'
''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।
''श्रद्धा का मूल–तत्व है दूसरे का महत्त्व स्वीकार।''
''श्रद्धालु महत्व को स्वीकार करता है, पर भक्त महत्व की ओर अग्रसर होता है।''

इन सूत्र वाक्यों द्वारा लेखक के निबंध में रोचकता का समावेश हो गया है।

(ग) ***व्याख्यात्मक शैली –*** आचार्य शुक्ल ने 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में सूत्र वाक्यों की विवेचना के लिए व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। जैसे लेखक 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'' सूत्र वाक्य के बाद भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखता है– ''जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा–भाजन के सामीप्य–लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।'' अन्यत्र भी इसी प्रकार के विवेचनात्मक वाक्य प्राप्त होते हैं।

(घ) ***व्यंग्यात्मक शैली –*** आचार्य शुक्ल गम्भीर चिन्तक तथा विचार प्रधान निबंध–लेखन में सिद्धहस्त है किन्तु इनके निबंधों में व्यंग्य की छटा भी बिखरी मिलती है जिससे इनके निबंधों में रोचकता एवं सरसता का समावेश हो जाता है। 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में भी इस प्रकार के छींटे देखे जा सकते हैं। जैसे – ''एक दिन काशी की एक गली में जा रहा था। एक ठठेरे की दुकान पर कुछ परदेशी यात्री किसी बरतन का मोल–भाव कर रहे थे कि इतना नहीं इतना तो लें। इतने ही में सौभाग्यवश दुकानदार जी को ब्रह्म जातियों ज्ञानियों के वाक्य याद आ गये। और उन्होंने चट कहा, ''माया छोड़ो और उसे ले लो।'' सोचिए तो, काशी ऐसा पुण्य क्षेत्र! वहाँ न माया छोड़ी जायगी तो कहाँ छोड़ी जायगी!''

(ड.) **तुलनात्मक शैली–** आचार्य शुक्ल ने 'श्रद्धा–भक्ति' निबंध में विभिन्न भावों की तुलना करते हुए तुलनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। इस से विभिन्न भावों में सूक्ष्म अन्तरों का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे– 'श्रद्धा का व्यापार–स्थल विस्तृत है, प्रेम का एकांत। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। किसी मनुष्य से प्रेम रखने वाले दो ही एक मिलेंगे, पर उस पर श्रद्धा रखने वाले सैकड़ों, हज़ारों, लाखों क्या करोड़ों मिल सकते हैं।''

(च) ***उपदेशात्मक शैली –*** आचार्य शुक्ल गम्भीर चिन्तक होने के साथ ही समाज को दिशा प्रदान करने वाले सचेत लेखक भी हैं। इस कारण इनके निबंधों में कहीं–कहीं उपदेशात्मक शैली के भी दर्शन हो जाते हैं। जैसे – ''जब तक समष्टि–रूप में हमें संसार के लक्ष्य का बोध नहीं होता और हमारे अन्तःकरण में सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक हमें श्रद्धा का अनुभव नहीं होता।''

अतः कह सकते हैं कि आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने अपने निबंध 'श्रद्धा–भक्ति' में विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग करते हुए इसे मुख्य रूप से विचारप्रधान निबंध का रूप ही दिया है। शैलियों की विभिन्नता से वे श्रद्धा और भक्ति के स्वरूप का सहजरूप से विस्तृत विवेचन करने में सफल रहे हैं।

शिरीष के फूल

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

fuc/k dk lkj

आचार्य हजारी प्रसाद 'द्विवेदी' द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' एक ऐसा ललित निबंध है जिसमें लेखक ने प्रकृति के माध्यम से मनुष्य की दृढ़ इच्छा शक्ति और जिजीविषा का वर्णन किया है। लेखक जहाँ बैठकर कुछ लिख रहा था वहाँ से उस जेठ की जलती दोपहर में भी फूलों से लदे झूमते हुए शिरीष के वृक्ष दिखाई दे रहे थे। गर्मी में बहुत कम वृक्ष फूलों से लदे झूमते हैं। कनेर और अमलतास भी गर्मियों में फूलते हैं पर वे भी शीघ्र ही पुष्पविहीन हो जाते हैं। शिरीष वसन्त के आते ही फूलों से लद जाता है और आषाढ़ तक फूलों से लदा रहता है। भीषण गर्मी में भी यह कालजयी अवधूत की तरह खड़ा रहता है। इसीलिए इसे लोग अपनी चार दीवारी के साथ लगाना पसंद करते थें इसके साथ ही अशोक, अश्विष्ट, पुन्नाग आदि के छायादार वृक्ष भी लगाये जाते थे। शिरीष की डालियाँ कमज़ोर अवश्य होती हैं व इन पर कोमलांगियों के लिए झूले भी लगाये जा सकते हैं।

कालिदास ने शिरीष के फूल का इतना अधिक कोमलता माना है कि ये केवल भौंरों के पैरों का ही दबाव सहन कर सकते हैं, परन्तु इसके फल इतने कठोर होते हैं कि वर्ष बीत जाने पर भी डालियों पर लटके हुए खड़खड़ाते रहते हैं और तब तक नहीं गिरते जब तक कि नये फल–फूल अपने बल से उन्हें इस प्रकार नहीं गिरा देते जैसे पुराने नेताओं को नये लोग धक्का मारकर निकाल देते हैं। शिरीष भयंकर गर्मी में वातावरण से रस प्राप्त कर मस्त बना रहता हैं उसे शिरीष कबीर जैसा अवधूत लगता है। कालिदास को भी वह ऐसा ही अनासक्त मानता है क्योंकि फक्कड़ बने बिना कोई महाकवि नहीं हो सकता। कालिदास की शकुन्तला का चित्र दुष्यन्त ने बनाया पर वह चित्र उन्हें अधूरा लग रहा था। जब उन्होंने शकुन्तला के कानों में शिरीष–पुष्प पहनाये तो उन्हें लगा कि अब यह चित्र पूर्ण है। रवीन्द्रनाथ टैगोर और सुमित्रानंदन पंत को भी लेखक ने अनासक्त कवि माना है। शिरीष लेखक के मन में पक्के अवधूत की तरह ऐसी तरंगें उत्पन्न कर देता है कि वह भी विपरीत स्थितियों में भी स्वयं को स्थिर रखने का प्रयास करता है। उसे गांधी जी की याद आती है जो शिरीष के समान वायु मण्डल से रस प्राप्त कर कोमल और कठोर बन गए थे।

dfBu 'kCnksa dk vFk

धरित्री = धरती। निर्धूम = जहाँ धूआँ न हो, धूएँ से रहित। कर्णिकार = कनेर। आरग्वध = अमलतास। लहक उठना = खिलना। लँडूरा = बिना पुंछ का, कटी हुई पुंछ वाला। निर्घात = बिना किसी रूकावट या बाधा के। कालजयी = समय की भी जीतने वाला, मृत्यु को जीतने वाला। अवधूत = योगी, संन्यासी। अजेयता = जिसे कोई न जीत सके। नितान्त = पूरी तरह से। हिल्लोल = प्रसन्नता, खुशी। मंगल–जलक = कल्याणकारी। वाटिका = बगीचा। धनमसृण = घनी कोमल। हरीतिया = हरियाली। परिवेष्टित = घिरा हुआ। दालाओं = झूलों। तन्दुल = तोंद वाले, मोटे। परवर्त्ती = बाद के। लिप्सा = वासना, इच्छा, कामना। जरा = बुढ़ापा। फरा = फूला–फला। ऊर्ध्वमुखी =

ऊपर की तरफ मुँ किए हुए। आठों–याम = आठ पहर। अनासक्त = किसी में भी आसक्ति न होना, फक्कड़। कार्पण्य = कंजूसी। निर्दलित = बिना पीसें। ईक्षुदण्ड = गन्ना

lçlx 0;k[;k

1

कबीरदास को इस तरह पन्द्रह दिन के लिए लहक उठना पसन्द नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़– के खंखड़– 'नि दस फूला फूलि के खंखड़ भया पलास!' ऐसे दुमदारों से तो लँडूरे भले फूल है शिरीष। बसन्त के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक तो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भादों में भी निधति फूलता रहता है। (पृष्ठ 73)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने भीषण गर्मी में भी खिले रहने वाले शिरीष के फूल से प्रेरणा लेकर जीवन–संघर्षों का हँसते–हँसते सामना करने के लिए कहा है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक ने चिरस्थायी रहने वाले सौंदर्य की प्रशंसा की है तथा कबीरदास का उदाहरण देकर बताया है कि कबीरदास को भी अस्थायी सौन्दर्य पसंद नहीं था इसलिए उन्हें पलाश का कुछ दिन फूल खिलने के बाद फिर ठूँठ दिखाई देना अच्छा नहीं लगता। पलाश का कुछ दिन खिलना और फिर खंखड़ हो जाना उन्हें पसंद नहीं है। ऐसे अधूरे खिलने वालों से तो वे न खिलनेवालों को भी अच्छा समझते हुए उनकी तुलना दुमदारों से दुमहीनों से करते हैं। लेखक को शिरीष के फूल ही अच्छे लगते हैं। जो बसन्त के आते ही खिल उठता है और आषाढ़ तक निश्चित रूप से खिला रहता है और मौसम अनुकूल होने पर बिना किसी बाधा के, भादों तक खिला रहता है।

विशेषः

(क) लेखक ने शिरीष जैसे सदाबहार पुष्प को पलाश आदि से श्रेष्ठ माना है क्योंकि यह बहुत समय तक खिला रहता है।

(ख) भाषा तद्भव और देशज शब्दों से युक्त है। लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है।

(ग) शैली भावात्मक और प्रवाहपूर्ण है।

2

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल–जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष–वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है। अशोक, आरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टि वृक्ष वाटिका का जरूर बड़ी मनोरम दिखती होगी। (पृष्ठ 73)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध ''शिरीष के फुल'' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में लेखक ने शिरीष

के फूल द्वारा भीषण गर्मी में भी खिले रहने का उदाहरण देकर मनुष्य को कठिनाइयों में भी मुस्कराते रहने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक प्राचीन काल में अपने घर के आस–पास वृक्ष लगाने के महत्व के सम्बन्ध में लिखता है कि शिरीष के वृक्ष बहुत बड़े और बहुत छाया देने वाले होते हैं। इस कारण प्राचीन काल में भारत वर्ष के अमीर लोग अपने घर के चार दीवारी के साथ जिन कल्याणकारी वृक्षों को अपनी वृक्ष–वाटिका में लगाते थे उन में एक शिरीष का वृक्ष भी होता था। इस प्रकार की अशोक, आष्टि, पुन्नाग और शिरीष के छायादार–धनी कोमल हरियाली से घिरी हुई चारों ओर की वृक्ष–वाटिका अवश्य ही बहुत सुंदर प्रतीत होती होगी।

विशेषः

(क) इन पंक्तियों में लेखक ने प्राचीन भारतवासियों के वृक्ष–प्रेम को दिखाया है कि वे अपने घर के चारों ओर घने छायादार वृक्ष लगाया करते थे।

(ख) शिरीष अपने फूलों और घनीछाया के लिए सर्वप्रिय वृक्ष था।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान और शैली वर्णनात्मक है।

3

इसके फल इतने मज़बूत होते हैं कि नये फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नये फल–पत्ते मिलकर धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। बसन्त के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प–पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे उन को देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार जमाने का रूख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का देकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं। (पृष्ठ 74)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' से उद्धृत किया गया है। इन निबंध में लेखक ने गीष्म की भयंकर तपन में भी खिले रहने वाले शिरीष के समान मनुष्य को जीवन–संघर्षों का मुस्कराते हुए सामना करने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक शिरीष के फलों की कठोरता आधुनिक संवेदन शून्य राजनेताओं से करता है। लेखक बताता है कि शिरीष के फूल जितने कोमल होते हैं उसके फल उतने ही मज़बूत और कठोर होते हैं। वे नए फूल निकल आने पर भी डालियों पर लगे रहते हैं। वे तब तक वृक्ष की डालियों पर लगे रहते हैं जब तक नये फल और पत्ते उन्हें धक्के लगा–लगा कर गिरा नहीं देते। बसन्त ऋतु के आने पर जब समस्त वन क्षेत्र फूलों और पत्तों के मर्म–मर्म स्वर से गूंजता रहता है उस समय भी शिरीष के पुराने फल डालियों पर खड़खड़ाते रहते हैं। लेखक को इन्हें देखकर उन नेताओं की याद आ जाती है जो समय के परिवर्तन को न समझकर कुर्सी से तब तक चिपके रहते हैं जब तक कि नये ज़माने के नेता उन्हें धक्के मार–मार कर निकाल नहीं देते।

विशेषः

(क) लेखक ने उन वयोवृद्ध राजनेताओं पर व्यंग्य किया है जो सत्ता का लालच नहीं त्यागते हैं और कुछ काम न कर सकने पर भी कुर्सी से चिपके रहते हैं

(ख) 'पुराने को जाना होगा और नए को आना होग'– इस तथ्य की भी लेखक ने पुष्टी की है।

(ग) भाषा सहज तथा भावानुकूल है। शैली व्यंग्यात्मक है।

4

मैं सोचता हूं कि पुराने की यह अधिकार–लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती ? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत् के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफसोस के साथ इनकी सचाई पर मोहर लगायी थी – 'धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।' में शिरीष के फलों को देखकर कहता हूं कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा, किअड़ना निश्चित है! (पृष्ठ 74)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने शिरीष के फूल द्वारा भीषण गर्मी को सहकर भी खिले रहने का उदाहरण देकर मनुष्य को बड़ी से बड़ी कठिनाई का मुस्करा कर सामना करने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक को शिरीष के फल की कठोरता और उसका अपनी डालियों से न गिरना पद–लोलुप नेताओं जैसा लगता है। इसलिए लेखक सोचता है कि पुराने अथवा बूढ़े लोग समय के परिवर्तन का महत्व समझ कर समय रहते ही अपनी अधिकारी की वासना का त्याग क्यों नहीं कर देते? क्योंकि बुढ़ापा और मृत्यु ये दोनों ही संसार के प्राणियों के अच्छी प्रकार से जाने–पहचाने और बहुत अधिक प्रामाणिक सत्य हैं। बुढ़ापे ने आना है और मृत्यु भी आती है यह सभी जानते हैं फिर उनसे बचना क्यों ? तुलसी दास जी इसी बात को स्वीकार कर अत्यंत खेद के साथ कहते हैं कि इस धरती पर यह प्रमाणित है कि जो फलता है वह अवश्य झड़ता है अर्थात जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। इससे आज तक न कोई बचा है और न ही भविष्य में भी कोई बच सकेगा। इसलिए लेखक शिरीष के फलों को देखकर कहता है कि उन्हें भी फलते ही यह समझ लेना चाहिए कि एक दिन उन्हें अवश्य ही झड़ना भी है।

विशेषः

(क) लेखक ने जन्म–मरण के शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया हैं

(ख) तुलसीदास के कथन से लेखक ने अपने कथन को प्रमाणिकता प्रदान की है।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली विचारात्मक है।

5

अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएं निकली हैं। कबीर बहुत–कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह, पर सरस और मादक। कालिदास भी ज़रूर अनासक्त योगी रहे

होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघूदत' का काव्य इसी प्रकार के अनासक्त अनाबिल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता हैं जो कवि अनासकत नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किये–कराये का लेख–जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है? (पृष्ठ 75)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने मनुष्य को शिरीष के फूल के समान कठिनाइयों में भी सदा मुस्कराते रहने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक ने यह बताया है कि अनासक्त व्यक्ति ही सच्चा कवि बन सकता है। उन का विचार है कि जो व्यक्ति सन्यासियों के समान फक्कड़ है वही संसार में सबसे श्रेष्ठ रचनाएँ कर सकता है। कबीर का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि कबीर इस शिरीष के समान मस्त, बेपरवाह, रसपूर्ण तथा मदमस्त कर देने वाले थे इस कारण किसी की भी चिन्ता किए बिना अपने भावों को व्यक्त करते रहे। लेखक कालिदास को भी ऐसा ही फक्कड़ मानते हैं। जैसे शिरीष के फूल गर्मी की भयंकर तपन सहन करके भी मस्ती से झूमते रहते हैं वैसे ही 'मघदूत' जैसे काव्य की रचना भी कोई फक्कड़ आज़ाद हृदय का व्यक्ति ही कर सकता है। कालिदास ऐसे ही अनासक्त होंगे इस कारण 'मेघदूत' की रचना कर सके। जो कवि मस्तमौला नहीं रह सकता और फक्कड़ नहीं बन सकता और केवल अपने लाभ–हानि का हिसाब किताब ही करता रहता है वह कभी कवि नहीं बन सकता और वह कवि कहलाने योग्य भी नहीं है।

विशेषः

(क) कवि को अनासक्त तथा मुक्त हृदयी होना चाहिए।

(ख) हिसाब–किताब रखनेवाला व्यक्ति कवि नहीं हो सकता।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली भावात्मक है।

6

शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों? मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों संभव हुआ? कि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायु मण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है। गांधी भी वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और कठोर हो सका था। मैं जब–जब शिरीष की ओर देखता हूं तब तब झूम उठती है– हाय, वह अवधूत आज कहां है? (पृष्ठ 76)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्त 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने मनुष्य को शिरीष के फूल के समान कष्ट सहन करके भी मुस्कराने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक स्पष्ट करता है कि शिरीष गर्मी सहन करके भी अपने फूलों से प्रकृति को सजाता रहता है। शिरीष प्रत्येक कष्ट अर्थात भीषण गर्मी में भी फूलों से लदा रहता है। इसी प्रकार से हमारे देश की एक बूढ़े व्यक्ति ने भी सभी कष्टों को सहन करके अपनी मुस्कराहट नहीं छोड़ी थी। लेखक का मन उस से पूछता है कि ऐसा कैसे संभव हुआ होगा? वह स्वयं ही उत्तर देता है कि शिरीष एक अनासक्त योगी है। वह वायुमण्डल से रस खींच कर भयंकर गर्मी में भी कोमल पुष्पों और कठोर फलों से लद जाता है। इसी प्रकार से गांधी जी ने भी अपने आस–पास के वातावरण

से जीवनी–शक्ति प्राप्त की थी और वे बाहर से अत्यन्त कोमल होते हुए भी मन की कठोरता से देश को ब्रिटिश शासन से आज़ाद करा सके। लेखक जब–जब शिरीष की ओर देखता है तब–तब उसके मन में एक पीड़ा सी होती है और वह उठता है कि वह फक्कड़ सन्यासी गांधी अब कहाँ है?

विशेषः

(क) लेखक ने गांधीजी को भी शिरीष के समान कष्टों को सह कर मुस्कराते हुए चित्रित किया है।

(ख) गांधी जी आजीवन कष्ट सहन करते रहे पर उन्होंने किसी को कष्ट नहीं दिया था।

(ग) भाषा तत्सम प्रधान तथा शैली भावात्मक है।

vu|'khyuh d ç'uk d mÙkj

प्र०1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **जीवनः** भारतीय संस्कृति के व्याख्याता एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 ई० में उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के 'आरत दुबे का छपरा' गाँव में हुआ था। इन के पिता का नाम श्री अनमोल द्विवेदी था। उन्होंने संस्कृति विश्वविद्यालय से शास्त्री की उपाधि तथा ज्योतिषाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। उन्होंने शान्ति निकेतन में प्राध्यापक, काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागध्यक्ष तथा पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागध्यक्ष के रूप में कार्य किया। इसके अतिरिकत उन्होंने 'अमिनव भारती ग्रन्थमाला', विश्वभारती का सम्पादन तथा हिन्दी भवन विश्वभारती का संचालन कार्य भी किया। लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट्. की उपाधि से तथा भारत सरकार ने 'पदम भूषण' के अलंकरण से सम्मानित किया था। केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा भी इन्हें पुरस्कृत किया गया था। उन्होंने उत्तर प्रदेश संस्थान की अध्यक्षता की तथा भारत सरकार की हिन्दी विषयक अनेक योजनाओं में भी अपना योगदान दिया था। सन् 1978 ई० में इनका देहावसान हो गया था।

साहित्यः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुमखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

निबंध – अशोक के फूल, विचार–प्रवाह, कल्पलता, विचार और वितर्क।

उपन्यास – बाणभट्ट की आत्म कथा, चारू चन्द्र लेख।

समीक्षा – हिन्दी साहित्य की भूमिका, भय सम्प्रदाय, मध्यकालीन धर्म साधना, कबीर, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, मेघदूत, सूर साहित्य आदि।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मुख्य रूप से विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं जिनमें भावात्मकता तथा भारतीय संस्कृति के प्रति मोह स्पष्ट दिखाई देता है। इसके समग्र निबन्ध साहित्य को निम्नलिखित वर्गों में बांट सकते हैं–

(क) ***समीक्षात्मक निबंध*** – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित समीक्षात्मक निबंधों में व्यावहारिक तथा शास्त्रीय समीक्षा का भव्य रूप दिखाई देता है। इन निबंधों में

लेखक ने अपने स्वाधीन चिन्तन एवं मनन का प्रमाण प्रस्तुत किया है। 'प्रसाद जी की कामयनी', 'प्रेमचन्द का महत्व, कविता का भविष्य, हिन्दी का भक्ति साहित्य, रस क्या है, सगुण मतवाद आदि उनके इसी प्रकार के निबंध हैं। इनमें लेखक ने अपने गहन अध्ययन, उदात्त दृष्टिकोण, संवदेनशीलता आदि का भी परिचय दिया हैं

(ख) ***सांस्कृतिक निबंध*** – लेखक के भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित निबन्ध इस श्रेणी में आते हैं 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या, भारतीय संस्कृति की देन, प्राचीन भारत की सामाजिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि, भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत आदि इसी प्रकार के निबंध हैं। इन निबंधों में भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्षों के साथ–साथ भारत के सांस्कृतिक महत्व को भी उद्घाटित किया गया है। इन निबंधों भारत के सांस्कृतिक परिवेश और दृष्टिकोण का भी ज्ञान होता है। लेखक ने इन निबंधों में सदाचार के नियमों, फलित ज्योतिष, शुभ–अशुभ आदि के बारे में भी चर्चा की है।

(ग) ***ऐतिहासिक निबंध*** – लेखक के भारतीय जन–जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाले तथा भारत की विभिन्न कलाओं का ऐतिहासिक निरूपण करने वाले निबंध उस श्रेणी में आते हैं। ''कलाओं की प्राचीनता, अलंकार, गुफायें और मंदिर, वज्र और हीरा,केश–संस्कार, अन्तःपुर, स्नान–भोजन आदि इसी प्रकार के निबंध हैं इन निबंधों में विभिन्न कला विनोद, पर्व, उत्सव आदि का भी सम्यक् विवेचन प्राप्त होता है।

(घ) ***वैयक्तिक निबंध*** – लेखक के वैयक्तिक अनुभवों पर आधारित निबंध इस श्रेणी में आते हैं। इनमें भावना, अनुभूति और कल्पना का अद्भूत संगम देखा जा सकता है। ये सभी निबंध गहन संवेदना से परिपूर्ण होने के कारण भावुकता एवं सहृदयता से युक्त हैं। 'अशोक के फूल, वसन्त आ गया, शिरीष के फूल, नववर्ष आ गया, मेरी जन्मभूमि, देवदारू, कुटज, नाखून क्यों बढ़ते हैं आदि इसी प्रकार के निबंध हैं। इन सभी निबंधों में भावात्मकता विद्यमान हैं इनसे लेखक की उर्वरक कल्पना शक्ति, आभूतियों की तीव्रता, संवेदनशीलता, सहृदय आदि का भी परिचय प्राप्त होता है। ये सभी निबंध लेखक की स्वाधीन चिंतनशीलता के प्रतीक भी हैं।

(ड.) ***अवेषणात्मक निबंध*** – यह निबंध ऐतिहासिक खोज एवं शोध से सम्बन्धित हैं और उनमें भारतीय विद्या के विविध भेदों के अध्ययन की गरिमा विद्यमान है। 'हिन्दी में शोध का प्रश्न, हिन्दी का आदिकाल, कवि प्रसिद्धियाँ, जैन साहित्य, बौद्ध संस्कृत साहित्य आदि इनके इसी प्रकार के निबंध हैं। इनमें लेखक ने अपने गहन अध्ययन एवं अनुशीलन के आधार पर प्राचीन ग्रंथों में विद्यमान तथ्यों को सरल, सहज एवं व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध साहित्य भारतीय संस्कृति के उज्जवल रूप को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। इनके निबंध स्वाधीन चिन्तन, गहन अध्ययन, प्रकांड पांडित्य, सूक्ष्म निरीक्षण एवं उर्वरक कल्पना के परिचायक हैं।

प्र०2 'शिरीष के फूल' निबंध की मूल चेतना अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तरः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' एक ललित निबंध है, जिस में लेखक ने शिरीष के फूल को एक ऐसा अनासक्त योगी माना है जो ग्रीष्म की भीषण तपन

सहकर भी खिला रहता है। लेखक ने इसके माध्यम से मनुष्य को यह संदेश दिया है कि उसे विपरीत स्थितियों में भी घबराना नहीं चाहिए अपितु कठिन से कठिन संकट का भी उसी प्रकार से सामना करना चाहिए अपितु कठिन से कठिन संकट का भी उसी प्रकार से सामना करना चाहिए जैसे जेठ की तपती दोपहरी में शिरीष फूलों से लदकर झूमते हुए अपनी मन्द सुगन्ध चारों ओर बिखेरता रहता है।

शिरीष की प्रशंसा करते हुए लेखक लिखता है कि शिरीष ऐसा वृक्ष है जो छायादार होने के साथ ही अपने फूलों की महक वसन्त के आगमन से लेकर भादों तक बिखेरता रहता है। जेठ की प्रचण्ड गर्मी को भी वह अपने कोमल फूलों के साथ झूम–झूम कर व्यतीत कर लेता है। गर्मी में जब अन्य वनस्पतियाँ तथा फूल आदि सूख जाते हैं। शिरीष कालजयी अवधूत के समान लहलहाता हुआ जीवन की अजेयता का सन्देश देता रहता है। शिरीष के फूलों को इतना अधिक कोमल माना गया है कि ये केवल भँवरों के पैरों का बोझ ही सहन कर सकते हैं, पक्षियों का नहीं। फिर भी ये भीषण गर्मी को आसानी से झेल जाते हैं। कबीर और कालिदास को भी लेखक शिरीष के समान मानता है जो मस्ती, फक्कड़पन और मादकता में शिरीष के फूल के समान हैं। वे इन्हें अनासक्त योगी मानता है क्योंकि अनासक्त ही कवि हो सकता है। कबीर का फक्कड़पन और कालिदास का सौंदर्यबोध एवं मनोरम कल्पनाएँ शिरीष के समान ही हैं। सुमित्राानन्द पंत और टैगोर की भी वह शिरीष जैसी अनासक्ति से युक्त मानता है।

शिरीष के फूल जहाँ बहुत कोमल होते हैं, इसके फल बहुत कठोर होते हैं। वे अगली वसन्त के आने तक भी गिरते नहीं हैं बल्कि सूख कर खड़खड़ाते रहते हैं। उन्हें नए पत्ते और नये फल ही धकेल कर उसी प्रकार से गिरा देते हैं जैसे बूढ़े नेताओं द्वारा कुर्सी खाली न करने पर उन्हें नए नेता पीछे धकेल देते हैं। अपने इस कथन से लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि मनुष्य को अपनी अवस्था तथा स्थिति के अनुरूप कार्य करना चाहिए। समय की रफ्तार को पहचान कर स्वयं को उसी के अनुसार ढाल लेना चाहिए। अधिकार का लालच सदा नहीं बना रहना चाहिए। जिस प्रकार पुराने पत्ते झड़ जाते हैं तो नये पत्ते उन के स्थान पर आ जाते हैं उसी प्रकार से मनुष्य को भी कुर्सी से चिपके रहने के स्थान पर बुढ़ापा आने पर अपने उत्तराधिकारी की वह स्थान सौंप देना चाहिए। इस से युवा पीढ़ी को अनुभवी पीढ़ी को निर्देश में आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। जिस प्रकार बचपन, जवानी, बुढ़ापा और मृत्यु एक सत्य है उसी प्रकार से मृत्यु के स्वागत के लिए भी सदा तैयार रहना चाहिए और उसके आकस्मिक रूप से आने से पहले ही सब प्रबन्ध कर देने चाहिए नहीं तो जैसे शिरीष के पुराने खड़खड़ाते फल को नये पत्ते और फल धकेल कर गिरा देते हैं वैसे ही अधिकार के लालची व्यक्ति को भी लोग धकेल देते हैं वह मनुष्य को गांधी जैसा बनने के प्रेरणा देता है जो शिरीष के फूल के समान कोमल और शिरीष के फल के समान कठोर भी थें वे शिरीष के समान वातावरण से ही जीवन–वायु खींच कर संघर्ष करते हुए देश को स्वतंत्र कर सके थे।

इस प्रकार लेखक ने 'शिरीष के फूल' निबंध के माध्यम से मनुष्य को प्रेरित करते हुए यह कहा है कि उसे सुख–दुख में समभाव से रहते हुए जीवन संघर्षों से कमी निराश नहीं होना चाहिए, अपितु शिरीष के समान वायुमण्डल से ही जीवन–रस प्राप्त कर विपरीत स्थितियों का सामना उसी प्रकार से मुस्कराते हुए करना चाहिए जैसे शिरीष के फूल भीषण गर्मी में भी लहलहाते रहते हैं। कबीर विपरीत स्थितियों में भी अपने फक्कड़पन से समाज को अपना

संदेश सुनाते रहे, कालिदास अनासक्त भाव से अपने सौंदर्य निरूपण में लगे रहे, गांधी जी अपने आस–पास के वातावरण से जीवन–रस प्राप्त कर विपरीत स्थितियों का सामना करते हुए विदेशियों से देश–स्वतंत्र कराने में सफल हुए। अतः वही व्यक्ति जीवन में सफल तथा महान बन सकता है जो शिरीष के समान वायुमण्डल से रस खींचकर विपरीत स्थितियों में भी लहलहाता रहे और कोमलता तथा कठोरता का सहज मिश्रण हो। क्योंकि ऐसे अवधूत ही महान साहित्यकार, समाज सुधारक अथवा जननायक बन सकते हैं।

प्र०3 निबंध–कला की दृष्टि से 'शिरीष के फूल' की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' एक ललित निबंध है, जिसमें लेखक ने शिरीष द्वारा भीषणगर्मी सहकर भी महीनों अपने फूलों की महक बिखरने का वर्णन करते हुए मनुष्य को विपरीत स्थितियों का, मुस्कराते हुए, सामना करने की प्रेरणा दी है। 'शिरीष के फूल' निबंध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***बुद्धितत्व*** **–** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, बंगला, अंग्रेज़ी, आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान था। उनके अध्ययन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था, इसलिए उनके निबंधों में बौद्धिकता का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। 'शिरीष के फूल' निबंध में शिरीष की अनासक्त भावना की तुलना कबीर, कालिदास, टगौर, पंत, गांधीजी आदि से करना लेखक की बहुज्ञता के साथ–साथ अध्ययनशीलता के परिचायक है। लेखक की बौद्धिकता का ज्ञान निबंध की इन पंक्तियों से हो जाता है–

''मैं सोचता हूं पुराने की यह अधिकार–लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत् के अतिपरिचित और अतिप्रमाणिक सत्य हैं।''

(ख) ***अनुभूति–तत्व*** **–** निबंध को अधिक से अधिक प्रौढ़, प्रांजल और स्वतंत्र विचारों से युक्त करने के लिए लेखक को जीवन एवं जगत् के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उसे अपने अनुभव में लाने की आवश्यकता पड़ती है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी गहन और गम्भीर अनुभूति द्वारा अपने निबंधों को जीवन और जगत् की विभिन्न मार्मिक और सजीव अनुभूतियों द्वारा विशेष अर्थवत्ता प्रदान की है। समाज में व्याप्त अव्यवस्था का सजीव चित्रण लेखक ने इन शब्दों में किया है– ''हमारे देश के ऊपर से जो यह मार–काट, अग्निदाह, लूट–पाट, खून–खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था।'' यह लेखक की गहन अनुभूति से ही संभव हो सका है।

(ग) ***कल्पना–तत्व*** **–** निबंधकार अपने विषय को विस्तार कल्पना के माध्यम से ही देता है। क्योंकि इससे वह अपने विचारों एवं भावनाओं को सजीव रूप प्रदान कर सकता है। आचार्य द्विवेदी ने भी अपने निबंधों में कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है तथा उन्हें सरसता प्रदान की है। 'शिरीष के फूल' निबंध में शिरीष के सम्बंध में लेखक का यह कथन उस की उर्वरक कल्पनाशीलता का ही उदाहरण है– ''फूल है शिरीष। वसन्त के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक तो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र

शिरीष कालजयी अवधूत की भांति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता रहता है।''

(घ) ***अहं–तत्व –*** प्रत्येक निबंधकार के निबंध में उसके व्यक्तित्व की झलक भी दिखाई देती है, जो अहं–तत्त्व कहलाती है। इसके अन्तर्गत लेखक अपनी व्यक्तिगत धारणायें तथा मान्यतायें व्यक्त करता है। 'शिरीष के फूल' में भी लेखक ने अपने व्यक्तिगत विचार इस प्रकार से व्यक्त किए हैं– ''मैं जानता हूं कि उस उपालम्भ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इस का मतलब यह नहीं कि कोई लजाये नहीं तो उसे डाँटा भी न जाय। मैं कहता हूं कि कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नही। मरने दो!''

(ड.) ***भाषा–शैली –*** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत पर इसका पूर्ण अधिकार था। इस कारण इनके निबंधों में तत्सम प्रधान भाषा की प्रधानता रहती है। 'शिरीष के फूल' निबंध में भी लेखक ने तत्सम प्रधान शब्दावली का बहुत अधिक प्रयोग किया है। जैसे – ''वे अनासक्त योगी की स्थिर प्रज्ञता और विदग्ध–प्रेमी का हृदय पा चुके थे।'' ..... ''दुरंत प्राणधारा और सर्व व्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है।''

इन की शैली मुख्य रूप से विचार प्रधान है जिसमें कहीं–कहीं आत्मकथात्मक, वर्णात्मक, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों के भी दर्शन हो जाते हैं। व्यंग्यात्मक शैली का उदाहरण दृष्टव्य है– ''मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं वहीं देर तक बने रहें तो काल देवता की आँख बचा जायेंगे। भोले हैं वे। हिलते–डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किये रहो तो कोड़े की मार से भी बच सकते हो, जमे कि मरे!''

इस प्रकार कह सकते हैं कि निबंध–कला की दृष्टि से 'शिरीष के फूल' एक सफल निबंध है।

प्र०4 ललित–निबंध के आधार पर 'शिरीष के फूल' की लालित्य–चेतना पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'शिरीष के फूल' एक ललित निबंध है, जिसमें लेखक की वैयक्तिकता, विचारों की प्रभावोत्पादकता, हृदय की मधुरता, जिज्ञासावृत्ति एवं स्वाभाविकता के सहज ही दर्शन हो जाते हैं। निबंध का प्रारम्भ ही लेखक ने अत्यन्त व्यक्तिगत भावों को व्यक्त करते हुए इस प्रकार किया है –' ''जहाँ बैठ के यह लिख रहा हूँ उसके आगे–पीछे, दायें–बायें, शिरीष के अनेक पेड़ हैं।''

अपने इस कथन को विस्तार देते हुए लेखक लिखता है कि शिरीष भीषण गर्मी में भी भादों तक अपने फूलों की छटा बिखेरता रहता है जबकि कनेर, अमलतास और पलाश कुछ दिन ही अपनी शोभा बिखेर कर झड़ जाते हैं। शिरीष का इस प्रकार ग्रीष्म के ताप को सहन कर के भी झूमते रहना लेखक को ऐसा लगता है जैसे वह कालजयी अवधूत हो और अपनी अजेयता का प्रचार कर रहा है। कबीर ने भी पलाश के लिए कहा ''दिन दस फूला फूलि के खंखड़ गया पलास।' इस कारण लेखक ने शिरीष के फूल को महत्व दिया है क्योंकि यह बहुत दिनों तक अपनी शोभा से वातावरण को सुवासित करता रहता हैं।

शिरीष को अवधूत कहकर लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि यह दुःखों से नहीं घबराता और भीषण गीष्म की तपन में भी वायुमण्डल से जीवन–रस प्राप्त कर झूमता रहता है। कबीर की तुलना भी लेखक ने शिरीष से की है क्योंकि वे भी शिरीष के समान समाज की विपरीत स्थितियों से संघर्ष करते हुए अपनी बात कर सके। गांधीजी को भी लेखक ने शिरीष के समान कोमल और कठोर कहा है। शिरीष के फूल कोमल परन्तु फल कठोर होते हैं जो अगली वसन्त तक भी नहीं गिरते। इसी प्रकार से कोमल शरीर वाले होते हुए भी गांधी जी ने कठोरता से ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते हुए भारत को स्वतंत्र कराया था।

लेखक शिरीष के फूलों का ग्रीष्म की तपन को सहन करना जैसे सामान्य प्रसंग को लेकर बहुत गम्भीर भी हो जाता है और इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति धर्म, राजनीति, कार्यसूत्र आदि को भी अपने इस आलेख में समेट जाता है। शिरीष को अनासक्त भोगी कहकर वे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का परिचय देते हैं क्योंकि अनासक्त योगी कह कर वे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का परिचय देते हैं क्योंकि अनासक्त व्यक्ति ही महापुरुष बन सकता हैं इसी प्रकार से शिरीष के फलों का वर्ष बीत जाने पर भी न झड़ने के लिए तुलना करते हुए कहता है ''मुझे इनको देखकर उन नेताओं की याद आती है, जो किसी प्रकार जमाने का रूख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौधों के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।'' लेखक का यह कथन पद–लोलुप राजनेताओं पर तीक्ष्ण प्रहार है। कामसूत्र का प्रसंग लेखक ने शिरीष की कोमल डालियों पर झूला डालने के प्रसंग में किया है क्योंकि उसकी डालियाँ भी कोमलांगियों को झूला झुलाने में समर्थ हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'शिरीष के फूल' एक सफल ललित निबंध है जिसमें लेखक ने प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को अत्यंत भावात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें विचारों की स्पष्टता, गम्भीरता, संक्षिप्तता के साथ ही प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक जीवन की झलक भी विद्यमान है। इस निबंध के लालित्य में तत्समप्रधान शब्दावली ने और भी अधिक वृद्धि की है।

प्र०5 'शिरीष के फूल' निबंध की भाषा–शैली का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक उच्च कोटि के निबंधकार हैं। उन्हें विभिन्न भाषाओं का ज्ञान था। संस्कृत में शास्त्री होने के कारण इनके अधिकाशं निबंधों की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त है। 'शिरीष के फूल' निबंध की भाषा–शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

भाषा **–** लेखक ने मुख्य रूप से तत्सम प्रधान शब्दावली का प्रयोग किया है। जैसे– ''अशोक, आरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिया से परिवेष्टित वृक्ष वाटिका बड़ी मनोहर दिखती होगी।'' ...''दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है।'' कहीं–कहीं उन्होंने लोक–प्रचलित देशज तथा अरबी–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे– हजरत, मुहर, कमज़ोर, धकिया, खून–खच्चर, खंखड़, चिलकती धूप आदि। कुछ स्थानों पर इन्होंने मिश्रित भाषा का भी प्रयोग किया है। जैसे– ''हमारे देश के ऊपर से जो यह मार–काट, अग्निदाह, लूट–पाट, खून–खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था'' अपनी भाषा के सरस तथा प्रभावशाली बनाने के लिए लेखक ने ''मन रमना, हार मानना, धक्का मारना, दहक उठना, डटे रहना आदि मुहावरों तथा 'दस दिन फूले फिर खंखड़ के खंखड़, ऐसे दुमदारों से लँडूरे भले आदि लोकोक्तियों का भी सार्थक प्रयोग किया है। इनकी

वाक्य रचना भावानुकूल, सरल और सहज है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कबीर, तुलसीदास, कामसूत्र, कालिदास, टैगोर आदि के उदाहरण भी दिए हैं

शैली – 'शिरीष के फूल' मुख्य रूप से भावपूर्ण विचारात्मक शैली में रचित निबंध है। इसमें विचार एक के बाद एक शृंखला में बंधे हुए चले आते हैं पर कुछ स्थानों पर लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे – ''इसके फल इतने मज़बूत होते हैं कि नये फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नये फल–पत्ते मिलकर धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं।..... मुझे उनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार जमाने का रूख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।''

लेखक ने इस में आत्मकथात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। इस स्थलों पर वह अपने व्यक्तिगत विचारों को व्यक्त करते हुए लिखता है– ''मैं कहता हूं कि कवि बनाना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनों शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो।'' कुछ स्थलों पर इनकी शैली में दार्शनिकता का भी समावेश हो गया है जब वे लिखते हैं– ''मैं सोचता हूं कि पुराने की यह अधिकार–लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती है? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत् के अति परिचित और अति प्रमाणिक सत्य हैं।''

अतः कह सकते है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा परिनिष्ठित, तत्समप्रधान तथा व्याकरण सम्मत हैं यह सभी प्रकारों के विचारों एवं भावों को व्यक्त करने में सक्षम है। इनके निबंधों में मुख्य रूप से विचारात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही उन्होंने भावात्मक, आत्मकथात्मक, व्यंग्यात्मक, विवरणात्मक आदि शैलियों का भी यथा स्थान प्रयोग करते हुए अपने निबंधों में सरसता, प्रवाहमयता, रोचकता आदि का समावेश कर दिया है।

निन्दा–रस

हरिशंकर परसाई

निबंध का सार

हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' एक हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध है। इसमें लेखक ने निन्दा करने वाले लोगों पर व्यंग्य किया है। लेखक का 'क' नाम का एक मित्र है जो कई महीने बाद लेखक से मिलने आता है। वह एक दिन पहले लेखक के मित्र 'ग' से मिलाक लेखक की निन्दा कर चुका था। वह आते ही लेखक के गले मिलकर उससे आत्मीयता जताना चाहता है परन्तु लेखक उससे ऐसे मिलता है मानो उसका शरीर नहीं उसका कोई पुतला ही 'क' से मिल रहा है। वह इस मिलन को धृतराष्ट्र द्वारा भीम के पुतले को जकड़ने जैसा मानता है। वह लेखक को झूठ बतलाता है कि वह सुबह की गाड़ी से आते ही उससे मिलने आ गया है। वह लेखक के सामने 'ग' की निन्दा शुरू कर देता है, जिसे सुनकर वह सोचता है कि कल 'ग' के सामने इसने उसकी भी ऐसी ही निन्दा की होगी। इतना अच्छा निन्दक मित्र पाकर लेखक उसके सामने अपने विरोधियों का नाम लेता जाता है और उसका 'क' मित्र सबकी निन्दा इस प्रकार से मरता जाता है जैसे युद्ध में दुश्मनों के सिर काटे जाते हैं। लेखक भी अपने दुश्मनों को इस प्रकार धराशयी होते देख प्रसन्न होता है और 'क' को प्रसन्नतापूर्वक विदा करता है।

लेखक निन्दकों को बहुत महिमामय मानते हुए उनकी तीन श्रेणियाँ बनाता है। प्रथम श्रेणी के निन्दकों को वह मिशनरी निन्दक कहता है क्योंकि ये बिना किसी से वैर–द्वेष के किसी की भी निन्दा करने में निपुण होते हैं। दूसरे प्रकार के निन्दकों को लेखक ने सामूहिक निन्दक कहा है जहाँ एक व्यक्ति द्वारा की गयी निन्दा को अन्य आगे बढ़ाते रहते हैं। तीसरी प्रकार के निन्दक ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित निन्दक होते हैं, तो अपने मित्रों, सहयोगियों आदि की उन्नति से जलकर उनकी निंदा करते रहते हैं।

निन्दा के उद्‌गम पर विचार करते हुए लेखक बताता है कि जिस व्यक्ति में आत्महीनता का भाव होता है, वह अपनी हीनभावना, कमज़ोरी अथवा अयोग्यता छिपाने के लिए दूसरे की निन्दा करने लग जाता है। कुछ का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि वे सदा किसी–न–किसी की निन्दा ही करते रहते हैं। झूठ बोलना, आलस्य, अकर्मण्यता आदि निंदा से ही उत्पन्न होते हैं। बेकार और अपनी आजीविका कमाने की चिन्ता न करने वाले भी निन्दा–रस का आनन्द लेते रहते हैं।

लेखक ने कुछ लोगों को निन्दा रूपी पूंजी का व्यापार करते भी देखा है। ये लोग दूसरों की कलंक–कथाओं को नमक–मिर्च लगाकर प्रचालित करते हैं। निन्दा करने से निन्दक के अहं को सन्तुष्टि मिलती है। वह निन्दा–रस में डूबकर दूसरों के दोषों को ढूंढ़ता रहता है। निन्दा करने और सुनने में एक विशेष प्रकार का रस उत्पन्न होता है। इसलिए सूरदास ने 'निन्दा सबद रसाल' कहा है।

कठिन शब्दों के अर्थ

साइक्लोन = बवंडर। प्राणघाती = मार डालने वाले। स्नेह = प्रेम। अँकवार देना = अलिंगनबद्ध करना, गले लगाना। निःस्नेह = बिना प्रेम के। कँटीली = कांटों से भरी हुई। देह = शरीर। छल =

धोखा, कपट। हर्षोल्लास = आनन्द और प्रसन्नता आत्मीयता = अपनापन। नयन = नेत्र। असीम = बहुत अधिक। स्नेह–सिक्तवाणी = प्रेम से भरा स्वर। प्रयोजन = मतलब। मिथ्यावादी = झूठ बोलने वाले। निष्प्रयास = बिना प्रयत्न किए। निष्प्रयोजन = बिना किसी मतलब के। जघन्य = बुरे, निंदनीयाकर्म = कार्य। रणक्षेत्र = युद्धभूमि। निमग्न = डूबे हुए, लीन। श्वान = कुत्रा। तुष्टि = संतोष। निठल्ला = बेकार, खाली, जिसके पास मरने के लिए कोई काम न हो। अकर्मण्यता = कार्य न करना। अप्रतिष्ठित = इज्ज़त न होना। परायण = सुनाना। स्तब्ध = हैरान, चकित। क्षमता = शक्ति। पिलपिला अहं = खोखला अहंकार, व्यर्थ का घमण्ड।

सप्रसंग व्याख्या

1

इस सूचना के बाद जब आज सवेरे वह मेरे गले लगा तो मैंने शरीर से अपने मन को चुपचाप खिसका दिया और निःस्नेह, कँटीली देह उसकी बाँहों में छोड़ दी। भावना के अगर काँटे होते तो उसे मालूम होता कि वह नागफनी को कलेजे से चिपटाये है। छल का धृतराष्ट्र जब आलिंगन करे, तो पुतला ही आगे बढ़ाना चाहिए। (पृष्ठ 77)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' से उद्धृत किया गया है। इस व्यंग्यात्मक निबंध में लेखक ने निन्दा को एक दुर्गुण बताते हुए इससे बचने के लिए कहा है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक निन्दक मित्रों से औपचारिक व्यवहार करने का सुझाव देते हुए लिखता है कि जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उसका मित्र 'क' उसके मित्र 'ग' उसकी भरपूर निन्दा करने के बाद आज उससे मिलने आ रहा है तो इस सूचना के प्राप्त होने के बाद सचेत हो गया था। आज सुबह जब 'क' उससे मिलने आया और आत्मीयता प्रदर्शित करने के लिए उसके गले लगा तो लेखक उससे इस प्रकार गले मिलता है जैसे उसने अपने शरीर से अपने मन को पूरी तरह से अलग कर दिया हो और उसका स्नेह रहित कांटो भरा शरीर ही उससे गले मिल रहा है। वह सोचता है कि यदि भावना के कांटे होते तो 'क' को पता चलता कि वह किसी मित्र के शरीर से नहीं मिल रहा अपितु नागफनी के कांटों को अपने हृदय से चिपका रहा है। इसलिए वह कहता है कि यदि कोई व्यक्ति आपसे छलपूर्ण व्यवहार करता है तो उससे कभी भी सहज भाव से नहीं मिलना चाहिए बल्कि उस जैसे धृतराष्ट्र को अपना पुतला सौंप देना चाहिए अर्थात् ऐसे लोगों से आत्मीयता का व्यवहार न करते हुए औपचारिकता निभानी चाहिए।

विशेषः

(क) लेखक निन्दकों से मात्र औपचारिक व्यवहार रखने की राय देता है।

(ख) यहाँ लेखक ने धृतराष्ट्र द्वारा भीम के पुतले को गले लगाने की महाभारत की घटना को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करके छल–कपट करने वालों के साथ वैसा ही व्यवहार करने के लिए कहा है।

(ग) भाषा सरल तथा लाक्षणिक और शैली व्यंग्यात्मक है।

2

कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं; वे आदतन, प्रकृति में वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। उनके मुख से निष्प्रयास निष्प्रयोजन झूठ ही निकलता है। मेरे एक रिश्तेदार ऐसे हैं। वे अगर बम्बई जा रहे हैं और उनसे पूछें, तो वे कहेंगे, ''कलकत्ता जा रहा हूँ।'' ठीक बात उनके मुँह से निकल ही नहीं सकती। 'क' भी बड़ा निर्दोष, सहज, स्वाभाविक मिथ्यावादी है। (पृष्ठ 77–78)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य'शिखर' में संकलित तथा हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने निन्दा को निन्दकों के लिए 'रसाल शब्द' कहा है किन्तु आम लोगों को निन्दा तथा निन्दकों से दूर रहने की प्रेरणा दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक निन्दकों की झूठ बोलने की प्रवृत्ति से सावधान रहने के लिए कहता है। उसका कथन है कि कुछ लोग बिना किसी उद्देश्य के ही झूठ बोलते हैं। ये लोग बिना किसी द्वेष भाव से झूठ बोलने वाले होते हैं। वे अपने स्वभाव या आदत के कारण झूठ बोलते हैं। उनके मुख से सत्य निकलता ही नहीं है। वे बिना कोशिश किए और बिना किसी मलतब के सदा झूठ ही बोलते हैं। लेखक का एक रिश्तेदार भी ऐसा ही है। यदि उससे पूछो कि कहा जा रहे हो तो वह बम्बई जा रहा होगा तो भी कलकत्ता जा रहा हूँ कहेगा। ऐसे लोग कभी भी कोई सही बात नहीं कहते। इसी प्रकार से लेखक का मित्र 'क' भी बहुत भोला–भाला, सहज और स्वभाविक रूप से झूठ बोलने वाला है।

विशेषः

(क) लेखक निन्दकों को झूठ बोलने वाला मानता है।

(ख) सदा झूठ बोलते रहने से झूठ बोलने वालों का स्वभाव ही झूठ बोलने का बन जाता है।

(ग) भाषा तत्सम् प्रधान तथा शैली व्यंग्यात्मक है।

3

मैं अपने विरोधियों का नाम लेता गया और वह उन्हें निन्दा की तलवार से काटता चला। जैसे लकड़ी चीरने की आरा मशीन के नीचे मजदूर लकड़ी का लट्ठा खिसकाता जाता है और वह चिरता जाता है, वैसे ही मैंने विरोधियों के नाम एक–एक करके खिसकाये और वह उन्हें काटता गया – ''फलाँ चापलूस है ... अमुक एक नम्बर व्यभिचारी है'' कैसा आनन्द था। दुश्मनों को रणक्षेत्र में एक के बाद एक कटकर गिरते हुए देखकर योद्धा को ऐसा ही सुख होता होगा। (पृष्ठ 78)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने निन्दकों पर व्यंग्य करते हुए उनके लिए निन्दा को रस बताया है तथा लोगों को निंदा और निन्दकों से सावधान रहने के लिए कहा है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक निन्दा से प्राप्त आनन्द का वर्णन करते हुए लिखता है कि जब उसका मित्र 'क' सबकी निन्दा करने लगा तो वह उसके सामने अपने विरोधियों के नाम लेने लगा और 'क' उसके विरोधियों की अपनी निंदा रूपी तलवार से दुर्गत बनाता गया। उसे ऐसा लग रहा था जैसे लकड़ी चीरने वाले आरे की नीचे लकड़ी का लट्ठा लगाने से कटता चला जाता है वैसे ही उसके विरोधियों को भी उसका मित्र 'क' एक–एक कर के काटता जा रहा है किसी को वह चापलूस तो

किसी को व्यभिचारी कहकर उसकी निन्दा करता है। लेखक को भी अपने विरोधियों की दुर्गति बनते देख बहुत आनन्द आ रहा था। वह सोचता है कि जैसा उसे आज आनन्द आ रहा है शायद वैसा ही शत्रुओं का युद्धभूमि में एक के बाद एक मरते देखकर योद्धाओं को भी आता होगा।

विशेषः

(क) लेखक बताता है कि पर निन्दा सुनकर हमें आत्मतुष्टि होती है।

(ख) निन्दा सुनकर आनन्द लेना हमारी हीनभावनाओं को संतोष प्रदान करना है।

(ग) भाषा स्वाभाविक, सरल तथा शैली व्यंग्यात्मक है।

4

मेरे मन में गत रात्रि के उस निन्दक मित्र के प्रति मैल नहीं रहा। दोनों एक हो गए। भेद तो रात्रि के अंधकार में ही मिटता है; दिन के उजाले में भेद स्पष्ट हो जाते हैं। निन्दा का ऐसा ही भेदनाशक अंधेरा होता है। तीन–चार घण्टे बाद जब वह विदा हुआ तो हम लोगों के मन में ऐसी शान्ति और तुष्टि थी जैसे चर्च से निकलते हुए धार्मिक ईसाई के मन में होती है। (पृष्ठ 78)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' से उद्धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने निन्दकों पर व्यंग्य करते हुए उनसे सावधान रहने की चेतावनी दी है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक निन्दा से प्राप्त आनन्द का वर्णन करते हुए लिखता है कि पर निन्दा मनुष्य को इतना प्रभावित करती है कि वह जिसे निन्दक समझकर दूर रहने का प्रयास करता है वही उसका प्रिय बन जाता है। लेखक को अपना मित्र 'क' इसलिए अच्छा नहीं लगता था क्योंकि उसने 'ग' के पास लेखक की निन्दा करता है तो उसके मन से 'क' के प्रति दुर्भावना समाप्त हो गयी। दोनों ही एक–दूसरे में मिलकर एक हो गए। लेखक को लगता है कि समस्त भेदभाव रात के अंधेरे में समाप्त हो जाते हैं और दिन के प्रकाश में दिखाई देने लगते हैं। निन्दा भी इसी प्रकार से भेदों को दूर करने वाले अंधकार के समान होती है। लेखक के साथ तीन–चार घण्टे रहने के बाद जब उसका मित्र 'क' चला जाता है तो लेखक को लगा कि उसके और 'क' के मन में ऐसी शान्ति और सन्तोष की भावना उत्पन्न हो गयी है जैसी कि चर्च से निकलते समय किसी धार्मिक ईसाई के मन में होती है।

विशेषः

(क) निन्दा सुनकर निन्दा और निन्दक से दूर रहने वाला भी प्रभावित हो जाता है।

(ख) निन्दा के इस दुष्प्रभाव से दूर रहने का संकेत दिया गया है।

(ग) भाषा सहज एवं व्यंजना और लक्षणा शब्द शक्ति से युक्त है। शैली व्यंग्यात्मक है।

5

निन्दा का उद्‌गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। मनुष्य अपनी हीनता से दबता है। वह दूसरों की निन्दा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट हैं और वह उनसे अच्छा है। उसके अहं की इससे तुष्टि होती है। बड़ी लकीर को कुछ मिटाकर छोटी लकीर बड़ी बनती है। ज्यों–ज्यों कर्म क्षीण होता जाता है, त्यों–त्यों निन्दा की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। कठिन कर्म ही ईर्ष्या–द्वेष और इनसे उत्पन्न निन्दा को मारता है। (पृष्ठ 79)

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य–शिखर' में संकलित एवं हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निन्दा–रस' से उद्‌धृत किया गया है, जिसमें लेखक ने निन्दकों पर कटाक्ष करते हुए उनसे सावधान रहने के लिए कहा है।

व्याख्याः इन पंक्तियों में लेखक निन्दा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखता है कि निन्दा मनुष्य की हीन–भावनाओं तथा व्यक्तिगत कमज़ोरियों से उत्पन्न होती है। वह अपनी कमियों से दबकर दूसरों की निन्दा करता है और ऐसे करते हुए उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे बाकी सब उससे तुच्छ हैं और वह उन सबसे बहुत अच्छा है। इससे उसके अहंकार को भी सन्तोष मिलता है। जैसे बड़ी लकीर को मिटाने से छोटी लकीर बन जाती है वैसे वह भी दूसरों की निन्दाकर के स्वयं को महान् बना लेता है। इस प्रकार जैसे–जैसे व्यक्ति में कार्य करने की शक्ति कम होती जाती है उसमें निन्दा करने की आदत बढ़ती जाती है। लेखक का विचार है कि जीवन में कठिन परिश्रम करते हुए सफलता प्राप्त करने से ही ईर्ष्या–द्वेष से उत्पन्न निन्दा को समाप्त किया जा सकता है।

विशेषः

(क) लेखक ने निन्दा का उद्‌गम मनुष्य की हीन–भावनाओं से माना है।

(ख) सदा कर्म करते रहने वाले व्यक्ति निन्दा से भी दूर रहते हैं।

(ग) भाषा तत्सम् प्रधान तथा शैली सूत्रात्मक और विचार प्रधान है।

अनुशीलनी के प्रश्नों के उत्तर

प्र०1 हरिशंकर परसाई के जीवन और साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तरः **जीवनः** हिन्दी साहित्य में व्यंग्य लेखकों में प्रसिद्ध हरिशंकर परसाई का जन्म मध्य–प्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के जमानी नामक गाँव में 22 अगस्त, सन् 1924 ई० को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में ही प्राप्त करने के बाद इन्होनें नागपुर विश्वविद्यालय से एम०ए० (हिन्दी) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात् इन्होंने स्वतन्त्र रूप से लेखन कार्य आरम्भ किया। जबलपुर से उन्होंने 'वसुधा' नामक पत्रिका निकाली तथा 'सारिका' में 'कविराखड़ा बाज़ार में' स्तम्भ के अन्तर्गत व्यंग्यपूर्ण आलेख लिखते रहे। उन्होंने साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग तथा मुम्बई की चकल्लस संस्था ने पुरस्कृत एवं सम्मनित किया है। उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता भी की है। सन् 1995 ई० में इसका देहवसान हो गया था।

साहित्यः आधुनिक हिन्दी साहित्य के व्यंग्यात्मक–निबंध लेखकों में हरिशंकर प्रसाई का प्रमुख स्थान है। उन्हेंने निबंधों के अतिरिक्त कहानियाँ तथा उपन्यास भी लिखे है। इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

निबंध – बेईमानी की परत, भूत के पांव पीछे, तब की बात और थी, पगडंडियों का ज़माना, शिकायत मुझे भी है, ठिठूरता हुआ गणतन्त्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, निठल्ले की डायरी आदि।

कहानी – दो नाक वाले, माटी कहे कुम्हार से, हँसते हैं–रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे।

उपन्यास – तट की खोज, रानी नागफनी की कहानी।

इन का सम्पूर्ण लेखन ग्रन्थावली के रूप में राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है।

हरिशंकर परसाई मुख्य रूप से हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध लेखक हैं। अपनी मार्मिक टिप्पणियों के द्वारा वे समाज की विभिन्न विसंगतियों को उजागर कर उन्हें सुधारने के लिए पाठक को विवश कर देते हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, सम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता आदि पर तीक्ष्ण प्रहार किए हैं। 'निठल्ले की डायरी' में उन्होंने सरकारी तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, कुशासन आदि पर व्यंग्य किए हैं। 'भोला राम का जीव' में सरकारी–तंत्र की धीमी गति, लालफीताशाही आदि पर व्यंग्य है जिसमें एक सेवानिवृत व्यक्ति की अपनी पेंशन के लिए भटकते–भटकते मृत्यु हो जाती है परन्तु पेंशन उसे मरने के बाद ही मिल पाती है।

लेखक को आधुनिकता को अपनाने की दौड़ में अपनी संस्कृति और विरासत को भूलनेवालों का पाश्चात्य–जगत का अन्धानुकरण भी पसंद नहीं है। इसलिए उसने गिरते हुए नैतिक मूल्यों, बढ़ते हुए भौतिकतावाद, भारतीय संस्कारों के त्याग आदि पर भी चिन्ता व्यक्त की है। 'बर्थ–डे–केक' में लेखक ने ओढ़ी हुई आधुनिकता और संस्कारहीनता पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के निबंधों में भी लेखक ने टूटते और बिखरते हुए परम्परागत भारतीय संस्कारों एवं जीवन–मूल्यों पर अपने व्यंग्य–बाण चलाये हैं।

'निंदा–रस' निबंध में निंदकों के तीन वर्ग मिशनरी, सामूहिक तथा ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित कर के जहाँ निंदा को फैलाने वालों की मनोवृत्ति का परिचय दिया है वहीं निदंकों को अकर्मण्य, आलसी, पलायनवादी, हीनभावना से ग्रस्त आदि कर जन–सामान्य को निंदा तथा निदंकों से सावधान भी किया है क्योंकि निंदकों का संग अच्छा लगने पर हम भी उन्हीं में सम्मिलित हो जाते हैं। निदंकों को निर्दोष मिथ्यावादी, पिलपिले अहं से युक्त, मदनाशक अंधेरे को फैलाने वाले कहकर लेखक इन पर व्यंग्य ही करता है।

अतः कह सकते हैं कि हरिशंकर परसाई एक सफल व्यंग्य–लेखक हैं जो हमें अपने आलेखों द्वारा हँसाते तो हैं पर साथ ही उन सामाजिक विसंगतियों पर सोचने के लिए भी विवश कर देते हैं जिन्हें लेखक समाज के लिए घातक मानते हैं। उनके व्यंग्य अत्यंत तीक्ष्ण तथा मर्म भेदी हैं। इनकी रचनाओं में समाज की पूंजीवादी व्यवस्था के लिए आक्रोश तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति का स्वर सुनाई देता है। इन्होंने अपनी रचनाओं को सहज, सरल, स्वाभाविक एवं भावानुकूल भाषा में तथा व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, जिस में कहीं–कहीं आत्मपरक शैली के भी दर्शन होते हैं।

प्र०2 'निंदा–रस' निबंध के प्रतिपाद्य को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निंदा–रस' एक व्यंग्य–प्रधान रचना है, जिसमें लेखक ने समाज में व्याप्त निंदा नामक बुराई से मनुष्य को बचने के लिए प्रेरित किया है। लेखक के अनुसार निंदा करना अथवा किसी की निंदा सुनना उचित नहीं है क्योंकि इस से मनुष्य अपनी विश्वसनीयता खो देता है और परस्पर वैरभाव उत्पन्न हो जाता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए लेखक बताता है कि उसका 'क' नामक एक मित्र है, जो बहुत दिनों बाद लेखक से मिलने आता है, लेखक से मिलने से पहले उसके मित्र 'ग' से एक दिन पहले मिलकर उस के सामने लेखक की बहुत निंदा करता है। यह बात लेखक को पता चलती है तो वह अगले दिन 'क' के उससे मिलने आने पर 'क' के प्रति रूखा व्यवहार करता है। यदि 'क' 'ग' से लेखक की निंदा न करता तो लेखक का उसके प्रति ऐसा व्यवहार नहीं होता।

लेखक निन्दा को मुख्यरूप से ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित मानता है। जब कोई व्यक्ति अकर्मण्य होने के कारण स्वयं उन्नति नहीं कर पाता तो वह दूसरे की उन्नति देखकर उससे ईर्ष्या करने लगता है और उसकी निंदा करने लगता है। कुछ लोग तो चौबीसो घण्टे निन्दा करने में ही लगे रहते हैं। लेखक के अनुसार निंदक मिशनरी, ईर्ष्यालु और संघीय तीन प्रकार के होते हैं। मिशनरी निंदक बिना किसी कारण के ही किसी की भी निंदा कर सकते हैं। ईर्ष्यालु निंदक किसी की उन्नति पसंद न करने के कारण उसकी निन्दा करते हैं और संघ बनाकर निन्दा करनवाले एक दूसरे के द्वारा किसी की भी निन्दा का सर्वत्र प्रचार करते हैं।

लेखक ने यह भी माना है कि कुछ लोग निन्दारूपी पूंजी से अपना लम्बा–चौड़ा व्यापार फैला लेते हैं। इस प्रकार के लोग दूसरों की कमियों को नमक–मिर्च लगाकर रोचकरूप में दूसरों के सामने वर्णन करके स्वयं को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस प्रकार के लोग चापलूस किस्म के होते हैं। वे दूसरे की कमज़ोरी का लाभ उठाने के लिए उसके सामने उसके दुश्मन की निंदा करके अपना लाभ उठा लेते हैं। 'क' ने भी लेखक के सामने उसके विरोधियों की निंदा करके लेखक की सद्भावना प्राप्त कर ली थी।

लेखक निन्दा न करने की प्रेरणा देता है क्योंकि निन्दा करने वाले आत्महीनता के शिकार होते हैं। वे आलसी, अकर्मण्य और झूठे बन जाते हैं। लोग उनका विश्वास नहीं करते। अच्छे लोग उन्हें अपने पास भी नहीं फटकने देते। वे सदा दूसरों के दोष देखते रहते हैं।

प्र०3 निबंध के तत्वों की कसौटी पर 'निंदा–रस' की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः 'निंदा–रस' हरिशंकर परसाई द्वारा रचित एक व्यंग्यात्मक निबंध है, जिसमें लेखक ने निंदा और निंदक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए मनुष्य को इससे बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि इससे मनुष्य सद्गुणों को त्याग कर दुर्गुणों जैसे आलस्य, अकर्मण्यता, असत्य आदि को अपना लेता है और समाज में अपनी विश्वसनीयता खो बैठता है। इस निबंध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***वैयक्तिकता*** – व्यंगयात्मक निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व उभर कर आता है। वह अपने व्यक्तिगत अनुभवों को प्रस्तुत विषय के स्पष्टीकरण का आधार बनाता है। जैसे निदंकों के प्रति लोगों को सचेत करने के लिए लेखक अपने मित्र 'क' का उदाहरण देकर समझाता है कि 'क' उनसे मिलने से पहले उनके मित्र 'ग' के सामने उनकी भरपूरा निंदा कर चुका था इसलिए जब वह अगली सुबह आकर

लेखक के गले लगता है तो वह उस का स्वागत औपचारिक रूप से करता है और लिखता है, ''मैंने शरीर से अपने मन को चुपचाप खिसका दिया और निःस्नेह, कँटीली देह उसकी बाँहों में छोड़ दी।'' इस प्रकार लेखक ने अपने कथन को विश्वसनीयता प्रदान की है।

(ख) ***भावात्मकता*** – लेखक ने अपने इस निबंध में मानव मन के विभिन्न भावों को मनोवैज्ञानिक आधार पर अभिव्यक्ति प्रदान की है। मनुष्य को अपने विरोधियों की निंदा सुनने में बहुत आनंद आता है। इसलिए जब 'क' लेखक से मिलने आता है तो पहले वह उसके प्रति रूखा व्यवहार करता हे क्योंकि उसे ज्ञात हो गया था कि 'क' ने 'ग' उसे उसकी निन्दा की है परन्तु जब 'क' उसके सामने उसके विरोधियों की निंदा करने लगता है तो लेखक का अहं भी तुष्ट हो जाता है और वह लिखता है– ''मेरे मन में गत रात्रि से उस निंदक मित्र के प्रति मैल नहीं रहा। दोनों एक हो गए। भेद तो रात्रि के अंधकार में ही मिटता है; दिन के उजाले में भेद स्पष्ट हो जाते हैं। निंदा का ऐसा ही भेद नाशक अंधेरा होता है।''

(ग) ***व्यंग्यात्मकता*** – 'निंदा–रस' एक व्यंग्य–प्रधान निबंध है अतः लेखक इस निबंध में निंदकों पर तीक्ष्ण व्यंग्य–बाण चलाता रहता है। निन्दक निंदा कार्य में निमग्न होकर अपने बाप की पगड़ी उछालने से भी बाज नहीं आता। निन्दा निंदकों के लिए टानिक का काम भी करती है। लेखक के अनुसार एक मरणासन्न वृद्धा को जब यह पता चला कि पड़ोसी डॉक्टर की लड़की किसी के साथ भाग गयी है तो वह'' यह शुभ–संवाद अपने व्यक्तिगत कमेन्ट के साथ' जब आस–पास सुना आई तो उस की दशा भी सुधरने लगी थी। इसी प्रकार से निंदा की महिमा का व्यंग्यात्मक वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है। ''निंदा की ऐसी ही महिमा है। दो–चार निंदकों को एक जगह बैठकर निंदा में निमग्न देखिए और तुलना कीजिए दो–चार ईश्वर भक्तों से, जो रामधुन लगा रहे हैं। निंदकों की–सी एकाग्रता, परस्पर आत्मीयता, निमग्नता भक्तों में दुर्लभ है।

इसलिए संतों ने निंदकों को 'आंगन कुटी छवाय' पास रखने की सलाह दी है।''

(घ) ***कथात्मकता*** – निंदा–रस निबंध को रोचकता प्रदान करने के लिए लेखक ने कथात्मक–शैली का प्रयोग किया है। इसलिए निंदा और निंदकों की विवेचना करने से पहले लेखक अपने मित्र 'क' की कहानी सुना देता है और उसके माध्यम से बताता है कि निंदक कैसे झूठे, मतलबी, चापलूस आदि होते हैं। वे अपने अभिनय से दूसरे को मूर्ख बनाने की कला में भी निपुण होते हैं। इसी कारण 'क' लेखक के सामने उस के विरोधियों की निंदा करके उसकी सद्भावना प्राप्त कर लेता है।

(ड.) ***भाषा–शैली*** – लेखक ने 'निंदा–रस' निबंध में भावानुकूल सहज, स्वाभाविक एवं लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से लेखक की भाषा सरस तथा प्रभावशाली हो गयी है जैसे – गत करना, नागफनी को कलेजे से चिपकाना, मैल न होना, चौबीस घण्टे जलना आदि। इन्होंने अंग्रेज़ी के साइक्लोन, टॉनिक, ट्रेड युनियन तथा उर्दू के अखबार, कमबख्त, हरगिज आदि शब्दों का भी यथा स्थान प्रयोग किया है। इनकी शैली मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक है,

जिसमें कहीं–कहीं आत्मपरक, चित्रात्मक, भावात्मक आदि शैलियों के भी दर्शन हो जाते हैं।

वास्तव में 'निंदा–रस' एक सफल हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध है। जिसमें लेखक ने सर्वत्र सुसम्बद्धता बनाये रखी है तथा पाठकों को निंदा की नकारात्मक प्रशंसा सुनाते हुए इससे बचने की प्रेणा दी है।

प्र०4 'निंदा–रस' निबंध में व्यंग्यात्मकता का सुन्दर निर्वाह हुआ है– सोदाहरण पुष्टी कीजिए।

उत्तरः 'निंदा–रस' हरिशंकर परसाई द्वारा रचित ऐसा व्यंग्यात्मक निबंध है, जिस में लेखक ने निंदा और निंदक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए मनुष्य को इससे बचने के लिए प्रेरित किया है क्योंकि इससे मनुष्य अकर्मण्य, आलसी, असत्यवादी, चापलूस, स्वार्थी, अविश्वास आदि बन कर समाज में अपना मान–सम्मान खो बैठता है।

'निंदा–रस' निबंध के प्रारम्भ में ही लेखक अपने मित्र 'क' के आने का वर्णन इस प्रकार से करता है कि हास्य की सृष्टि हो जाती है– '' 'क' कई महीने बाद आए थे। सुबह चाय पीकर अखबार देख रहा था कि वे तूफान की तरह कमरे में घुसे; 'साइकलोन की तरह मुझे अपनी भुजाओं में जकड़ा। मुझे धृतराष्ट्र की भुजाओं में जकड़े भीम के पुतले की याद आ गई। वह धृतराष्ट्र ही की जकड़ थी। अंधे धृतराष्ट्र ने टटोलते हुए पूछा – ''कहाँ है भीम? आ बेटा, तुझे कलेजे से लगा लूँ।'' और जब भीम का पुतला उनकी पकड़ में आ गया, तो उन्होंने प्राणघाती स्नेह से उसे जकड़ कर चूर कर डाला।'' इस प्रसंग द्वारा लेखक यह बताना चाहता है कि जो व्यक्ति तुम्हारे साथ छल–कपटपूर्ण व्यवहार करते हैं उनके साथ तुम्हारा क्या व्यवहार होना चाहिए? एक दिन ही 'क' ने 'ग' से लेखक की भरपूर निंदा की थी इसलिए वह उससे खुलकर भेंट नहीं करता तथा उसका आना भी उसे 'बवंडर' जैसा लगता है।

लेखक ने निंदकों के विभिन्न वर्गों का विवरण देते हुए भी हास्य–व्यंग्य की सृष्टि की है जैसे– ''कुछ मिशनरी निंदक मैंने देखे हैं। उनका किसी से वैर नहीं, द्वेष नहीं। वे किसी का बुरा नहीं सोचते। पर चौबीसों घण्टे वे निंदा–कर्म में बहुत पवित्र भाव से लगे रहते हैं। उनकी नितान्त निर्लिप्तता, निष्पक्षता इसी से मालूम होती है कि वे प्रसंग आने पर अपने बाप की पगड़ी भी उसी आनन्द से उछालते हैं, जिस आनन्द से अन्य लोग दुश्मन की।''

इसी प्रकार से ट्रेड यूनियन के इस युग में निंदकों के संघ का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है, ''संघ के सदस्य जहाँ–तहाँ से खबरें लाते हैं और अपने संघ के प्रधान को सौंपते हैं। यह कच्चा माल हुआ। अब प्रधान उनका पक्का माल बनायेगा और सब सदस्यों को 'बहुजन हिताय' मुफ्त बांटने के लिए दे देगा।''

लेखक ने कुछ उक्तियों के माध्यम से भी हास्य की सृष्टि की है। जैसे– ''निंदा का उद्‌गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित निंदक बड़ा दुःखी होता है।'' ''भेद तो रात्रि के अंधकार में ही मिटता है।'' ''आपके कानों के घूरे में इस तरह का कचरा मजे में डाला जा सकता है।'' ''छल का धृतराष्ट्र जब आलिंगन करे, तो पुतला ही आगे बढ़ाना चाहिए।''

लेखक ने निंदक की हीनभावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य–बाण छोड़े हैं। जैसे – ''कभी–कभी ऐसा भी होता है कि हममें जो करने की क्षमता नहीं, वह यदि वह कोई करता

है तो हमारे पिलपिले अंह को धक्का लगता है, हममें हीनता और ग्लानि आती है। तब हम उसकी निंदा करके उससे अपने को अच्छा समझकर तुष्ट होते हैं।'' ऐसे लोगों को परिश्रमी मनुष्यों से सदा ईर्ष्या होती रहती है।

निंदा की रसालता बीमारों को भी अच्छा कर देती है। इसका उदाहरण लेखक ने उस वृद्धा की स्थिति से दिया है जो इतनी बीमार थी कि उठकर पानी में नहीं जा सकती थी परन्तु जब उसे पता चला कि डॉक्टर की लड़की किसी के साथ भाग गयी है तो वह 'एक दम उठी और काँखते–काँखते दो–चार पड़ौसियों को यह शुभ संवाद अपने व्यक्तिगत 'कमेन्ट' के साथ सुना आई।'' उस दिन से उसकी बीमारी ठीक होने लग गयी। इसी प्रकार से किसी की निंदा कैसे की जाए का उदाहरण लेखक ने इस प्रकार से दिया है कि ''बिमला और नरेन्द्र ने चुपचाप शादी कर ली थी जिसे निंदकों ने इस प्रकार से प्रसारित किया। ''बिमला का पांच–छः माह का गर्भ था, इसलिए जल्दी से घबड़ाकर ब्याह कर लिया।''

अतः स्पष्ट है कि 'निंदा–रस' निबंध में लेखक ने विभिन्न प्रसंगों तथा कथनों के माध्यम से हास्य–व्यंग्य की सृष्टि की है जिस कारण इस निबंध में व्यंग्यात्मकता का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

प्र०5 'निंदा–रस' निबंध की भाषा–शैली का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'निंदा–रस' एक व्यंग्यात्मक निबंध है, जिसमें लेखक ने, अत्यंत सहज रूप से, समाज में व्याप्त निंदा नामक बुराई का वर्णन करते हुए हास्य–व्यंग्य की सृष्टि की है तथा पाठकों को इस दुर्गुण से बचने की प्रेरणा दी है। इस निबंध की भाषा–शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) ***भाषा*** **–** भाषा लेखक के भावों की आत्मव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। उसे अपने विषय के अनुकूल सहज एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग करना होता है जिससे वह अपनी बात पाठकों तक आसानी से पहुंचा सके। 'निंदा–रस' निबंधों में लेखक ने आम–बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करते हुए अपने भावों को व्यक्त किया है। लेखक ने अपने इस निबंध में प्रसंगानुकूल तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेज़ी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। जैसे– 'सुबह चाय पीकर अखबार देख रहा था कि वे तूफान की तरह कमरे में घुसे; 'साइकलोन' की तरह मुझे अपनी भुजाओं में जकड़ा।'' लेखक ने प्रसंगानुकूल भाषा तथा वाक्यों का भी चयन किया है। जैसे निंदक संघ के अध्यक्ष के द्वारा लेखक से यह पूछे जाने पर की 'लोग तुम्हारे बारे में बहुत बुरा बुरा कहते हैं' तो लेखक उसे मुँहतोड़ उत्तर देता है, ''आपके बारे में मुझसे कोई भी बुरा नहीं कहता। लोग जानते हैं कि आपके कानों के घूरे में इस तरह का कचरा मजे में डाला जा सकता है।''

लेखक अपने शब्दों के माध्यम से किसी स्थिति अथवा घटना का सजीव वर्णन करते हुए चित्र–सा बना देता है। जैसे जब लेखक का मित्र 'क' उसके विरोधियों की निंदा करता है तो लेखक उस स्थिति की तुलना करते हुए लिखता है– '' जैसे लकड़ी चीरने की आरा मशीन के नीचे मजदूर लकड़ी का लट्ठा खिसकता जाता है और वह चिरता जाता है, वैसे ही मैंने विरोधियों के नाम एक–एक कर खिसकाए और वह उन्हें काटता गया।''

लेखक ने अपनी भाषा के सरसता प्रदान करने के लिए विशेषणों, मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सटीक प्रयोग किया है। जैसे– ''पिलपिला अहं, निर्दोष मिथ्यावादी, भेदनाशक अंधेरा; गत करना, नागफनी को कलेजे से चिपकाना, चौबीसों घण्टे, आदि।

(ख) ***शैली –*** 'निंदा–रस' मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक शैली में रचित निबंध है किन्तु इसका प्रारम्भ लेखक ने आत्मपरक शैली से किया है। जैसे – '' 'क' कई महीने बाद आये थे। सुबह चाय पीकर अखबार देख रहा था कि वे तूफान की तरह कमरे में घुसेः 'साइक्लोन' की तरह मुझे अपनी भुजाओं में जकड़ा।'' 'क' मित्र से सम्बन्धित प्रसंग का वर्णन करते समय लेखक की शैली कथात्मक हो गयी है और उस में संवादों के आने पर रोचकता एवं गति का समावेश हो गया है।

कुछ स्थलों पर लेखक ने भावात्मक विचार प्रधान शैली का प्रयोग किया है। जैसे– ''निंदा की ऐसी ही महिमा है। दो–चार निंदकों को एक जगह बैठकर निंदा में निमग्न देखिए और तुलना कीजिए दो–चार ईश्वर भक्तों से, जो रामधुन लगा रहे हैं। निंदकों किसी एकाग्रता, परस्पर आत्मीयता, निमग्नता भक्तों में दुर्लभ है।'' इस कथन में गम्भीरता के साथ–साथ तीक्ष्ण व्यंग्य भी छिपा हुआ है।

उन्होंने विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करते हुए उस में हास्य–व्यंग्य की छटा बिखेरी है। जैसे– ''ईर्ष्या–द्वेष से प्रेरित निंदा भी होती है। लेकिन इस में वह मजा नहीं जो मिशनरी भाव से निंदा करने में आता है। इस प्रकार का निदंक बड़ा दुःखी होता है। ईर्ष्या–द्वेष से चौबीसों घण्टे जलता है और निंदा का जल छिड़ककर कुछ शान्ति अनुभव करता है। ऐसा निंदक दयनीय होता है। अपनी अक्षयता से पीड़ित वह बेचारा दूसरे की सक्षमता के चाँद को देखकर सारी रात श्वान जैसा भौंकता है।''

अतः स्पष्ट है कि हरिशंकर परसाई ने 'निंदा–रस' निबंध में भावानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए व्यंग्य वाणों से समाज में व्याप्त निंदा जैसा विसंगति पर कटु प्रहार किए हैं तथा हास्य–व्यंग्य की सृष्टि करते हुए पाठकों को इस बुराई से बचने की प्रेरणा दी है।

मोहन राकेश

1. मोहन राकेशः जीवन और साहित्य–

जीवन–वृतः चर्चित साहित्यकार मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में हुआ है। इन्होंने लाहौर के ओरिएण्टल कॉलेज से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद हिन्दी और संस्कृत में एम०ए० की। इन्होंने आजीविका के लिए अध्यापन कार्य किया। इन्होंने सन् 1962–63 में 'सारिका' के सम्पादक रूप में महत्वपूर्ण कार्य किया। 3 दिसम्बर 1972 को हृदय गति रूक जाने से सदा के लिए आँखें बंद कर ली।

साहित्यः मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, निबंध यात्रावृत, आत्मकथा आदि गद्य–विधाओं को समृद्ध किया है।

1. ***नाटक*** – आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे।
2. ***एकांकी*** – अंडे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, दूध और दाँत।
3. ***उपन्यास*** – अंधेरे बंद कमरे, ना आने वाला कल, अन्तराल।
4. ***संकलन*** – मोहन राकेश की समस्त कहानियों को ''एक घटना, क्वाटर, पहचान तथा वारिस नाम से चार जिल्दों में प्रकाशित किया गया है। इन्होंने कुल 66 कहानियाँ लिखी हैं।
5. ***निबंध*** – परिवेश, बकल मखुद आदि।
6. ***यात्रा वृत्त*** – अखिरी चट्टान तक।
7. *जीवन* – समय सारथी।

मोहन राकेश की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। मोहन राकेश की रचनाओं में चिन्तन की प्रधानता है। प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन भी उनके गद्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। नाटककार होने के कारण इनकी शैली में सजीवता, सहजता एवं बोधगम्यता इनकी भाषा की अन्य विशेषताएँ हैं।

यात्रा वृत्तांत लेखक के रूप में मोहन राकेश का विशेष स्थान है। इनके यात्रा–वृत्तांत कलात्मक, साहित्यिक और भावपूर्ण है। इनके ये यात्रा विवरण कथात्मक हो गए हैं। लेखक ने कन्याकुमारी तथा उसके आस–पास के क्षेत्र का सजीव चित्र उपस्थित किया है। मोहन राकेश मूलतः कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में झलकता है। मोहन राकेश भावुक रचनाकार थे, लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सहज और सरल शब्दावली में व्यक्त किया है। लेखक ने सरल–सुबोध शैली में अपने विषय का प्रतिपादन किया है। वे किसी दृश्य का प्रभावपूर्ण चित्र खींचने में पूर्णतया सिद्धहस्त हैं।

2. मोहन राकेश की कहानियों में वर्णित नारी चेतना–

मोहन राकेश कहानी के चर्चित हस्ताक्षर हैं। इनकी कहानियां समकालीन जीवन से जुड़ी हुई हैं इस कारण इनमें जीवन के विविध रूपों के यथार्थ दर्शन हो जाते हैं। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप लेखक ने अपनी कहानियों में सामाजिक और नारी संचेतना पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है।

'मिसपाल' कहानी में नौकरी पेशा नारी का अंकन किया गया है। वह प्रारम्भ में जन्म कुण्डली पर विश्वास का अभिशप्त जीवन व्यतीत करती है। किन्तु बाद में चित्रकला और संगीत को सहारा बनाकर अपना जीवन व्यतीत करती है। 'आर्द्रा' की माँ ममतावश अपने बेटे को जीवन जीने की प्रेरणा देती है। 'सुहागिनें' कहानी में मनोरमा स्कूल की हेडमिस्ट्रेस है। वह पति से दूर रहने की पीड़ा सहन करके भी नौकरी कर रही है। जिससे उसकी नन्दों की शादी की जा सके।

दूसरी सुहागन उसकी नौकरानी काशी है। उसका पति साल में एक आधबार आकर सेब के बाग के पैसे उगाह कर चला जाता है। वह काशी से नृशंसतापूर्ण व्यवहार करता है, किन्तु वह जीविकोपार्जन में लगी ही रहती है।

'एक और जिन्दगी' की बिना विवाह के कुछ महीने बाद ही पति द्वारा छोड़े जाने पर अलग रह रही है और मास्टरनी बनकर जीवन जी रही है। साथ ही अपने बच्चों को भी संभाल रही है। 'अपरिचित' कहानी के पति–पत्नी भी विवाह के पाँच वर्ष बाद तक अपरिचित जैसे ही रहते हैं। पत्नी को पति की अधिक जड़ता और अति बौद्धिकता कुंठित कर जाती है और वह स्वयं को इस समाज से बिल्कुल अलग फिट अनुभव करती है।

नारी को स्नेह और सम्मान चाहिए, किन्तु नारी जब काम्य–पुरूष को वरण नहीं कर पाती तो उसका दाम्पत्य जीवन 'ग्लास टैंक' बनकर रह जाता है। जो देखने में तो सुन्दर होता है परन्तु उसमें जीवन की गूंज नहीं होती । इसी प्रकार से पति की अत्यधिक अर्थ लिप्सा और बौद्धिकता भी पत्नी को कुंठित कर देती है जैसा कि लेखक ने 'फौलाद का आकाश' कहानी में चित्रित किया है। आधुनिक नारी इतनी विद्रोही हो गयी है कि वह 'सेफ्टी पिन' कहानी में वैवाहिक जीवन की अवृत्तियों की पूर्ति पर पुरूष गमन करने में भी संकोच नहीं करती। 'वासना की छाया में' जानवर और जानवर' आदि कहानियों में भी काम वासना की पूर्ति के ऐसे ही घृणित वासनात्मक संदर्भ मिलते हैं। मोहन राकेश की कहानियों में वर्णित नारी जीवन से संघर्ष करते हुए जीने का प्रयास कर रही है। वह सम्बन्ध विच्छेद की पीड़ा को सहन करते हुए भी अपनी संतान का पालन–पोषण करती है। यत्र–तत्र पाश्चात्य रंग या विकार भी दिखाई देता है। समग्र चित्र उपयेागी तथा प्रेरक है।

3. मोहन राकेश की कहानियों में निरूपित पारिवारिक सम्बन्ध–

कहानीकार मोहन राकेश की कहानियों में वर्तमान पारिवारिक सम्बन्धों का निरूपण किया गया है। समकालीन युग में व्यक्ति–व्यक्ति के बीच जो दूरी बढ़ रही है, दीवार बन रही है और विचार बदल रहा है और नया रूप जन्म ले रहा है उन सबका वर्णन मोहन राकेश की कहानियों में प्राप्त होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् टूटते हुए संयुक्त परिवार रिश्तों में बदलाव आदि का वर्णन पारिवारिक सम्बन्धों का निरूपण इनकी कहानियों में मिलता है।

आज पारिवारिक दृष्टि से पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धों में अन्तराल आ गया है। आज विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान न होकर स्त्री–पुरूष की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र माना जाता है। मोहन राकेश ने 'एक और जिन्दगी' कहानी में पति–पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न स्थिति को स्पष्ट किया है। प्रकाश और वीना की शादी होती है किन्तु विवाह के कुछ महीने बाद ही वे अलग–अलग रहने लगते हैं। किन्तु लोकाचार के कारण कभी–कभी मिल लेते हैं। उनका एक बच्चा भी हो जाता है। वीना अंत में तलाक भी ले लेती है। प्रकाश दूसरी शादी कर लेता है। वह दूसरी पत्नी के साथ भी सुखी नहीं रह पाता, इसके विपरीत 'उसकी

रोटी' कहानी में बस ड्राइवर सुच्चा सिंह की पत्नी बालो सुच्चा सिंह की प्रतीक्षा में खड़ी एक–एक पल अत्यन्त व्याकुलता से व्यतीत करती है। 'मिस पाल' अकेलेपन की त्रासदी भोग रही एक महिला की व्यथाकथा है जिसका कोई परिवार नहीं है इस प्रकार कहानियों में बिखरते परिवार सामने आते हैं।

'मलबे का मालिक' कहानी भारत के विभाजन की व्यथाकथा कहती है। इसमें सारे सम्बन्ध इसलिए समाप्त हो जाते हें कि किसी की गिद्ध दृष्टि मकान पर थी। परन्तु 'आर्द्रा' कहानी में लेखक ने परिवार में माँ की ममता का अत्यन्त तटस्था के साथ विश्लेषण किया है जो अपने पुत्रों से बँधी हुई है। 'जख्म' कहानी में माता–पिता की अप्रतिबध्ता बच्चों को विद्रोही और उच्चश्रृंखल बना देती है। 'ग्लास टैंक' में मन वांछित पति के न मिलने पर दाम्पत्य सम्बन्धों में उत्पन्न दरारों का वर्णन किया गया है। इसमें समस्त पारिवारिक सुख–दुःखों का वर्णन प्राप्त होता है। 'नन्हीं' कहानी एक छोटी सी बच्ची की है, जिसकी माँ मर चुकी है, जब उसे नई माँ के आने का पता चलता है तो वह पुलकित हो उठती है, परन्तु नई माँ में अपनी माँ को न पाकर वह 'माँ और नई माँ' के बीच की दूरी को पार नहीं कर पाती।और सदा के लिए आंखे मूंद लेती है। 'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा और काशी सुहागिनें होकर भी पति से दूर रहने के लिए विवश है।

अतः हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश की कहानियों में दुःख–दर्द का बोझ है। चित्रित पारिवारिक सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन परम्परागत पारिवारिक सम्बन्ध बिखर रहे हैं और नवीन मूल्य उभर तो रहे हैं जहाँ समस्याएं ही समस्याएं हैं।

4. मोहन राकेश की कहानियों के विविध सोपान–

मोहन राकेश का नाम हिन्दी साहित्य में प्रमुख कहानीकार के रूप में लिया जाता है। इन्होंने 66 कहानियाँ लिखी हैं। ये कहानियाँ 'एक घटना' 'क्वाटर' पहचान, तथा वारिस शीर्षक के चार जिल्दों में प्रकाशित की गई है। अध्ययन की सुविधा एवं व्यवस्था देने के लिए इनकी कहानियों को निम्नलिखित सोपानों में विभाजित कर सकते हैं।

1. ***प्रारम्भिक कहानियाँ*** – मोहन राकेश की प्रारम्भिक कहानियों में समाज की सामूहिक व्यथा की प्रभावी कथा मिलती है 'मलबे का मालिक' 'परमात्मा का कुत्ता' 'फटा हुआ जूता' 'क्लेम' आदि। इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में चित्रित सामाजिक यथार्थ प्रेमचन्द तथा यशपाल की कहानियों से गम्भीरता से प्रभावित दिखाई देता है। कथन की दृष्टि से इन कहानियों में यथार्थ का स्थूल रूप व्यक्त हुआ है। इन कहानियों में कर्त्तव्यनिष्ठा का भाव और समाजोत्थान का भाव सामने आता है।

2. ***परिवर्तित परिवेश की कहानियाँ*** – मोहन राकेश की कहानियों का दूसरा सोपान परिवर्तित परिवेश के संदर्भों से जुड़ा है। इन कहानियों में लेखक की यथार्थपरक दृष्टि में तत्कालीन परिवेश की समस्याओं को सजीवता से उभारा है। 'जानवर और जानवर' 'मिसपाल' 'एक और जिन्दगी' आदि इसी सोपान की कहानियाँ हैं। जिनमें समाजिकता की अपेक्षा आत्म परखता अधिक है। इन कहानियों में विषम स्थितियों, दाम्पत्य सम्बन्धों के बदले रूपों आदि को प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ संवेदनशीलता एवं प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं।

3. ***कलावादी कहानियाँ*** – मोहन राकेश की कहानियों का तीसरा और चौथा सोपान कलावादी कहानियों का है। इनमें ग्लास टैंक, जख्म, सेफ्टी पिन, फौलाद का आकाश,

ठहरा हुआ चाकू आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में भाषा और शिल्प का चमत्कार दिखाई देता है। इनमें प्रतीकात्मकता, अमूर्तता, शिल्पगत चमत्कार आदि अधिक हैं। इस कारण इन कहानियों के शिल्प में यत्र–तत्र जटिलता का समावेश हो गया है। विषय वस्तु की दृष्टि से मोहन राकेश की कहानियों में पर्याप्त विविधता है। इनमें सहजता और संवेदनशीलता है। इनके पात्र पारिवारिक विघटन की पीड़ाओं को झेलते हुए यथार्थ से संघर्ष करते रहते हैं। शैलीगत विविधता के कारण इनकी कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान बनाये रखती हैं। भाषा की दृष्टि से भी उनकी कहानियाँ सहज एवं प्रभावमयी भाषा से युक्त हैं। वास्तव में इनकी कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं के नये प्रतिमान स्थापित करती हैं। इस प्रकार इनकी कहानियों में विविधता और प्रेरक गम्भीरता प्रकट होती है।

5. मोहन राकेश की भाषा–शैली–

मोहन राकेश का आधुनिक कहानी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रावृत्त, आत्मकथा आदि गद्य विधाओं को ना केवल समृद्ध किया है, अपितु इन्हें आधुनिक जीवन बोध से मंडित भी किया गया है। इनकी भाषा तोड़ एवं प्रजल है। भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं भावपूर्ण है। भाषा में पांडित्य और गम्भीरता पद–पद पर झलकती है। इनकी भाषा की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टव्य हैं–

1. ***प्राŒजल भाषा*** – भाव अभिव्यक्ति के साधन को भाषा कहते हैं। मोहन राकेश की भाषा प्राŒजल है। भाषा–भाव विचारों के अनुकूल है। कथाकार होने के कारण इनकी भाषा में प्रवाह पद–पद पर झलकता है। भाषा का तरल रूप उनकी साहित्य की विशेषता है।

2. ***शब्द योजना*** – लेखक ने भावानुकूल शब्द चयन किया है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों, का सुन्दर प्रयोग हुआ हैः यथा – ''संगम–स्थल, समाधि, क्षितिज दृष्यपट, सूर्योदय आदि''। लेखक ने 'गेस्ट हाऊस', टाइम टेबल, ग्रेजुएट आदि अंग्रेजी के शब्दों का सहज रूप में प्रयोग किया है। इसी प्रकार बेचैन, मेहमान, बेबसी, बेकारी, आदि उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।

3. ***वाक्य–विन्यास*** – मोहन राकेश का वाक्य–विन्यास बहुत प्रभावशाली है। वाक्य छोटे–छोटे हैं किन्तु वे बोधगम्य, भावानुकूल तथा व्याकरण सम्मत हैं। वाक्यों में शब्द इस तरह गुंथे हुए हैं, जैसे माला में मोती गुंथे हुए हों उनकी भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है– ''पानी और आकाश में तरह–तरह के रंग झिलमिलाकर छोटे–छोटे दीपों की तरह समुद्र में बिखरी स्याह चट्टानों की ओर से सूर्य उदित हो रहा था''। इस प्रकार भाव प्रवाह बना रहता है।

4. ***शैली*** – मोहन राकेश मूलतः कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से झलकता है। उनकी शैली में भावुकता, व्यक्तिकता एवं वर्णनात्मकता पद–पद पर झलकती है। उनकी शैली को निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

   (क) *वैयक्तिकता* – मोहन राकेश भावुक चर्चित रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में उनका भावुक व्यक्तित्व पद–पद पर झलकता है। 'आखिरी चट्टान' की निम्नलिखित पंक्तियों में उनके व्यक्तित्व की झलक मिलती है ''मेरा साथी

अब मोहल्ले–मोहल्ले के हिसाब से मुझे बेकारी के आंकड़े बता रहा था..... बेकारी की समस्या और सूर्योदय की विशेषता, इन दोनों से बेलाग।

(ख) *वर्णनात्मकता* – वर्णनात्मकता उनकी शैली का विशेष गुण है। लेखक ने सरल–सुबोध शैली में अपने विषय का प्रतिपादन किया है। यात्रावृत्त में तो वर्णनात्मक शैली की नितांत आवश्यकता होती है। मोहन राकेश की शैली का एकरूप दृष्टव्य है– ''नारियलों की टहनियाँ उसी तरह हवा में ऊपर उठी थीं, हवा उसी तरह गूंज रही थी, पर परे श्यामपट पर स्याही फैल गई थी।''

(ग) *चित्रात्मकता* – मोहन राकेश की कहानियों में सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव चित्रात्मक स्वरूप पाकर पूर्ण स्पष्ट हो गये हैं ऐसा लगता है जैसे उस संदर्भ में सजीवता आ गई है। ''सूर्य का गोला पानी की सतह से छू गया। पानी पर दूर–दूर तक सोना ही सोना दुल आया, पर वह रंग इतनी जल्दी–जल्दी बदल रहा था.....।''

6. मोहन राकेश की कहानियों के प्रमुख पात्र–

चर्चित कहानीकार मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में जीवंत पात्रों को लिया है जो हमारे आस–पास सजग सदस्य हैं। 'मलबे का मालिक' कहानि इस दृष्टि से एक सफल कहानी है। गनी मियां विभाजन से पूर्व पाकिस्तान चले जाते हैं साढ़े सात साल बाद अमृतसर आते हैं। अपने घर को मलबे में परिवर्तित देखकर अपने पुत्र को याद कर 'हाए औए चिरागदीना!'' कह उठते हैं। वे एक उदार, नेक और खुदापरस्त मुसलमान है। इसी कहानी का दूसरा पात्र रक्खा पहलवान गली का दादा है गनी मियाँ को उसपर बहुत विश्वास है।

मोहन राकेश की 'मिस पाल' कहानी की मिस पाल का सुख की विस्तृत चाह की अतृप्ति से कुंठित है। इस कारण उनका सारा जीवन ही अव्यवस्थित हो गया है। अकेलेपन का अहसास उनके जीवन को दूभर कर रहा है वह संगीत और चित्रकला से अपना मन बहलाने का प्रयास करती है। 'एक और जिंदगी' की वीना एक ऐसी नारी है जिसे विवाह के कुछ महीने बाद ही पति से अलग रहना पड़ता है। बाद में उसका उसके पति से सम्बंध विच्छेद हो जाता है। इस बीच वह माँ भी बन जाती है और बच्चे को स्वयं पालती है इसी कहानी का दूसरा पात्र प्रकाश बीना का पति है जो उससे तलाक लेकर दूसरा विवाह करता है पर उसका विवाह भी असफल रहता है। वह निरंतर दुःख में डूबता और हारता ही रहता है। ज़ख्म कहानी का छोटा पुत्र स्नेह के अभाव में मायावर, दुर्बल संकल्प वाला, चिढ़चिढ़ा और जीवन की सहज रूप में में जीने में असमर्थ बन गया है। 'सुहागिनी' कहानी में दो सुहागिनें हैं। पहली सुहागिन मनोरमा स्कूल में हेड मिस्ट्रेस है उसे पति से दूर रहकर नौकरी करनी पड़ रही है जिससे वह अपनी नन्दों का विवाह कर सके। इस कारण वह अतिरिक्त यौवन और मातृत्व से वंचित रहने के कारण निरंतर कुण्ठाग्रस्त रहती है। किन्तु अपनी नौकरानी काशी की बेटी कुन्ती के प्रति स्नेहिल है। बाहर से कठोर होते हुए भी वह मन से कोमल है। 'उसकी बेटी' की बालों सुच्चा सिंह की पत्नी है। उसे अपने पति से बहुत प्यार है। वह सदा उसके आने की प्रतीक्षा करती रहती है। उसे एक पतिव्रता स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार पात्रों में विविधता है।

लेखक ने कुछ इस प्रकार के पात्रों का चित्रण भी किया है, जिनका वह मात्र विवरण देता है। उनका नाम तक नहीं बताता, जैसे 'अपरिचित' कहानी में यात्रा करती नारी। जिसके बारे में

केवल इतना ज्ञान होता है कि वह अपने पति को विदेश यात्रा के लिये विदा करके आ रही है। लेखक ने अपनी कहानी के अनुरूप ही पात्रों का यथार्थ चित्रण किया है। मोहन राकेश के पात्र इस युग के सक्रिय तथा यथार्थ जीवन जीने वाले हृदय–स्पर्शी पात्र हैं।

7. मोहन राकेश के कहानियों में वर्णित यथार्थ बोध

चर्चित साहित्यकार मोहन राकेश नई कहानी के सशक्त कहानीकार हैं। इनकी कहानियाँ जीवन के यथार्थ से उपजी है। जिस कारण इनमें हमें आस–पास का जीवन सजीव रूप में दिखाई देता है। 'नन्हीं' मोहन राकेश की पहली कहानी है। इस कहानी की नन्हीं अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् आने वाली नई माँ में अपनी माँ को न देखकर इस संसार से विदा हो जाती है। जो समाज में व्याप्त सौतेली माँ के प्रति भावों का यथार्थ अंकन करती है। जिसके भय मात्र से ही नन्हीं इस संसार से ही आंखें मूंद लेती है। 'एक घटना' कहानी में एक परिवार की आर्थिक विपन्नता के अंकन से अनेक प्रश्न उठाये गये हैं। 'मलबे का मालिक' कहानी विभाजन की त्रासदी और मानवीय संवेदनहीनता का यथार्थ चित्रण करती है। गनी मियां के मकान को हड़पने के लालच में रखा पहलवान उसके बेटे और परिवार जनों को ही खत्म कर देता है। यह कहानी सम्प्रदायिकता की निर्दयता, क्रूरता और उसके शिकार लोगों की व्यथा कथा है। आधुनिक जीवन की ऊब, अकेलापन, सम्बन्धों की अर्थहीनता, दाम्पत्य सम्बन्धों में कडुवाहट आदि का सजीव चित्रण भी मोहन राकेश की कहानियों में प्रभावी रूप में है। 'मिसपाल' कहानी कुंठाग्रस्त ऐसी महिला की कहानी है जो हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण समस्त संसार को ही व्यर्थ समझती है। समाज से अलग होकर भी समाज में रहने के लिए विवश है। अपने माता–पिता से उपेक्षित होने के कारण वह निराशा, घुटन, यौनकुण्ठाओं, अकेलापन आदि भोगने पर विवश है। 'ग्लास टैंक' में युवतियाँ अपनी इच्छा से अपना वर खोजना चाहती हैं, पर थोपे गये दाम्पत्य जीवन को झेलने पर विवश हैं यह आज भी घर–घर की कहानी है।

'जानवर और जानवर' संग्रह की कहानियों में लेखक ने व्यक्ति के भीतर के फूटते विद्रोह, अविश्वास आदि को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। 'जानवर और जानवर' एक पादरी द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग की यथार्थवादी कहानी है। 'पांचवे माले का फ्लैट' ठहरा हुआ चाकू, सोया हुआ शहर आदि कहानियों में भी लेखक ने आधुनिक जीवन की विभिन्न विसंगतियों को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कह सकते हैं कि मोहन राकेश की कहानियों में युगीन सामाजिक यथार्थ को अत्यन्त प्रभावी रूप में अभिव्यक्ति मिली है। यह यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति इनकी कहानियों के लिए वरदान सिद्ध हुई है।

8. मोहन राकेश की कौन सी कहानी आप को पसंद है–

मोहन राकेश द्वारा रचित कहानी 'मलबे का मालिक' मुझे पसंद है। इस कहानी में लेखक ने भारत विभाजन और उसके बाद की घटनाओं का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

इस कहानी का प्रारम्भ भारत विभाजन के साढ़े सात वर्ष बाद भारत और पाकिस्तान के बीच हॉकी मैच देखने पाकिस्तान से अमृतसर आए हुए मुसलमानों द्वारा अमृतसर की सड़कों पर घूमने से होता है, इनमें एक गनी मियां है जो विभाजन से पहले अमृतसर के बांसा बाजार में रहते थे। वे विभाजन से पहले ही पाकिस्तान चले गए थे। उनका बेटा चिरागदीन अपने परिवार के साथ अमृतसर में रह गया था। गनी मियां उससे मिलने अपने मोहल्ले में आते हैं तो वहां कई नई इमारतें और कुछ मलबे के ढेर देखकर अपने मकान को नहीं पहचान पाते।

तभी मनौरी नामक एक युवक गनी मियां को पहचान कर उन्हें उनका मलबे में परिवर्तित मकान दिखाता है। और वहां अपने बेटे और परिवार को न पाकर चीखकर 'हाय ओए चिरागदीना' कह विह्ल हो उठता है।

मुहल्ले में कोई भी गनी मियां को यह नहीं बताता कि उसके बेटे और बेटे के परिवार को उसका मकान हड़पने के लिए रक्खे पहलवान ने मार दिया था। इससे पहले की रक्खा उस मकान पर कब्जा करता किसी ने उस मकान को आग लगा कर मलबे के ढेर में बदल दिया था।

मनौरी गनी मियां को रक्खे पहलवान से मिलाने कुएँ के पास जाता है, रक्खा पहलवान वहाँ बैठा हुआ था। पहलवान पर गनी को पूरा विश्वास था कि वह उसके बेटे और बेटे के परिवार की रक्षा करेगा। इसलिए उससे मिलते ही वह कह उठता है। 'देख रक्खे पहलवान क्या से क्या हो गया है? भरा–पूरा घर छोड़ गया था, आज यहां मिट्टी देखने आया हूँ। रक्खा उसे कोई उचित उत्तर न देकर इधर–उधर की बातें ही करता रहता है। गनी रक्खे के विश्वासघात से अनभिज्ञ रक्खे को आर्शीवाद देकर वापस चला गनी के चले जाने के बाद रात होने पर रक्खा पहलवान गली के बाहर तख्ते पर बैठा अपने शिष्यों को वैष्णों देवी यात्रा की कथा सुनाता है। बाद में मलबे पर बैठा लोकू पण्डित की भैंस को हटाता है। और चौखट के पास सुस्ताने लगता है। तो मलबे के एक कोने में लेटा हुआ एक कुत्ता उस पर भौंकने लगता है। वह कुत्ते पर ढेला फेंक कर वह उसे वहां से भगाना चाहता है। पर कुत्ता नहीं भागता, उस पर भौंकता रहता है। पहलवान मायूस होकर कुएँ की सिल पर जा लेटता है। इस प्रकार रक्खे का स्वप्न भंग हो जाता है। और कुत्ता मलबे का मालिक बन बैठता है। कहानी में दर्द भरी दास्तान है, विश्वासघात है और उसका दुःखद परिणाम भी है।

9. मोहन राकेश ने अपनी कहानियों के शीर्षक किस आधार पर रखे हैं?

शीर्षकों की भाषा कहानी के संदर्भ को प्रकट कर देती है। यह उसकी सफलता होती है। मोहन राकेश की कहानियों के शीर्षक अपनी विशिष्टता से युक्त है। लेखक ने अपनी कहानियों में शीर्षकों को आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया हैं उनकी कहानियों के अधिकांश शीर्षक प्रतीकात्मक, भावव्यंजक, व्यंग्यात्मक तथा प्रभावोत्पादक है। इसका मुख्य कारण यह है कि लेखक चाहता है कि एक झलक में कथानक सामने आ जाय और उसकी कहानी के शीर्षक इतने तीखे हों कि उनका प्रभाव पाठक को देर तक कचोटता रहे क्योंकि वह चोट ही क्या जिसके कारण कुछ देर तक चोट वाली जगह को सहलाना न पड़े। उदाहरण के लिए 'मंदी' कहानी का शीर्षक अत्यंत व्यंग्यपूर्ण है क्योंकि पर्वतीय पर्यटन स्थल में आशा के विपरीत ग्राहकों के न आने से वहां के होटलवालों, ढाबेवालों के लिए इतनी मंदी आ जाती है कि जब नत्था सिंह पर्यटक के न आने पर उसके लिए बनाया मुर्गा स्वयं ही खाने बैठ जाता है।

'एक और जिंदगी' कहानी का शीर्षक बहुत स्पष्ट है क्योंकि इस कहानी में दाम्पत्य सम्बंधों में तनाव के कारण नायक जब प्रथम पत्नी से सम्बंध विच्छेद के बाद दूसरा एक और विवाह करता है। तो यहां भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। 'सुहागिनें' कहानी की दोनों सुहागिनें मनोरमा और उसकी नौकरानी काशी सुहागिनें होते हुए भी जीविकोपार्जन करने के लिए पति से दूर रही है। उन्हें पति का सुख प्राप्त नहीं है पर फिर भी वे सुहागिनें हैं कितने दयनीय चित्र हैं। 'मिसपाल' कथानायिका मिस पाल के नाम पर आधारित शीर्षक है क्योंकि इस कहानी में मिसपाल की व्यथा–कथा ही कही गयी है।

'आर्द्रा' कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है जिस में एक माँ अपने दीन, आरक्षित, असहाय, बेकार और बेलाग छोटे बेटे बिन्नी के प्रति उतनी ही ममतामयी होकर उसे अपने स्नेह से भर देती है। जैसे की आर्द्रा नक्षत्र करूणा का सजल बादल बनकर पृथ्वी पर छाया रहता है। 'मलबे का मालिक' शीर्षक भी प्रतीकात्मक है क्योंकि इस कहानी में एक मकान हड़पने के लिए रखा पहलवान अपने मित्र और उसके परिवार की हत्या कर देता है, किन्तु कोई व्यक्ति उस मकान को आग लगा देता है। उस मलबे के ढेर पर बैठा कुत्ता पहलवान के हटाने पर भी नहीं हटता और उसपर भौंकता रहता है। बेबस पहलवान कुएँ की सिल पर जाकर लेट जाता है और पाठक सोचता ही रह जाता है कि मलबे का मालिक कौन हुआ। 'परमात्मा का कुत्ता' शीर्षक एक व्यंग्यात्मक शीर्षक है। इस कहानी में बेवफादार दफ्तरी कुत्ते और एक दलित व्यक्ति जो अपना काम उन कुत्तों को पाठ पढ़ाकर लेता है, परमात्मा का कुत्ता बन जाता है।

निश्चय ही मोहन राकेश की कहानियों में शीर्षक सहज रूप से पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है। इनसे प्रथमा दृष्टया कथानक के आभास से प्रभावी रूप सामने आता है।

10. मोहन राकेश की कहानियाँ सामाजिकता से वैयक्तिकता की तरफ लौटी हैं?

चर्चित कहानीकार मोहन राकेश कहानी के ऐसे सशक्त कथाकार हैं, जिनकी कहानियों में अपने आस–पास के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इनकी प्रारम्भिक कहानियों में व्यक्ति की अपेक्षा, समाज अधिक प्रभावी रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'मन्दी' कहानी किसी व्यक्ति विशेष की न होकर पर्वतीय पर्यटन केन्द्र पर पर्यटन के दिनों में भी पर्यटकों के न आने पर मन्दी झेल रहे होटलवालों, दुकानदारों, ढाबे वालों आदि पर्यटन उद्योग से जुड़े समाज के सभी वर्गों की व्यथा–कथा कहती हैं। यह प्रतिकात्मक कहानी है। पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'मलबे का मालिक' कहानी भारत विभाजन की विनाशलीला और साम्प्रदायिकता पर आधारित है, में भी सामाजिक मनोविज्ञान के आधार पर मानव मन की कुवृत्तियों को रक्खा के रूप बताकर उसकी जैसी मनोवृत्ति वाले समस्त मानव समाज की मनोवृत्तियाँ बताना है। 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी भी सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हुए सामाजिक सुधार की भावना से जुड़ी कहानी है। कलेम, फटा हुआ जूता, मवाली आदि कहानियाँ भी सामाजिक सरोकार भी कहानियाँ हैं। इनमें सामाजिक संदर्भों का स्पष्ट बोध होता है।

मोहन राकेश की बाद की कहानियों में समाज के स्थान पर व्यक्ति प्रधान होता गया है। जैसे मिस पाल कहानी में कुण्ठाग्रस्त मिस पाल का अपने अकेलेपन से जूझने का संघर्ष है 'जानवर और जानवर' में पादरी का धार्मिक व्यक्ति से जानवर बन जाता है। 'एक और जिंदगी' में प्रकाश का दो–दो विवाह करके भी पछताना पड़ता है। इन कहानियों में राकेश वैयक्तिक और पारिवारिक स्तर पर जिस यथार्थ बोध को लेकर चले हैं। वह परिवर्तित चेतना परिवेश से युक्त होने के कारण समसामयिक बोध से सम्बन्धित है। इन कहानियों में मानव मन की कुण्ठाग्रस्त स्थितियों, अकेलेपन की व्यथा, पति–पत्नी के बदलते सम्बंधों आदि को मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मोहन राकेश ने अपनी कथायात्रा सामाजिक यथार्थ के सहज चित्रण से प्रारम्भ की थी किन्तु बाद में वैयक्तिक अनुभूतियों के चित्रण का भावात्मक रूप उभरता आया है। उनकी कहानियों में सामाजिक संदर्भों को प्रभावोत्पादक चित्रांकन मिलता है। जो इनकी कहानियों की सफलता का परिचायक है।

मालती जोशी

1. मालती जोशी के जीवन एवं साहित्य का परिचय–

मालती जोशी देश की स्वतंत्रता के बाद की अग्रणी कहानीकार है। इन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जीवन और जगत् की अनुभूतियों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इनका जन्म औरंगाबाद में 4 जून, सन् 1934 ई० की महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनको पिता श्री कृष्ण राव और माता श्रीमती सरला से अच्छे संस्कार मिले हैं। इन्होंने आगरा से हिंदी में एम० ए० की परीक्षा पास की है, इनके पति श्री सोमनाथ जोशी भोपाल में इंजीनियर थे। इनके दो पुत्र हैं। सहित्यकार माँ के दोनों पुत्र कालाकार हैं।

मालती जी सुप्रसिद्ध लेखिका होने के साथ–साथ एक सफल गृहिणी भी है। इनके साहित्य में जवान होती बेटी की पिता महंगाई दहेज समस्या आदि का प्रायः उल्लेख दिखाई देता है। ये स्वभाव से विनोद प्रिय है। बहुमुखी प्रतिभा की स्वामिनी मालती जी कवयित्री होने के साथ 2 बाल कहानीकार व्यंग्यकार, रेडियो–नाटककार और कुशल अनुवादिका भी है। इन्होंने साहित्य क्षेत्र में प्रवेश गीतों के माध्यम से किया था। यह विद्यार्थी काल से ही कविताएं लिखा करती थी। मराठी भाषी परिवार की हिंदी कवयित्री आगे चलकर हिंदी कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उन्होंने स्वयं लिखा है, ''मैं किशोर वयस् से गीत लिखा करती थी पर बाद में लगा अपनी भावनाओं को सही अभिव्यक्ति देने के लिए कविता का कैनवास बहुत छोटा है। कविता की धारा सूख गई और कहानी का जन्म हुआ है। इनकी पहली कहानी सन् 1971 ई० में 'धर्म युग' में प्रकाशित हुई। यह अत्यंत संवेदनशील और सहज हैं। इन्हें गीत–संगीत से बेहद लगाव है।

कृतित्वः

(क) ***उपन्यास*** – राग–विराग, सहचारिणी, ज्वालामुखी के गर्भ में, पाषण युग, निष्कासन, पटाक्षेप, गोपनीय, ऋणानुबंध, चांद अमावास का, समर्पण का सुख, शोभा यात्रा आदि।

(ख) ***कहानी संग्रह*** – मध्यांतर मन न भये दस–बीस, एक घर सपनों का, मोरी रंग दी चुनरिया, बोल री कठपुतली, अन्तिम आक्षेप एक सार्थक दिन, महकते रिश्ते, शापित, शैशव, हालें स्ट्रीट, बाबुल का घर आदि।

(ग) ***बाल–साहित्य*** – दादी की घड़ी, रिश्वत एक प्यासी सी दिल्ली, रंग बदलते खरबूजे, बेचैन, एक कर्जः एक अदायगी, बड़े आदमी, और वह खुश था, जीने की राह आदि।

(घ) ***मराठी कथा–संग्रह*** – पाषण युग (लघु उपन्यास), एक और देवदास, टूटने से जुड़ने तक, कुहासे (कहानियाँ) आदि।

इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'शोभा यात्रा' पर टी०वी० सीरियल बन रहा है।

2. मालती जोशी की कहानियों के 'शीर्षकों' के आधार–

हिन्दी कहानी परंपरा में मालती जोशी का विशेष योगदान है, इन्होंने अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें लगभग एक सौ कहानियां संकलित हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के कुछ शीर्षक नायक–नायिकाओं के नाम पर रखे पर नहीं रखे। बुआ जी, नकुल, फिर आना, बबलू जवान हो गया आदि कुछ ही कहानियाँ ऐसी हैं अन्य कहानियों में उन्होंने भावात्मकता और प्रतीकात्मकता का सहारा लिया है। टूटने से जुड़ने तक, कलंक, संदर्भहीन, मानिनी, मध्यान्तर, कुहासे, छोटा सा मन, बड़ा सा दुःख, अनुभूति का जन्म, सफेद क्रूर, ढाई आखर प्रेम का, स्नेह बंध, क्षमा, कोहरे के पाट, मनधुआँ, पहली बार, दूसरी दुनिया, सपने, बेड़िया, एक जंगल, आदमियों का, शराफल, प्रश्नों के भंवर, अक्षम्य, सन्नाटा, आखिरी सौगात आदि सभी प्रतीकात्मकता पर आधारित कहानियाँ है। इनमें समाज की विभिन्न अनुभूतियों को वाणी प्रदान की गई है, विभिन्न स्थानों और घटनाओं के आधार पर भी कुछ कहानियों का नामकरण किए गए हैं, जैसे – परिणय, मै तो शकुन दूं, गुड़िया का दहेज, खेल और खिलौने, चोरी, गुड मार्निंग, मिस मैथ्यूज़, स्वयंवर, फेयर बैल, एक घर सपनों का, ममता तू न गई मौरे मनतै परायी बेटी का दर्द, हम को दिया परदेस, आखरी सौगात आदि। इन नामों से कहानियों के कथा–संदर्भ का स्पष्ट बोध हो जाता है।

मालती जोशी की कहानियों के शीर्षकों के आधार पर विचार करते हुए निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(1) ***बकुल फिर आना*** – माँ बाप ने नकुल नामक अपनी बेटी का विवाह दहेज सहित किया था। पर उसके ससुराल वालों ने उसे दहेज कम लाने के कारण जलाकर मार डाला था।

(2) ***दूसरी दुनिया*** – उच्च शिक्षित सुषमा अपने पिता की गरीबी के कारण मनपसंद लड़के से शादी नहीं कर पाती। विवाह के बाद उसकी दुनिया ही बदल गई।

(3) ***यातनाचक्र*** – दहेज की समस्या के कारण प्रेम की एक बाल बच्चेदार विधुर से विवाह करने के लिए विवश होना पड़ता है।

(4) ***मध्यांतर*** – लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवार की विमल के माध्यम से यह दर्शाया है कि कामकाजी महिला चाहकर भी नौकरी नहीं छोड़ पाती क्योंकि उसे परिवार की जिम्मेदारियां पूरी करनी होती हैं।

(5) ***यथार्थ से आगे*** – लेखिका ने इस कहानी में बेमेल विवाह का वर्णन किया है।

(6) ***एक घर सपनों का*** – शराबी और निकम्मे पति के द्वारा तिरस्कृत नारी की पीड़ा इस कहानी में व्यक्त की गई है।

(7) ***मानिनी*** – लेखिका ने बांझ नारी को प्राप्त होने वाली पीड़ा अपमान और प्रताड़ना का वर्णन शीला भाभी के माध्यम से किया है।

(8) ***औकात*** – उच्च वर्ग के द्वारा मध्यमवर्ग के अपमान को प्रकट किया गया है। और आर्थिक विषमता को वाणी प्रदान की गई है।

(9) ***सपने*** – दीपक के द्वारा अपनी पत्नी की बहन के प्रति कामुक दृष्टि को प्रकट करते हुए लेखिका ने स्पष्ट किया है कि ऐसा करने से उसे कोई पाप बोध नहीं होता।

(10) ***शुभकामना*** – सदानंद नामक आदर्शवादी व्यक्ति को भी पदोन्नति के लालच में आदर्शों से गिरता हुआ चित्रित किया है।

जोशी कुशल कहानीकार हैं और उन्होंने अपनी कहानियों को सार्थक और सटीक नाम दिए हैं। सफल शीर्षकों से इनकी कहानियों के प्रति जहाँ आकर्षण उत्पन्न होता है, वहीं उनका कथानक प्रथम दृष्टता सामने आ जाता है।

3. मालती जोशी के प्रमुख नारी चरित्र

मालती जोशी की कहानियों में विविध उम्र, वर्ग, शिक्षा, स्तर और परिवेश की नारी पात्राएँ हैं। इस प्रकार उनके चरित्र में विविधता होना स्वाभाविक हैं

1. ***वन्दना*** – 'शोभायात्रा' में वन्दना को राजनीतिक सत्ता के नशे में चूर एक मंत्री–परिवार की बहू के रूप में चित्रित किया गया है। जहाँ स्वार्थ पूर्ति के लिए हत्या और षडयंत्रों से कोई परहेज नहीं किया जाता है। वन्दना का खूंखार पति मनोज किसी की हत्या कर देता है और इस इल्जाम से बचने के लिए अपनी पत्नी और बहन का इस्तेमाल करने से भी नहीं चूकता है।

2. ***नीरज*** – 'पाषणयुग' में लेखिका ने नीरज के माध्यम से की स्वतंत्रता की ओर संकेत किया है। नीरज अपने के शोधकार्य के चक्कर में अपना शोध कार्य ठप्प कर लेती है।

3. ***नीलम*** – 'सहचारिणी' में नीलम एक संवेदनशील नारी है। इसका पति अहंवादी पुरूष है। विषम परिस्थितियों के कारण दोनों का जीवन अभिशप्त है। पति–पत्नी के सम्बंधों और उनमें तनाव को प्रकट किया गया है।

4. ***निधि*** – 'पुनरागमनायच' की नायिका निधि अपने मंगेतर दीपक से विवाह पूर्व ही गर्भवती हो जाती है। विचित्र स्थिति तब होती है जब दीपक की एक दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है निधि पर गर्भपात कराने का जोर पड़ता है। और उसका दूसरा विवाह भी अनुत्तरित रह जाता है।

5. ***सुनीता*** – 'चाँद अमावस' का में सुनीता विधवा है। जिसको पुनः विवाह के लिए प्रयत्न किया जाता है। इसमें प्रेमी द्वारा प्रेमिका के लिए त्याग को सहज स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

6. ***गीता*** – 'समर्पण का सुख' में गीता और राजू के दाम्पत्य जीवन का आधार बना। पढ़ी–लिखी गीता के द्वारा दब्बू पति राजू के प्रति समर्पण भाव दिखाया गया है। वह घर सम्भालने के लिए पति के आग्रह पर नौकरी भी छोड़ देती है।

7. ***'भाभी'*** – 'विश्वास गाथा' की प्रमुख नारी पात्रा भाभी है वह रूढ़ि–परम्परा और अन्धविश्वासों का जीवन जीती है। विश्वास के महत्व को एक परिवार के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

8. ***मालती*** – 'राग–विराग' में मालती के माध्यम से विभिन्न पारिवारिक समस्याओं को उजागर किया गया है। वह शिक्षित मध्यम वर्गीय परिवारों में उत्पन्न होती है। दाम्पत्य जीवन को संघर्ष और विद्रोह को आज के सन्दर्भ में सहज रूप से प्रस्तुत किया गया है।

9. ***छवि*** – 'पटाक्षेप' में छवि के माध्यम से प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया गया है। छवि का पति उच्च शिक्षा–प्राप्ति के लिए विदेश चला जाता है। वह दो वर्ष तक पलकें बिछाये उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। पति के बिना उसे ससुराल का घर 'वेटिंग रूम' सा लगता है।

10. ***मन्दा मिसरानी*** – 'ऋणानुबंध' में मन्दा मिसरानी अपने मालिक की कामुकता का शिकार बनती है। अवैध सन्तान के साथ आजीवन अनब्याही रहकर मालिक की दया पर जीने के लिए विवश हो जाती है।

4. 'मालती जोशी की कहानियों में से एक पसन्द कहानी'

'बाबुल का घर'

मालती जोशी हिंदी की श्रेष्ठ महिला कहानीकार हैं। इनकी लेखनी से शताधिक कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं। इनकी रोचक कहानियों में 'बाबुल का घर' उल्लेखनीय कहानी है।

मालती जोशी रचित 'बाबुल का घर' कहानी मनोविज्ञान पर आधारित है। इसमें बहन–बहन के प्रति ईष्या–प्रेम, एक माँ का बेटी के प्रति ममत्व, भाभियों का नन्दों के प्रति दुर्व्यवहार आदि को पारिवारिक सन्दर्भ में चित्रित किया गया है। इस कहानी में जब बड़ी बहन पम्मी अपनी छोटी बहन की शादी में घर आती है तो घर वाले लोग उसे घेर लेते हैं और रास्ते की थकान को भी दूर नहीं कर पाती। रास्ते में उसे नींद नहीं आई क्योंकि अटेची में दस हजार रूपये थे और उसे उनकी चोरी का डर था। छोटी बहन सुमि की शान–शौकत देखकर वह हैरान रह जाती है। जब उसकी शादी हुई थी तो चार खम्भे गाड़कर शादी कर दी गई थी। सुमि के गहने लाने के लिए अम्मा उसे बाजार ले जाती है। वह उन गहनों को पम्मी की देन बताती है। जिस पर उसे गुस्सा आता है। जब सुमि अपनी बहन को धन्यवाद देती है तो वह कहती है कि तुम तो कम से कम यह दिखावा मत करो। सुमि अपनी बहन को बताती है कि धर में कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता। सब अपने काम में व्यस्त रहते हैं। दुल्हन के चेहरे पर जो चम्पई रंग होता है वह भी सुमि के चेहरे पर मटमैला पड़ गया है। सुमि बड़ी बहन से 18 वर्ष छोटी है तो भी उससे चिढ़ती थी। उसी कारण उसकी पढ़ाई रूक गई थी और उसे घर का सारा काम करना पड़ता था। भगवान ने उसका भाग्य अच्छा लिखा था कि विवाह के बाद उसके पति का कारोबार अच्छा चल गया था। उसके भाग्य में सब प्रकार के सुख आए। सुमि को अपनी माँ की बहुत चिंता थी, यह जानकर बड़ी बहन के मन में सुमि के प्रति ममता जागी। उसने दस हजार रुपये उसे देते हुए कहा कि वह उन्हें माँ के नाम जमा करा दे और चिंता से मुक्त हो जाये। हर महीने उन्हे कुछ न कुछ मिलता रहेगा और उनका पूजापाठ का काम भी चलता रहेगा। पहली बार शायद उसे लगा कि सुमि के चेहरे पर तनाव कुछ कम हुआ है और हंसी की एक हल्की सी किरण बस फुटने ही वाली है इस कहानी में पारिवारिक सहज रूप का चित्रण है।

5. मालती जोशी की कहानियों की प्रमुख समस्याएँ–

मालती जोशी एक संवेदनशील कहानी लेखिका है जिसने समाज से जुड़ी अनेक समस्याओं को अपनी कहानी के माध्यम से प्रकट किया है। समस्याओं की विविधता में उनकी सामाजिक दृष्टि का भी बोध होता है।

1. ***वैवाहिक समस्या–*** लेखिका ने अपनी अनेक कहानियों में विवाह प्रथा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है। 'बाबुल का घर' में दीदी 25 वर्ष पहले हुई अपनी शादी के विषय में सोचती है बिना धन खर्च किये उसकी शादी बस किसी प्रकार कर दी गई थी परन्तु समय बदलने के साथ विवाह में दिखावे के लिए धन बहाया जाता है। भारतीय समाज में लड़की के लिये वर खोजना बहुत कठिन काम है। 'रेट महल' कहानी में आलोक जब मीरा से पूछता है तुम्हारे स्टाफ वालों ने तुम्हें शादी में क्या तोहफा दिया तो वह बताती है कि रिश्तेदारों की भीड़ के कारण वह किसी को बुला नहीं पाई। मध्यवर्गीय परिवारों के लिए विवाह प्रथा बड़ी बोझिल होती है।

2. ***दहेज समस्या –*** भारतीय समाज में दहेज की कुप्रथा का प्रचलन है। लड़की के माता–पिता बेटी को कितना भी दहेज क्यों न दें ससुराल में कोई सन्तुष्ट नहीं होता। उसे ताने ही सुनने पड़ते हैं। 'बाबुल का घर' कहानी में दीदी को फटीचर दहेज के कारण कई बातें सुननी पड़ी थी। दहेज की कमी के कारण बहुओं को यातनाएं भी दी जाती है, मार भी दिया जाता है।

3. ***कर्त्तव्यहीनता –*** लेखिका ने अपनी अनेक कहानियों में व्यक्तियों को अपने दायित्व से दूर भागते हुए चित्रित किया है। 'रेत महल' कहानी में बड़ा भाई शादी होते ही माँ और छोटी बहन को छोड़कर अलग हो जाता है। वह अपने दायित्व से पलायन कर जाता है। पति अपनी पत्नी को धन के लालच में तलाक दे देते हैं। इस प्रकार कर्तव्यहीनता, लोलुपता, समस्या बनी है।

4. ***संबंधों में औपचारिकता –*** आधुनिक परिवारों में आपसी सम्बंध बहुत औपचारिक हो गये हैं 'रेतमहल' कहानी में भैया–भाभी मीरा के लिए वर ढूढ़ने की औपचारिकता करते हैं। 'बुआ जी' कहानी में पारिवारिक सम्बंधों में आ गई औपचारिकता का बहुत यथार्थ वर्णन किया गया है। इस कहानी में मामा अपनी भानजी को माल देने नहीं आता। बस लिफाफे में कुछ रुपये भेज देता है जिसे देखकर बुआ की आँखें छलछला आई थीं। उसे सहज संबंधों की चाह रही है और मिली औपचारिकता।

लेखिका ने घर से जुड़ी अनेक समस्याओं के अन्तर्गत आपसी सम्बन्धों को विस्तार से ग्रहण किया है जो भौतिकतावादी युग में निरंतर बढ़ती जा रही है। इससे मुक्ति की कामना है।

6. मालती जोशी की कहानियों के पात्रों के विभिन्न रूप–

मालती जोशी श्रेष्ठ कहानी लेखिका है उनकी अधिकांश कहानियाँ समाज से सम्बन्धित हैं उनमें समाज के लगभग सभी रिशते–नाते सहज रूप से दिखाई दे जाते हैं उनसे सम्बंधित पुरूष, स्त्रियाँ, बच्चे आदि सभी हैं। परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना जाता है। जिनमें विभिन्न आयु वर्गों के अनेक लोगों पात्रों का होना अनिवार्य है।

मालती जोशी संवेदनशील और ममतामयी व्यक्तित्व की स्वामिनी है इसलिए उसने नारी के शोषण के विभिन्न रूप–पति द्वारा सताई गई, भाई के द्वारा प्रताड़ित, बेटे के द्वारा सताई गई, भाई के द्वारा प्रताड़ित, बेटे के द्वारा सताई गई शोषित नारी के अनेक रूप हृदय को बरबस आंदोलित करते हैं। उनकी कहानियों में चित्रित माता–पिता विहीन बच्चे, दहेज के कारण सताई गई नारियाँ, प्रिय के विश्वासघात को झेलती नारियाँ, सन्तान के द्वारा सताई गई नारियाँ सभी का हृदयग्राही चित्रण उनके भावुक, संवेदनशील व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है।

मालती जोशी ने नारी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना अपना कर्त्तव्य समझा है। नारी का किसी भी प्रकार से शोषण होते देख वह चुप नहीं बैठती और अपनी कलम द्वारा उसका विरोध करती है, जैसे ''शादी करके आओ तो सास की सेवा में जुट जाओ उसके बच्चे पालो। वे बड़े हो जाये तो फिर अपनों को आदमी बनाओ। अपने बच्चे पढ़ लिख जाए तो फिर उनकी प्रजा को टांगते फिरो।'' लेखिका ने अपनी दृष्टि केवल नारी पात्रों तक ही सीमित नहीं रखी बल्कि पुरूष पात्रों की घुटन और पीड़ा को भी प्रकट किया है। कौख का दर्द कहानी का किशोर एक ऐसा ही उपेक्षित पात्र है जिसके माता–पिता ने उसे उसकी बुआ की गोद में दे दिया था। वह कहता है, ''उस दिन यह बात क्यों याद नहीं आई जब मुझे एक घर से उखाड़कर दूसरे के आंगन में फैंक दिया था?''

मालती जी ने विधवाओं, माताओं, अनाथ बच्चों, शोषित नारियों के प्रति ममता के भावों को प्रकट किया है। इस प्रकार इनके पात्र विविध समस्याओं से घिरे हैं, उनके निकलने के लिए संघर्ष करते हैं।

7. मालती जोशी के कहानियाँ परिवेश का सही चित्र प्रस्तुत करती हैं।

सफल साहित्यकार अपने परिवेश का प्रभावशाली रूप प्रस्तुत करता है। मालती जोशी ने अपनी कहानियों में परिवेश को पूर्ण रूप से चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ पौराणिक या ऐतिहासिक नहीं हैं बल्कि युगीन परिस्थितियों को प्रकट करने वाली हैं। अतः उनका युग का सही चित्रण हो पाया है। आज के भौतिकतावादी युग में दहेज का बोलबाला है। विवाह के बाद यह सोच ससुराल जाती है कि उसका जीवन सुखमय ढंग से व्यतीत होगा, पर वह नहीं जानती कि उसके साथ कैसा व्यवहार किया जायेगा। 'बकुल, फिर आना' कहानी में माँ–बाप ने बेटी की सुरक्षा के लिए दहेज दिया था। उन्होंने उसे दस तोला सोना और पन्द्रह हजार रुपये नकद दिये थे पर बकुला के ससुराल वालों का पेट न भरा और उसे जला कर मार डाला। उस पर विडम्बना यह है कि कोई अन्य माता–पिता उसी हत्यारे पुरूष के साथ अपनी बेटी की शादी करने को तैयार हो जाते हैं। क्योंकि उनके पास बेटी के विवाह के लिए धन नहीं है। इस युग में न जाने कितनी लड़कियाँ पढ़ी–लिखी होने के बाद भी मन चाहे युवकों से विवाह नहीं कर पाती क्योंकि उनके पास दहेज जुटाने के लिए पैसा नहीं होता। मध्यवर्गीय कन्या के पिता की हताश और बेबसी उनके द्वारा कहे गये शब्दों में देखी जा सकती है, ''कहाँ से लाऊँ डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर। चालीस हजार से उपर तो इन लोगों की बोली शुरू होती है, मुश्किल से यह बारह हजार पर राजी हुए हैं। ''मध्यांतर'' कहानी कामकाजी महिलाओं के मनोविज्ञान पर आधारित है। परिवार और नौकरी का दोहरा दायित्व और पति की अपेक्षा ऐसी सच्चाई है जो समाज में नारी की वास्तविक स्थिति को दर्शाती है। दफ्तर में देर से पहुचने के कारण और चन्द्रवत् काम करते करते वह झल्लाने लगती हैं। यह कहानी हमारे जीवन के इर्द–गिर्द जुड़ी धटनाओं का वास्तविक रूप सामने लाती हैं। यातनाचक्र की प्रेमा का विवाह दहेज के अभाव में नहीं हो पाता और बाद में उसे बाल–बच्चों वाले विधुर के साथ

विवाह करना पड़ता है। आज की अनेक युवतियों को अपने परिवार का पालन पोषण करने के लिए जीवन भर कुवारा रहना पड़ता है और विवशता में नौकरी करनी पड़ती है। आज के परिवेश का चित्रण करते हुए लेखिका ने महिला–शोषण, उनकी मानसिक स्थिति और अकेलेपन का सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। बेमेल विवाह आज के परिवेश की विवश्ता है। लेखिका ने इसी विषय में लिखा है, ''पति से तिरस्कृत नारी की हर जगह दुर्गति होती है– चाहे ससुराल हो, चाहे पीहर हो। वह तो बिना पेंदे की लुटिया है जिधर चाहा लुढ़का दिया।'' 'कन्यादान', 'ममता' तू न गई मौरे मनतै,' 'मानिनी', कलंकिता आदि सभी कहानियों में लेखक ने परिवेश को सुन्दर सजीव ढंग से चित्रित किया है।

'कलक' कहानी में जोशी स्त्री–पुरूष सम्बंधों के अतिरिक्त परिवार में नारी की पीड़ा, हताशा, विवशता और निराशा के चित्र के चित्र को खींचती है। इसमें प्रेम–विवाह की असफलता का चित्रण किया है। 'टूटने से जुड़ने तक' कहानी, परिवार में नारी की असंतोषजनक स्थिति की वास्तविकता चित्रण करती है। माँ द्वारा बेटे की सहायता से पिता के 'अंह' को ठेस लगती है और पत्नी की उपेक्षा करने लगते हैं। पति के सम्मान के लिए पत्नी अपने बेटे के विवाह में सम्मिलित नहीं होती जिससे उसके पिता का हृदय द्रवित हो जाता है। वह अपनी पत्नी से भावात्मक रूप से जुड़ जाते हैं। लेखिका के द्वारा परिवेश को गम्भीरता से परखा गया और फिर उसका सटीक और भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह इनकी कहानियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है।

8. मालती जोशी की कहानियों की संवाद योजना

कहानी में संवाद योजना के द्वारा नाटकीयता का समावेश किया जा सकता है। इससे कहानी में सहज और स्वभाविक रूप आता है पात्रों का चरित्र–चित्रण और घटनाओं में गतिशीलता संवादों के कारण ही आती हैं। श्रीमती जोशी ने संवाद योजना का सुन्दर प्रयोग करते हुए अपनी कहानियों को प्रवाह, सजीवता और कुतूहल की सृष्टि की है। लेखिका की संवाद योजना को निम्नलिखित आधारों पर स्थापित किया जा सकता है।

1. ***संक्षिप्तता*** – मालती जोशी के पात्रों के संवाद सर्वत्र संक्षिप्त हैं। उसके कारण कहानियों में रोचकता और नाटकीयता की सृष्टि हुई हैं शुभकामना में मंत्री के हाथों बिका सदानंद कहता है, ''आजकल कौन नहीं बिकता। हर कहों राजपुरूष अपनी दुकान सजाए बैठे हैं; लोगों का जमीर खरीद रहे हैं, अपना बेच रहे हैं।'' इसी प्राकर 'मोरी रंग दी चुनरिया' में जया की सहेली के द्वारा कहलवाया है, ''ये कैसा रिवाज है? जिस आदमी को इस घर से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, जयां जिसकी देहरी नहीं चढ़ी, जिसके नाम से उसने कभी माँग नहीं भरी, बीस साल से जिसकी शक्ल भी नहीं देखी–उसका मातम आप लोग क्यों कर मना रहे हैं? क्यों उस पर लाद रहे हैं? ''लेखिका ने सहज वाक्यों का प्रयोग किया है जिनमें गहरे भाव छिपे हुए हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त संवाद इतने आकर्षक हैं कि वे पाठक को बांध रखने में पूरी तरह सक्षम हैं।

2. ***स्वाभाविकता*** – जोशी के द्वारा लिखे गये संवाद अति स्वाभाविक हैं। उनमें कहीं भी बनावटीपन दिखाई नहीं देता। सीधे–सीधे शब्दों में पात्र अपनी बात कह देते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने जीवन में बात कह जाता है, नारी शोषण के विरूद्ध वह 'बुआ जी' कहानी में कहती है– ''हाँ बच्चे तो अब उन्हें ही पालने हैं, सारी तकलीफों से उन्हें

ही जूझना है। सारी जिम्मेदारियाँ उन्हें ही पूरी करनी हैं और कल को जब बच्चे बड़े हो जाएंगे, पढ़ लिख जाएंगे तो रिश्तों की जुगाई करने के लिए उन लोगों की शरण जाना पड़ेगा जिन्होंने कभी बात भी नहीं पूछी।''

3. ***सहजता*** – कहानी के संवादों में पात्र के अनुकूल संयम अवश्य रहना चाहिए। संवादों में व्यर्थ के शब्द और वाक्य नहीं जोड़े जाने चाहिए और सरल वाक्यों में ही बातचीत होनी चाहिए लेखिका ने संयमपूर्वक हास्य व्यंग्य को भी कहानियों से दूर नहीं रहने दिया। अनुकूल शब्द योजना का संयमित प्रयोग उन्होंने किया है–

   (क) ''अच्छा हुआ प्रिंस चार्ल्स की शादी हो गई, नहीं तो तुम्हारी सहेली वही बात चलाने को कहती है।''

   (ख) ''तो श्रीमान जी क्या अपने आप को चंकी पाण्डे या आमिर खान की पीढ़ी का समझ रहे थे।''

   (ग) अब तो मैं लाउड स्पीकर पर मुनादी करने से तो रही कि मेरी शादी कर दो।

4. ***सरलता*** – प्रतीकात्मक और आलंकारिक भाषा से कहानी में काव्यत्व का गुण भले ही उत्पन्न हो जाय पर उससे कथा प्रवाह में बाधा अवश्य पड़ती है। श्रीमती जोशी चाहे कवयित्री हैं तो भी उन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे संवादों का प्रयोग कदापि नहीं किया जिनसे कथा के प्रवाह में रूकावट उत्पन्न होती है। 'प्राब्लम चाइल्ड' कहानी में जब आलोक बेटी को लेकर घर पहुंचता है तो उसकी माँ निरूपमा रोती हुई कहती है, ''कहाँ रह गई थी मेरी बच्ची तू? मम्मी को कितना इन्तजार करवाया। मम्मी से रूठ कर गई थी तू। ऐसे भी रूठता है कोई? मम्मी कितना रोई है पता है?'' इस प्रकार मालती जोशी की कहानियों में प्राप्त संवाद कहानी को सहजता, सजीवता और गतिशीलता प्रदान करता है।

9. ''मालती जोशी की कहानियों की भाषा में किन–किन शब्दों का प्रयोग मिलता है?''

साहित्यकार सहज रूप में बोधगम्य भाषा का प्रयोग करता है। इसमें विविध भाषा के प्रचलित शब्द सहज रूप में आ जाते हैं। मालती जोशी की कहानियों की भाषा में ऐसा गुण है कि उनका एक–एक शब्द या वाक्य सार्थक और सशक्त प्रतीत होता है। उनसे पाठक का हृदय आन्दोलित हो उठता है और पात्रों के चरित्र पर तीव्र प्रकाश पड़ता है। जिससे कहानीकार के विचार और अनुभूतियां उनके माध्यम से स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने सहज रूप से बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग अपनी भाषा में किया है। उन्हें देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कहानीकार माना जाता है। इसलिए उनकी भाषा में अरबी–फ़ारसी की शब्दों का प्रायः अभाव है पर सामान्य बोल–चाल में प्रयुक्त उर्दू–शब्दों का प्रयोग अवश्य दिखायी दे जाता है। उन्होंने अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का सहज प्रयोग किया है। जो किसी भी प्रकाश भाषा में अवरोध नहीं बने हैं। भाषा में प्रायः तत्सम्, तद्भव, देशी और विदेश शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(क) ***तत्सम् प्रधान शब्दावली***

   (1) तुमने उसकी सद्भावनाएं भी व्यर्थ कर दीं।

   (2) पीड़ा शायद इस अप्रत्याशित अपमान से ही अधिक थी।

(ख) *तद्भव प्रधान शब्दावली*

(1) ''सपूर्णा'', मैने इस बार खाली कड़कदार आवाज़ में कहा, ''बहुत बोलने लगी है, आजतक।''

(2) तुम सिर्फ मज़बूरी निभाती रही और मैं तुम्हारा एहसान मानकर झेलता रहा।

(ग) *देशज शब्दावली*

(1) अलमारी में देख लो ना, चिल्ला क्यों रहे हो?

(2) आठ दिन के उबाऊ टूर के बाद स्वागत् हो रहा है।

(घ) *विदेशी शब्दावली*

(1) मम्मी, आप लोगों की सिल्वर–वेडिंग हम लोग खूब धूम–धाम से मनाएंगे।

(2) प्लीज़, चूप हो जाइए।

(3) खासकर, दफ्तर का कोई आदमी आ जाता है।

(4) थैंक्यू पाया, थैंक्यू फॉर द ब्यूटीफुल गिफ्ट।

वास्तव में लेखिका ने सहज रूप से वाक्य–संरचना में शब्द योजना की है। उसका प्रयास किसी विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग नहीं था। उनकी शब्द योजना व्यवहारिक है। इसलिए भाषा को आकर्षक रूप मिला है।

10. मालती जोशी की कहानियों की शैली–

कहानी में शैली तत्व का समावेश लेखक अपने व्यक्तित्व के अनुसार करता है। उसका व्यक्तित्व भाषा के माध्यम से कहानी में प्रकट हो जाता है इसलिए हर कहानीकार की कहानियों की शैली कुछ अलग प्रकार की हो जाती है। मालती जोशी सुशिक्षित है। घर–गृहस्थी में व्यस्त रहकर साहित्य सृजन करती रही। उनकी कहानियों में भी घर–परिवार में बोली जाने वाली सामान्य शैली की दर्शन होते हैं।

कहानी में वर्णन और प्रकथन दोनों का प्रयोग किया जाता है। वर्णन की अपेक्षा प्रकथन को अधिक महत्व दिया पर कहानीकार दोनों प्रकार की शक्तियों का होना आवश्यक होता है। वर्णन को प्रभावशाली बनाने के लिए शैली का विशेष महत्व रहता है। जोशी ने इन दोनों के समन्वित प्रयोगों से घटनाओं को प्रवाहमय और गतिशील बनाया है। सामाजिक सम्बंधों और पारिवारिक स्थितियों के कारण इनकी शैली में आत्मीयता का गुण सबसे अधिक है। इन्होंने भावात्मकता का प्रयोग किया है ताकि आपसी सम्बंधों और कोमल मानसिकता को अधिक अच्छे ढंग से प्रकट किया जा सके।

कहानी में संबोधनात्मक और संवादात्मक शैली से पर्याप्त गतिशीलता आ गई है। जब विवरणात्मक रूप में संवाद को स्थान मिल जाता है कहानी को सजीवता मिल जाती है। 'फासले' कहानी में दादी–पोते का वात्सल्यपूर्ण वर्णन इसी प्रकार का है। अमोल दादी से ध्रुव भक्त की कहानी सुन रहा है। और कहानी में बहुत ही तन्मय है। तभी उसकी मम्मी की आवाज़ आती है–

'हनी, इट इज नाइन थर्टी डार्लिंग।'

अमोल दादी की गोद में दुबक गया पर इससे क्या फर्क पड़ता था। मम्मी आंधी की तरह कमरे में दाखिल हो गई थी–

'हनी, से गुडनाईट टू दादी।'
'पहले स्टोरी तो कम्पलीट होने दो।'
'कल संडे है न, मार्निंग में सुन लेगा।'
'दिन में कहानी सुनने से मामा रास्ता भूल जाते हैं।'
'स्टूपिड़ से अटपटांग बातें कौन सिखाता है, तुम्हें?'

दादी की सांस पर भर जैसे थम–सी गई। पर पोता समझदार था। उसने झट से ये इल्जाम पिंटु की दादी के सिर मढ़ दिया। दादी का जिक्र तक नहीं किया।

श्रीमती जोशी की कहानियों में विवरणात्मकता का अभाव है। जिस कारण उनमें सर्वत्र रोचकता बनी रही है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

1. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जीवन और साहित्य परिचय–

जीवन–परिचयः आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध निबन्धकार एवं आलोचक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1864 ई० में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित राय सहाय द्विवेदी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव की पाठशाला में ही हुई। बाद में इन्होंने रायबरेली, उन्नाव तथा मुंबई में शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने संस्कृत, गुजराती, बंगला, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में विशेष योग्यता प्राप्त की। आजीविका के लिए उन्होंने नागपुर, मुम्बई, झाँसी और अजमेर में रेलवे की नौकरी की थी, जिससे बाद में त्याग–पत्र देकर लेखन कार्य में समर्पित हो गए।

सन् 1903 ई० से 1920 ई० तक उन्होंने 'सरस्वती पत्रिका का सम्पादन किया। इस पत्रिका के माध्यम से इन्होंने हिन्दी–साहित्य के विकास तथा प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इन्होंने खड़ी बोली को परिष्कृत और व्याकरण निष्ठ बनाने का कार्य करते हुए इसे काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। 21 दिसम्बर, सन् 1938 ई० को इन्होंने सदा–सदा के लिए आँखें बंद कर ली।

रचनाएँः आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचना संसार अत्यंत विस्तृत है। इन्होंने लगभग 300 निबंध लिखे हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता', हिंदी भाषा की उत्पत्ति, 'विचार–विमर्श', 'अतीत स्मृतियाँ', 'विज्ञानवार्ता', 'अद्‌भुत–अलाप', 'देश भक्ति की बात', 'मुक्त आत्माओं से बातचीत' आदि प्रमुख हैं। इन्होंने 'वेणी सहांर', 'कुमारसंभव', 'रघुवंश', 'गंगालहरी' आदि ग्रन्थों की परिचयात्मक भूमिकाएं भी लिखी हैं जो विशेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्यिक विशेषताएंः हिंदी निबंध जगत में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग प्रवर्तक माने जाते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करते हुए इन्होंने स्वयं तो अनेक निबंध लिखे ही रामचंद्र शुक्ल, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि अनेक लेखकों को हिंदी में निबंध लिखने के लिए प्रेरित किया था। द्विवेदी जी के निबंध–साहित्य की कुछ प्रमुख विशेषताएं उल्लेखनीय हैं–

(1) ***विचारात्मकता*** – द्विवेदी जी के अधिकांश निबंध विचार–प्रधान हैं इसलिए इसमें प्रमुख रूप से बौद्धिक विवेचना है। इस का प्रमुख कारण यह है कि इन निबंधों में कहीं किसी तथ्य की व्याख्या तो कहीं समीक्षा की गई है। 'साहित्य की महत्ता' निबंध में साहित्य का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं कि ''ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

(2) ***अनुभव*** – द्विवेदी जी ने अपने जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव, सुख–दुख आदि भोगे थे। इनके इन्हीं अनुभावों की छाया इनके निबंधों में सर्वत्र दिखाई देती है। जिससे इनके निबंधों में मार्मिकता, चमत्कार तथा उक्ति–वैचित्य दिखायी देता है। 'देशभक्ति की बात' निबंध में लेखक का यह कथन – ''गवर्नमैंट सच कहती है कि ये मुट्ठीभर

अंग्रेजीदाँ सभाओं और कान्फ्रेसों में जो कुछ कहते हैं'' इससे लेखक के अनुभव का ज्ञान होता है कि वह अपने अनुभवों को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है।

(3) ***भावात्मकता*** – द्विवेदी ने भावात्मक निबंधों में कल्पना शक्ति का अद्‌भुत चमत्कार दिखाया है। इस 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णन' निबंध में इनकी कल्पना शक्ति शब्दों के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त हुई है– 'रात अब बहुत थोड़ी रह गयी है। सुबह होने में कुछ ही कसर है। ज़रा सप्तर्षि नाम के तारों को तो देखिए। वे आसमान में लम्बे पड़े हुए हैं।

(4) **वैयक्तिया–** द्विवेदी जी के निबंधों में इनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है वे अपने व्यक्तिगत विचारों को व्यक्त करने में कोई संकोच नहीं करते तथा हर बात स्पष्ट कह देते हैं। इसी प्रकार का निजीपन इनके अन्य निबंधों में भी दिखाई देता है।

(5) **भाषा–शैली** – आचार्य द्विवेदी की भाषा विकासोन्मुख है जो निरंतर शुद्ध, समृद्ध तथा व्याकरण समस्त होती गयी है। इनकी भाषा में तत्सम प्रधान शब्दों के अतिरिक्त उर्दू, अंग्रेजी तथा देशज शब्द भी मिलते हैं। इन्होंने मुहावरों और सूक्तियों का खुलकर प्रयोग किया है। जिस कारण इनकी भाषा में सरलता, वक्रता, प्रभावशीलता आदि का समावेश हो गया है।

अपने निबंधों में द्विवेदी जी ने विषयानुकूल वर्णनात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, विवेचनात्मक, विचारात्मक तथा उद्‌बोधनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। इनकी शैलियों में आचार्यत्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इनकी चिन्तनात्मक शैली में व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक और तार्किक तीनों प्रकार की शैलियों के गुण विद्यमान हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंध संक्षिप्त, मनोरंजन, सरल तथा ज्ञानवर्द्धक हैं। इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा को शुद्ध एवं व्याकरण सम्मत बनाकर एकरूपता प्रदान की है। द्विवेदी जी के निबंधों में भाषा की शुद्धता, सार्थकता, एकरूपता, शब्दों का प्रयोग पड़ता और वाक्यों की सधी हुई प्रणाली तो मिलेगी, पर सूक्ष्म पर्यावेक्षण और विषम विश्लेषण नहीं है। स्वाधीन चिंतन, अनाभिभूत विचार, अछूती भावना जो निबंध को आंतरिक स्वरूप शक्तियां हैं, इनके निबंधों में कम ही मिलती है।

2. 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों ने हिन्दी को नई दिशा दी–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1903 ई० से सन् 1921 ई० तक 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन किया था। इस पत्रिका का सम्पादन करने हुए इन्होंने अनेक समसामयिक विषयों पर लेख लिखे। इन्हें लिखते समय उनकी दृष्टि इस तथ्य की ओर अधिक रहती थी कि उनकी 'सरस्वती' पत्रिका भारतीय तथा विदेशी पत्र–पत्रिकाओं से किसी प्रकार कम न रहे और हिन्दी पाठकों का बौद्धिक स्तर पर उत्तरोत्तर उन्नत होता रहे। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने लगभग तीन सौ निबन्ध लिखे थे। इससे देश में साहित्यिक वातावरण बना है।

उन्होंने न केवल हिन्दी, निबन्ध लेखन को एक नई दिशा दी बल्कि अन्य हिन्दी लेखकों को भी निबन्ध लिखने के लिए प्रेरित भी किया। उन्होंने उन्हें निबन्ध लेखन के विविध विषयों, शैलियों आदि से परिचित कराते हुए अनकी गद्य भाषा का परिष्कार एवं संस्कार करके उनके लिए शुद्ध एवं परितिष्ठित हिन्दी भाषा लिखने का मार्ग भी प्रशस्त किया। उनसे प्रभावित होकर आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि द्विवेदी जी ने सन् 1903 ई० में 'सरस्वती' के सम्पादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय उन्होंने लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात से मानते थे कि कठिन से कठिन विषय भी ऐसे सरल रूप में रख दिया जाय कि साधारण समझ वाले पाठक भी उसे बहुत कुछ समझ जायें। 'सरस्वती' की प्रकाश–किरणों से प्रत्येक लेखक चमत्कृत होता था और सदैव अभ्यासी बना रहता था।''

जब आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन कार्य स्वीकार किया था, तब हिन्दी में अच्छे लेखकों का अभाव था। हिन्दी पाठकों की बहुत बड़ी कमी थी। खड़ी बोली हिन्दी–गद्य का व्यावहारिक एवं व्याकरण का समस्त रूप नहीं था। द्विवेदी जी 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ आने वाली गद्य रचनाओं की भाषा का परिष्कार कर छापते थे। इससे लेखकों को अपनी भाषा सुधारने की प्रेरणा मिलती थी। उनके लिखे हुए निबन्धों को देखकर भी अन्य लेखक अपनी भाषा में सुधार लनाने का प्रयत्न करते थे। भाषा के परिमार्जन द्वारा द्विवेदी जी ने मित्र–बन्धु, पूर्ण सिंह, रामचंद्र शुक्ल, वृन्दावन लाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि को भाषा–शैली का सही मार्ग दिखाया था। जिससे हिन्दी को नई दिशा मिली थी। उनके अपने निबंधों में विषय की विविधता के कारण भी हिन्दी में निबंध साहित्य समृद्ध हुआ और हिन्दी को एक नई दिशा मिली। इनके निबंध साहित्य, जीवन–चरित्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योग–धन्धे, भाषा, व्याकरण, अध्यात्म, राजनीति आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित होते थे। इस प्रकार द्विवेदी के बहुआयामी कथा–चिन्तन से हिन्दी को दिशा मिली है।

3. युग प्रवर्त्तक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों के सुधारवादी दृष्टिकोण–

हिंदी के श्रेष्ठ चर्चित साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी निबन्ध साहित्य तथा हिंदी भाषा को एक नई दिशा प्रदान की है। इस कारण उन्हें युग प्रवर्त्तक साहित्यकार कहते हैं 'सरस्वती' का सम्पादन करते हुए इन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ आने वाले निबंधों की भाषा का परिष्कार करके हिंदी भाषा को नया रूप तथा प्रतिष्ठा प्रदान की थी। इसी प्रकार से इन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उजागर करके उनको सुधारने की भी प्रेरणा दी है। उदाहरण के लिए हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने की प्रेरणा देते हुए वे लिखते है ''सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो, वह रूपवती भिखारिनी की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।'' इसी प्रकार से प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार पर कटाक्ष करते हुए वे लिखते हैं, ''इस म्युनिसिपैलिटी के चेयमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी मैन भी कहने लगे हैं) श्रीमती बूचा शाह है बाप–दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े–लिखे आप राम का नाम ही है। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए कि अपनी कारगुजारी गवर्नमैण्ट को दिखाकर आप राय बहादुर बन जाएँ, खुशामदियों से आठ चौंसठ घड़ी घिरे रहें। म्युनिसिपैलिटी का काम चाहे चले न चले, आपकी बला से।'' ये साहित्यकारों के प्रेरणा धार रहे हैं।

आचार्य द्विवेदी ने अपने निबंधों द्वारा एक ओर साहित्य–समीक्षा की नई पद्धति का श्री गणेश किया था, तो दूसरी ओर विविध विषयों के परिचयात्मक विवरणों के द्वारा पाठकों के ज्ञान वर्द्धन में भी सहायता प्रदान की थी। वे कठिन–से–कठिन विषय पर इतनी सरलता के साथ लेखनी चलाते थे कि साधारण बुद्धि वाला पाठक भी इस विषय को सहजता से समझ लेता था। हिन्दी को व्याकरण सम्मत बना कर उन्होंने भाषा के सुधार किया तथा अपने निबंधों के द्वारा सम्पादकों, समालोचकों, लेखकों, प्रशासकों आदि को सही मार्ग दिखाकर उन्हें उनके कर्त्तव्य का बोध कराया है।

हिन्दी साहित्य को द्विवेदी जी को सबसे महत्त्वपूर्ण देन यही है कि उन्होंने हिंदी भाषा को शुद्ध एवं परिष्कृत रूप देकर भाषा के क्षेत्र में व्यवस्था दी तथा अपने निबंधों में सुधारवादी दृष्टिकोणों द्वारा भावी पीढ़ी के निबंधकारों का मार्ग प्रशस्त किया। इसी कारण कह सकते हैं कि द्विवेदी जी अथक परिश्रमी, कर्मठ एवं आदर्श सम्पादक, भाषा संस्कारक तथा युग प्रवर्त्तक निबंधकार थे। उनके निबंधों से हिंदी साहित्य समृद्ध हुआ है।

4. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में राष्ट्रीय चेतना–

द्विवेदी युग में देश पर अंग्रेजी शासन था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की निरंकुशता से मुक्ति पाने के लिए साहित्यकार अतीत का गौरव गान करते हुए देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार कर रहे थे। अतीत–गौरव की तुलना करते हुए वर्तमान की दयनीय दशा का चित्रण किया जा रहा था। अभावों में राजनीतक परतंत्रता के अभिशाप सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक पतन आदि का वर्णन लेखक कर रहे थे। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर वे स्वदेशी आन्दोलन, अहिंसात्मक सत्याग्रह को दिशा देने के लिए मुखर स्वर में सामने थे।

आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती के सम्पादन के समय राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करने वाले अनेक लेख लिखे। जिनमें प्रमुख देशभक्ति की बात स्वाधीनता, इंग्लैण्ड के शाही खानदान का खर्च आदि प्रमुख हैं 'देशभक्ति की बात' निबंध में राष्ट्रीय चेतना जगाते हुए वे लिखते हैं, ''गवर्नमैंट सच कहती है कि ये मुट्ठी भर अग्रंजीदाँ, सभाओं और कान्फ्रेंसों में जो कुछ कहते हैं, सब अपनी तरफ से कहते हैं। इनका वक्तव्य सर्वसाधारण का वक्तव्य नहीं है इसी से इनकी बातों का बहुत कम असर गवर्नमैंट पर पड़ता है। यदि ये लोग जनता के सच्चे प्रतिनिधि होना चाहते हैं तो इन्हें प्रजा की बोली बोलनी चाहिए। ..... शक्ति संचय के लिए इनकी बड़ी जरूरत है क्योंकि शक्तिमान ही की जीत होती है। शक्तिहीन की नहीं। उन्होंने अंग्रेजी की दोहरी नीति पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा है, ''नये पास हुए गवर्नमैंट ऑफ इण्डिया एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कार्यकर्त्ता कौंसिल में अब कम से कम तीन हिन्दुस्तानी मेम्बर रहा करेंगे। जमा–खर्च के सालाना खर्च पर वे अपनी राय देकर उसमें कतरबयौत करने के लिए भी कह सकते हैं हाँ उनकी कतर–ब्यौत की राय यदि देश–रक्षा या प्रजा के अमन–चैन आदि में विध्न पड़ने की संभावना होगी तो गवर्नर–जनरल प्रजा के प्रतिनिधियों की बात मान लेने को मजबूर न होगें।'' उन्होंने देशवासियों को राष्ट्र के प्रति सचेत करते हुए लिखा है, ''कूपमण्डूक भारत तुम कब तक अंधकार में पड़े रहोगे? प्रकाश में आने के लिए तुम्हारे हृदय में क्या कभी भी सदिच्छा जागृत नहीं होती? पंखहीन पक्षी की तरह क्यों तुम्हें अपने पिंजरे से बाहर आने का साहस नहीं होता? क्या तुम्हें अपने पुराने दिनों की याद नहीं आती।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी के निबंधों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर अत्यंत सशक्त रूप में मुखरित हुआ हैं इससे जन सामान्य में स्वाभिमान जागा है। देश के सम्मान के लिए उत्साह उमड़ा है और राष्ट्रीयता का जोश जागा है।

5. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में वर्णित समस्याएँ–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य निबंधकार हैं। उन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे हैं। उनके निबंधों में अनेक समसामयिक समस्याओं पर विचार किया गया है। गंभीर चिन्तन से समस्या–समाधान के मार्ग खुले हैं

(1) ***भाषा की समस्या*** – द्विवेदी जी ने तत्कालीन साहित्यिक जगत में व्याप्त भाषा की समस्या पर गम्भीरता से चिन्तन किया है। उन्होंने भाषा को व्यवस्थित तथा व्याकरण सम्मत रूप प्रदान करने के लिए अनेक लेखों की रचनाओं को स्वयं शुद्ध करके 'सरस्वती' में प्रकाशित किया तथा अपनी लेखनी से उन्हें शुद्ध तथा व्याकरण सम्मत हिन्दी लिखने के लिए प्रेरित किया।

(2) ***रचना शैली की समस्या*** – द्विवेदी जी तत्कालीन गद्य साहित्य में प्रचलित कठिन तथा क्लिष्ट रचना शैली को अव्यवहारिक बताते हुए साहित्यकारों को सरल गद्य शैली में लिखने के लिए प्रेरित किया। उनका कथन है कि ''लेखकों को सरल और सुबोध भाषा में अपना वक्तव्य लिखना चाहिए। उन्हें वागाडम्बर द्वारा पाठकों पर यह प्रकट करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए कि वे कोई बड़ी ही गम्भीर और बड़ी ही अलौकिक बात कर रहे हैं।'' सरल अभिव्यंजना शैली की वे समर्थक थे।

(3) **सम्पादन की समस्या–** लेखक ने हिंदी पत्र–पत्रिकाओं का अच्छा सम्पादन न होने की समस्या को गम्भीरता से लेते हुए इसका मूल कारण सम्पादकों द्वारा सम्पादन कार्य का समुचित ज्ञान और अनुभव न प्राप्त होना माना है। उनके अनुसार– ''हिन्दी भाषा में सम्पादन कार्य करने वालों की कुशलता की तो इतनी अधिक उन्नति हो रही है कि जिसका माप बड़े–से–बड़े गज, लट्ठे और जरीब से भी नहीं हो सकती। इसका कारण यह जान पड़ता है कि हिन्दी के सम्पादकों को सम्पादन कार्य की योग्यता प्राप्त करने की मुतलक जरूरत नहीं।'' अपने युग में पत्र–पत्रिकाओं की स्तरहीनता का कारण वे सम्पादकों की अल्पेज्ञता और अनुभवहीनता ही मानते हैं।

(4) **पराधीनता की समस्या–** द्विवेदी जी देश की पराधीनता के प्रति विशेष चिंतित थे। वे भारत वासियों को गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिला करके उन्हें स्वतंत्र होने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं ''कूपमण्डूक भारत तुम कब तक अंधकार में पड़े रहोगे? प्रकाश में अनि के लिए तुम्हारे हृदय में क्या कभी सदिच्छा ही नहीं जागृत हुई। पक्षहीन पक्षी की तरह क्यों तुम्हें अपने पिंजरे से बाहर निकलने का साहस नहीं होता? क्या तुम्हें अपने पुराने दिनों की कभी याद नहीं आती? वे आत्मविश्वास जगाकर जनमानस को आगे लाना चाह रहे थे। वे प्रेरणा सूत्र बने थे।

इसके अतिरिक्त लेखक ने देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, साम्प्रदायिकता, कविता के स्वरूप, साहित्यिक चोरी आदि समस्याओं पर भी अपने निबंधों में प्रकाश डाला है। वास्तव में आचार्य जी सुधारवादी निबंधकार थे। इसलिए सुधार की उत्तम दृष्टि रही है।

6. 'साहित्य की महत्ता' निबंध का परिचय–

आचार्य महावीर द्विवेदी ने साहित्य से सम्बन्धित अनेक निबंध लिखे हैं। उनकी मान्यता है कि अभिव्यक्ति का सुख सबसे बड़ा सुख है। मनुष्य तो क्या ईश्वर भी इस सुख से वंचित नहीं रह सकता। जब ब्रह्मा को अपना अकेलापन अखरने लगा तो वे भी सृष्टि के निर्माण में जुट गये। आपने मनोभावों को सृष्टि के निर्माण द्वारा उन्होंने व्यक्त किया। मनुष्य ने जब से पृथ्वी पर जन्म लिया तभी से अपने मनोभावों को व्यक्त करने का रास्ता खोजना प्रारम्भ कर दिया। भाषा के निर्माण की प्रक्रिया जब से शुरू हुई तभी से मनुष्य ने प्राचीन लोकगाथाएँ, लोकगीत, कथा, कविताएं साहित्य के रूप में सामने आने लगे।

हिन्दी साहित्य कोश के रचियताओं ने सहित में यत् प्रत्यय लगाकर साहित्य शब्द की व्युत्पति मानी। साहित्य का अर्थ उन्होंने लगाया है 'साथ होना' शब्द और अर्थ के साथ होने के भाव को ही उन्होंने साहित्य कहा। यह व्याख्या व्याकरण की दृष्टि से अनुकूल है पर साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट नहीं करती। सभी रचनाओं को साहित्य नहीं कहा जा सकता। कई विद्वानों ने स+हित = सहित के साथ अर्थ करते हुए हितकारी रचना को साहित्य कहा है लेकिन हितकारी रचनाएं साहित्य हों यह आवश्यक नहीं है।

आचार्य द्विवेदी ने अपने निबंध 'साहित्य की महत्ता' में साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए विस्तार से लिखा है – ''ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी, यदि कोई भाषा अपना निज साहित्य नहीं रखती, तो वह रूपवती भिखारिन की तरह आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसको श्री सम्पन्नता, उसकी मान मर्यादा उसके साहित्य पर ही अवलम्बित है। जाति विशेष के उत्कर्ष–अपकर्ष का, उसके उच्च–नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों का, सामाजिक संगठन का, उसके ऐतिहासिक घटनाचक्रों का तथा राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब यदि देखने को मिल सकता है तो उनके साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक असभ्यता और सभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता, सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य रूपी आइने में ही मिल सकती है।''

सच है, साहित्य का मानवजीवन में बहुत महत्व है। साहित्य में समाज के विभिन्न रूपों के दर्शन हो जाते हैं। साहित्यकार को साहित्य रचना की प्रेरणा भी समाज से ही मिलती है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते साहित्यकार समाज की उपेक्षा नहीं कर पाता। इस कारण समाज में घटने वाली प्रत्येक क्रिया–प्रतिक्रिया की गूंज हमें साहित्य में सुनाई देती है। साहित्य का लक्ष्य मानवीय भावनाओं का परिष्कार कर मानव में एकता और आदर्श समाज की स्थापना करना होता है। इसलिए किसी भी जाति अथवा राष्ट्र का साहित्य उसकी आशाओं, आकांक्षों, लक्ष्यों आदि को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम माना जाता है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'साहित्य की महत्ता' निबंध में गम्भीर भावों की आकर्षण अभिव्यक्ति है जो समाज को दिशा प्रदान करती है, गतिशील बनाती है।

7. ''कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता'' निबन्ध का परिचय–

हिंदी चर्चित निबंधकार आचार्य महाविर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्यिक, चरित्र प्रधान, वैज्ञानिक, अध्यात्मिक, गवेष्णात्मक आदि अनेक प्रकार के निबंध लिखे हैं। इन निबंधों के द्वारा जहाँ उन्होंने हिन्दी निबंध साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने साहित्य के कुछ उपेक्षित पात्रों पर भी लिखे हैं। 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' उनका इसी प्रकार का निबंध है जिसमें उन्होंने राम के अनुज लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के सम्बंध में कवियों द्वारा उपेक्षा किए जाने पर चिंता व्यक्त की गई है।

द्विवेदी जी ने लिखा है कि उर्मिला ने अपने जीवन में अनूठा त्याग किया है। विवाह के पश्चात् जब वह अयोध्या आती है तो राम को बनवास मिलने पर लक्ष्मण ने भ्रातृस्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उन्होंने राजपाट छोड़कर अपना शरीर रामचंद्र को अर्पण किया, वह बहुत बड़ी अनुकरणीय बात थी। उर्मिला ने उससे भी बढ़कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपने प्राण से प्यारे अपने पति लक्ष्मण को राम–जानकी के लिए दे दिया और यह आत्मसुखोत्मर्ग उसने तब

किया, जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने सांसारिक सुख के सब से अच्छे अंश से हाथ धो डाला।

वे इस बात पर भी दुःख व्यक्त करते हैं कि वाल्मीकि ने रामायण में और तुलसीदास ने राम चरित मानस में भी उर्मिला को काई महत्व नहीं दिया। वन गमन के समय मावस में तुलसी दास ने बताया है कि राम के साथ वन जाने से पूर्व लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा से मिल आते हैं परन्तु उन्होंने लक्ष्मण का उर्मिला से मिलकर आने का कोई वर्णन नहीं किया है। केवल राम–सीता के विवाह के अवसर पर लक्ष्मण के साथ उर्मिला के विवाह का वर्णन किया गया है। अपने युग के साहित्यकारों को नए–नए विषयों पर साहित्य रचना की प्रेरणा देने वाले द्विवेदी जी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य की रचना की थी और उसकी नायिका उर्मिला को बनाकर उसकी व्यथा को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की थी। इस प्रकार द्विवेदी जी के इस निबंध ने मैथिलीशरण गुप्त को महाकवि बना दिया निश्चय ही यह निबंध एक मार्मिक संदर्भ को हृदयस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने वाली रचना है।

8. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में व्याकरणिक सुधार का परिचय–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्त्तक निबंधकार हैं। उन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे हैं, सरस्वती पत्रिका का सम्पादन किया, लेखक मण्डल बनाया तथा भाषा–सुधार किया। हिन्दी भाषा को शुद्ध और व्याकरण सम्मत बनाने में इन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उस युग के साहित्यकार जिस हिन्दी भाषा का योगदान करते थे उसमें भिन्न–भिन्न प्रकृति के शब्दों, पदों तथा वाक्यों के स्वच्छंद एवं अबाध प्रयोगों में न तो शब्दों की एकरूपता ही थी और न उसकी उचित व्यवस्था ही भाषा के स्वरूप की विविधता विकारग्रस्त हो चली थी। ऐसी स्थिति में आचार्य द्विवेदी ने व्याकरण आधार पर दूसरों की भाषा सुधार करने से पहले स्वयं अपनी भाषा का सुधार किया। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में तत्कालीन साहित्यसेवियों की कृत्तियों में मिलने वाली अधिकांश भाषागत त्रुटियाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। 'अमृतलहारी', 'भमिनीविलास', बेकन–विचार–रत्नावली आदि में लेखन–त्रुटियों एवं व्याकरण की भूलें इस सीमा तक है कि वे भाषा की दृष्टि से विचारणीय हो गई है। स्वयं द्विवेदी जी ने ही 'अ' के स्थान पर 'र' और 'उ' तथा 'अ' के स्थान पर 'बा' का गलत प्रयोग कई बार किया है। यथाः 'विकालत' (शुद्ध रूप 'वकालत'): 'समुझा' (शुद्ध रूप 'समझा'); 'हुवा' (शुद्ध रूप 'हुआ')।

'इ' अथवा 'इ' के प्रयोग की गलतियाँ भी हुई : 'हरिणीयों' (शुद्ध रूप 'हरिणियों') 'केली' (शुद्ध रूप 'केलि'); 'कीशोरी' (शुद्ध रूप 'किशोरी'); 'ध्वनी' (शुद्ध रूप 'ध्वनि'); 'ज्योंहि' (शुद्ध रूप 'ज्योंही')।

इसी तरह 'उ' एवं 'ऊ' के प्रयोग में भी त्रुटियां द्विवेदी जी की प्रारम्भिक रचनाओं में मिलती हैः 'तूझे' (शुद्ध रूप 'तुझे'): 'कारूणिक' (शुद्ध रूप 'कारूणिक'): 'उपर' (शुद्ध रूप 'ऊपर); 'प्रतिकुल' (शुद्ध रूप 'प्रतिकूल') करे, रहे, जानो, वीरो, तो के, जिन्हें, से आदि के स्थान पर करें, रहै, जानौ, वीरौ, तौ, कै, जिन्हें, सै, जैसे प्रयोग ब्रजभाषा के प्रभाववश करने की प्रवृत्ति उन दिनों सामान्य थी। द्विवेदी जी भी ऐसे प्रयोगों से बचे हुए नहीं थे। साथ ही, उन्होंने 'ऐ' की जगह 'या' तथा 'ओ' की जगह 'वो' का प्रयोग भी गलत किया है 'यकदम' (शुद्ध रूप 'एकदम'); 'यम० ए०' (शुद्ध रूप 'एम० ए०); 'लाव' (शुद्ध रूप 'लाओ')।

गद्य लेखन के आरम्भिक काल में अनुस्वारों के प्रति द्विवेदी जी का विशेष मोह परिलक्षित होता है। कई अनुनासिक प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलते हैं; 'करनें वाला' (शुद्ध रूप 'करने वाला'); 'कालिमां' (शुद्ध रूप 'कालिमा'); 'पूंछ–तांछ (शुद्ध रूप 'पूछताछ') आदि।

इसी तरह 'पी' के स्थान पर 'ई' और 'या' के स्थान पर 'आ' का अशुद्ध प्रयोग भी उन्होंने किया हैः 'निदई' (शुद्ध रूप 'निर्दयी'); 'दुखदाई' (शुद्ध रूप 'दुःखदायी') 'दिआ' (शुद्ध रूप 'दिया')।

'र' और रेफ के प्रयोग में भी स्वच्छंदता दीखती हैः 'निरमाण' (शुद्ध रूप 'निर्माण'), 'पूराण' (शुद्ध रूप 'पूर्ण'): 'मनोर्थ' (शुद्ध रूप 'मनोरथ'): 'अन्तकर्ण' (शुद्ध रूप 'अन्तःकरण')।

व्याकरण – सम्बंधी अराजकता भी उस युग में सर्वत्र व्याप्त थी। व्याकरण की दृष्टि से कई अशुद्ध प्रयोग द्विवेदी जी की रचनाओं में मिलते हैं; 'चार्तुयता' (शुद्ध रूप 'चातुर्य'): 'सौंदर्यता' (शुद्ध रूप 'सौंदर्य'): 'अपना हितसाधन में' (शुद्ध रूप 'अपने हितसाधान में'; 'चेष्टा न करना चाहिए' (शुद्ध रूप 'चेष्टा न करनी चाहिए')

उन्होंने व्याकरण के विभिन्न अंगों लिंग, सन्धि, प्रत्यय–प्रयोग, वाक्य विन्यास में भी शुद्धिकरण किया गया है। द्विवेदी जी ने अपने साथ समकालीन लेखकों को भी व्याकरण गत अशुद्धियाँ दूर कर शुद्ध भाषा लिखने के लिए प्रोत्साहित किया था। निश्चय ही द्विवेदी ने व्याकरण सम्मत रूप अपनाने के प्रेरक सफल आंदोलन शुरू किया है।

9. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों की भाषा–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली हिन्दी को साहित्यिक भाषा की मान्यता प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी अपनी भाषा विकासोन्मुखी रही है। इनकी भाषा उत्तरोत्तर शुद्ध, समृद्ध तथा व्याकरण–सम्मत होती गयी है। इनकी प्रारम्भिक भाषा में हमें, उसके सौंदर्यता, अपना निन्दा, आदि शब्द प्रयोग प्राप्त होते हैं। इन्होंने संस्कृत के साथ–साथ उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे घनिष्ठता, मनोहारिणी, परिहार, अपौरूष, मालूम, सिफारिश, दरकार, आबोहवा, मिस्टर, कौंसिल, मेडिकल, इण्डिया आदि, किन्तु उत्तरोत्तर सुधार हुआ है। भाषा को संवारने के लिए इन्होंने सूक्तियों एवं मुहावरों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है जैसे– आँख का तारा, दिल का टुकड़ा, नहि सत्यात्परो धर्मः, आधा तीतर आधा बटेर, मुँह में राम बगल में छूरा, मरता क्या न करता आदि। इससे इनकी भाषा में सरसता, या स्वरता प्रवाहमयता, आदि गुणों का समावेश हो गया है।

आचार्य द्विवेदी ने आलोचनात्मक निबन्धों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का, विचारात्मक निबंधों में साहित्यिक हिंदी का और भाव प्रधान निबंधों में लायात्मक् काव्यात्मक हिंदी का प्रयोग किया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, परन्तु वे अपने निबन्धों में संस्कृत के साथ–साथ उर्दू–फारसी तथा अंग्रेजी के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना सर्वथा उचित समझते थे। द्विवेदी जी 'विचार और विमर्श' नामक रचना में लिखते हैं– ''हिंदी में यदि कुछ लिखना हो तो ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे केवल हिन्दी जानने वाले भी सहज ही समझ जाएँ।''

द्विवेदी की भाषा में अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु सरलतम भाषा को प्रस्तुति कहना इनका आदर्श है। वाक्य विन्यास संक्षिप्त, सरल, सुबोध है। इनकी भाषा में सरलता, बोधगम्यता और व्यावहारिक रूप है। इनकी भाषा में कभी–कभी काव्यमय गद्य भी मिलते हैं। अनुप्रास की छटा, कोमलकान्त, शब्दावली की माला, रूपक–उपमा प्रयोग इनके गद्य की विशेषताएँ हैं ऐसे गद्य का नमूना हमें उनके 'प्रभात' शीर्षक निबन्ध में देखने को मिलता है।

'वह ठहरा रसिक उसने सोचा, यह इतनी बड़ी रात यों ही कैसे कटेगी, लाओ खिली हुई नवीन कुमुदनियों (कोका बेलियों) के साथ हँसी–मजाक ही करें।' प्रातःकालीन पूर्व दिशा रूपी स्त्री का चित्रण अत्यन्त प्रभावी बन पड़ा है– 'मद्यपान करने से स्त्रियों के मुख पर लालिमा आ जाती है। इस दशा में में मदमाती स्त्रियों को स्वाभाविक लज्जा जाती रहती है और वे अपने मुख से घूंघट हटा लेती है। अरूणोदय हो जाने के कारण पूर्व दिग्रूपिणी स्त्री का मुख इस समय मदमाती स्त्री के मुख के सदृश्य लाल हो रहा है।' निश्चय ही यह मनभावन चित्र है।

स्पष्ट है द्विवेदी के निबन्धों में भाषा के वैविध्य दर्शन होते हैं। उन्होंने स्वयं शुद्ध सुन्दर भाषा का प्रयोग कर औरों को भी ऐसी हो भाषा के प्रयोग की प्रेरणा दी है।

10. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की निबन्ध शैली–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध में विभिन्न शैलियों का प्रयोग हैं वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत इनके भौगोलिक एवं ऐतिहासिक स्थलों से सम्बन्धित, आत्मकथात्मक चरितात्मक, यात्रा विवरण आदि से सम्बन्धित निबन्ध आते हैं। भावात्मक शैली में इन्होंने विचार प्रधान निबन्ध लिखे हैं। जिनमें 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णन' विशेष उल्लेखनीय है। इनके अधिकांश आलोचनात्मक निबन्ध चिन्तनात्मक शैली में लिखे गए हैं। इन्होंने इन शैलियों के अतिरिक्त विवेचनात्मक, परिचयात्मक, व्यंग्यात्मक आदि विभिन्न शैलियों को अपनाया है। इनकी शैली में आचार्यत्व की छाप दिखाई देती है। ये निबन्धकारों के प्रेरणाधार हैं।

द्विवेदी ने शैली की दृष्टि से भावात्मक कहे जाने वाले निबन्धों में मधुमती कवि कल्पना या गम्भीर विचार–मस्तिष्क का सहारा लिये बिना ही वर्ण्य विषय के प्रति अपने भावों को अबाध गति से व्यक्त किया है। इन निबंधों में उच्च कोटि के कवित्व और प्रेरक तत्व के अभाव में भी इनमें काव्यात्मक और विचारों की अभिव्यक्ति एक साथ हुई है। ऐसी रमणीय शैली पर्याप्त रूप में मिलती है– ''कविता –कामिनी कमनीय नगर में कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है, जिसमें पथ–रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं– ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है। ईंट और पत्थर की इमारत पर जल का असर पड़ता है, आंधी–तूफान से उसे हानि पहुंचती है, बिजली गिरने से वह नष्ट–भ्रष्ट हो सकती है, पर इस अलौकिक भवन पर इनमें से किसी का कुछ भी जोर नहीं चलता।''

द्विवेदी जी के विचारात्मक निबन्धों में चिन्तन शैली का आकर्षक रूप है। आलोचनात्मक एवं तार्किक शैली के निबन्धों का द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। इस कोटि के निबन्धों के उपयुक्त गम्भीर एवं तार्किक वातावरण द्विवेदी जी ने निर्मित किया, जिसकी भित्ति पर परवर्ती काल में अनेक लेखकों ने ज्ञान–गम्भीर और तर्क प्रधान निबन्धों की रचना की है। द्विवेदी जी ने निबन्धों का प्रस्तुतीकरण विचारात्मक अथवा चिन्तन प्रधान शैली में किया है। चिन्तन आधार पर श्रेष्ठ निबन्ध सामने आए हैं।

आचार्य द्विवेदी के निबन्धों की शैली में पर्याप्त वैविघ्य है। यह वैविध्य उनके गम्भीर चिन्तन, विश्लेषण, प्रस्तुतीकरण और अभिव्यक्ति पर आधारित है। निश्चय ही इनके निबन्ध शैली के दृष्टि से अनुकरणीय, सफल और प्ररेक सिद्ध होते हैं।

सरदार पूर्ण सिंह

1. सरदार पूर्ण सिंह के जीवन और साहित्य का परिचय–

जीवन–परिचयः चर्चित निबंधकार सरदार पूर्ण सिंह का जन्म पाकिस्तान के एक्टाबाद जिले के सलहड़ नामक गाँव में सन् 1881 ई० में हुआ था। इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् टोकियो से रसायन शास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने लाहौर में अध्यापन कार्य किया है इसी से इन्हें अध्यापक पूर्ण सिंह के नाम से भी जाना जाता है। मार्च सन् 1931 ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

रचनाएँः सरदार पूर्ण सिंह अंग्रेजी, हिन्दी, और पंजाबी तीनों भाषाओं में रचनाएँ लिखते रहे हैं। इन्होंने सच्ची वीरता, कन्यादान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, तथा अमेरिका का मस्तयोगी वाल्टह्विटमैन नामक निबंध लिखे हैं

साहित्यिक विशेषताएँः सरदार पूर्ण सिंह ने मुख्यरूप से भावात्मक निबन्ध ही लिखे हैं। इनके अधिकांश निबन्ध सामाजिक जीवन की विभिन्न गतिविधियों से परिपूर्ण हैं। इनके निबन्धों में मानवतावाद के प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनके निबन्धों की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(1) ***विचारात्मक*** **–** इनके निबंध भावात्मक हैं, साथ ही उनमें विचारों की भी प्रधानता है। ये विचारवान लेखक हैं। यही इनका चिन्तन हैं इसलिए वह 'सच्ची वीरता' में कहता है कि ''प्यारे अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटो और इसी दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने आपको न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे–धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणु जमा करो।

इस प्रकार से लेखक भारतवर्ष में प्रचलित कन्यादान की प्रथा को उचित, न्यायसंगत तथा उपयोग मानते हुए पाश्चात्य विवाह–पद्धति को भारतीयों के लिए अहितकर मानता है। भारतीय साहित्य से अपने विचारों की पुष्टि के लिए शंकराचार्य, ध्रुव, गुरू नानक देव, ईसा मसीह, पैगम्बर अदि के उदाहरण समुचित रूप से प्रस्तुत करते हुए भी वह समाज की शिथिल रूढ़ियों को तोड़ देने का विचार प्रभावी रूप में प्रस्तुत करता है। इनके निबन्धों पर महापुरूषों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उनके विचार निबन्ध भी सरल और रोचक हैं।

(2) ***भावात्मकता*** **–** सरदार पूर्ण सिंह एक अत्यन्त भावुक निबन्धकार थे। यही कारण है कि उनके निबन्धों में भाव–धारा का प्रवाह इतनी सरलता, सजीवता और सरसता के साथ हुआ है। 'पवित्रता' निबंध में वातावरण का चित्रण करता हुआ लिखता है, मीलों लम्बी बर्फ पड़ी है, इसके चरणों में नदियाँ किलोल कर रही है। इसके सिर पर एक दो एक–एक मील लम्बे, पिघली बर्फ के कुण्ड भी हैं। उपर नीला आकाश झलक रहा है, पूर्णिमा का चाँद छिटक रहा है। ठण्डक, शान्ति और सत्वगुन बरस रहा है।''

इनके निबंधों में अद्भुत चमत्कार की सृष्टि होती है। मजदूरी और प्रेम निबंध अवलोकनीय हैं– ''समाज का पालन करने वाली दूध की धारा जब मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कट मन और मित्रतापूर्ण नेत्रों से निकलकर बहती है तब वही जगत के सुख

के खेतों को हरा भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल लगाती है।'' इससे निबंध की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध होती है।

(3) ***कल्पनाशीलता*** – सरदार पूर्ण सिंह ने अपने भावों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कल्पना लोक में विचरण करते हुए अनेक सजीव चित्र उपस्थित किए है। जिससे इनके निबंध और भी मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली बन गए हैं। 'सच्ची वीरता' निबंध में सच्चे वीर की कल्पना करते हुए लिखते हैं, ''प्रकृति अनेक मनोहर माथे पर राज तिलक लगाती है हमारे असली राजा ये ही साधु पुरूष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चाँदी में जर्क वर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजाओं को तो जो गरीब किसानों की कमाई पर पिण्डो परजीवी होते हैं, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रखा है।''

(4) ***वैयक्तिकता*** – सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों में अनेक व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है यही कारण है कि उनका लेखन उसके व्यक्तित्व को उजागर करता चलता है। 'मजदूरी और प्रेम' निबंध में लेखक लिखता है कि, ''जिस मिट्टी के घड़ों को कंधों पर उठाकर मीलों दूर से मेरी प्रेम मग्न–प्रियत्तमा ठण्डा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूं तो, अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत का पान करता हूं।''

(5) ***शिल्प विधान*** – सरदार पूर्ण सिंह की भाषा सहज सरल, स्वाभाविक है। इनकी भाषा में लोकप्रचलित मुहावरे, लोकोक्ति व सूक्तियां भी मिलती है। इनकी शैली सरल, आडम्बरहीन एवं प्रभावपूर्व है।

सरदार पूर्ण सिंह के निबंध सामाजिक सन्दर्भों से युक्त होने के कारण विभिन्न आदर्शों की स्थापना में सिद्ध होते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा व्यक्त करते हुए सबको जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि की भावना से ऊपर उठने का संदेश देकर सच्ची वीरता की भावना उत्पन्न करने की प्रेरणा इनके निबंधों में मिलती है। विषयानुकूल भाषा उनके निबंध–साहित्य की विशेषता है। निश्चय ही सरदार पूर्ण सिंह हिंदी के सफल निबंधकार हैं।

2. सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों का संक्षिप्त परिचय–

रसायन शास्त्री होते हुए भी, सरदार पूर्ण सिंह अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत आदि के विद्वान थे। हिंदी में इनके द्वारा रचित केवल छः निबंध –सच्ची वीरता' 'कन्यादान', 'पवित्रता' 'आचरण की सभ्यता, 'मजदूरी और प्रेम', अमेरिका का मस्त जोगी 'वाल्ट हिव्टमैन' प्राप्त होते हैं। इन निबंधों को प्रभात शास्त्री ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पुस्तकाकार रूप में 'सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध' के शीर्षक से प्रकाशित किया है। 'सच्ची वीरता' निबंध में लेखक ने सच्चे वीर के गुणों का निरूपण करते हुए उनके मन की गम्भीरता, हृदय की विशालता, उदारता, विशालता; धीरता, स्वतन्त्रता, सात्विकता, शालीनता, सच्चरित्रता, कर्मठता, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि का उल्लेख किया है। 'कन्यादान' निबंध नयनों की गंगा, यूरोप में गृहस्थों को बेचैनी, सच्ची स्वतंत्रता, अथि–आदर्श के भग्नावशिष्ट अंश और भारत में कन्यादान की रीति नामक पंच उपशीर्षकों में विभक्त हैं। पवित्रता निबंध आठ उपशीर्षकों–ब्रह्मकन्ति पवित्रता का स्वरूप आजकल के उपदेश दिये जा रहे पवित्रता के साधनों पर एक साधारण दृष्टि, त्याग वैराग्य और इनके अनर्थ, ब्रह्मचारी का उल्टा उपदेश, दान, तप और ज्ञान में विभाजित है। लेखक का कथन है कि मनुष्य जब सच्चे अर्थों में मनुष्य बन जाता है तभी वह पवित्र बनता है। 'आचरण

की सभ्यता' निबंध में लेखक ने विधा, कला, कविता, साहित्य, धन और राजस्व से भी अधिक शुद्ध आचरण को महत्त्व दिया। उनका कहना है कि मनुष्य में नम्रता, दया, प्रेम, उदारता, आदि गुणों का होना आवश्यक है। 'मजदूरी और प्रेम' निबंध आठ उपशीर्षकों हल चलाने वाले का जीवन, गडरिये का जीवन, मजदूर की मजदूरी, प्रेम–मजदूरी, मजदूरी और कला, मजदूरी और फकीरी, समाज का पालन करने वाली दूध की धारा तथा पश्चिमी सभ्यता के रूपों में प्रस्तुत किया है। लेखक जड़ मशीनों की पूजा छोड़कर सचेतन मजदूरों को गले लगाने की बात कहता है। इसी से मानव का कल्याण और समाज समृद्ध होगा। निबंधों में लेखक ने भावात्मक शब्द चित्र प्रस्तुत करते हुए मानव को ब्रह्मनिष्ठ बनने की प्रेरणा दी है । इनके निबंधों में प्रेरक भाव गंभीरता है।

3. 'मजदूरी और प्रेम' निबंध में निहित संदेश

मजदूरी और प्रेम सरदार पूर्ण सिंह का एक प्रसिद्ध निबंध है जिसमें निरंतर कर्म करते रहने की प्रेरणा दी गई है। यह प्रेम प्रेरक निबंध है।

इस निबंध में सर्वप्रथम लेखक ने हल चालने वाले किसान के जीवन को प्रस्तुत करते हुए उसे स्वभाव से साधु, त्यागी एवं तपस्वी बतलाया है। खेत उसकी यज्ञशाला है और वह अपने जीवन को तपाते हुए अपनी मेहनत के कणों को ही फसल के रूप में उगाता है। खेती ही उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते–पत्ते, फूल एवं फल–फल में बिखरा हुआ है। खेती की हरियाली ही उसकी खुशी है।

लेखक ने गडरिये के पवित्र जीवन का निरूपण करते हुए लिखा है कि किस तरह वह खुले आकाश में बैठा ऊन कातता रहता है और उनकी भेड़ें चरती रहती हैं। उसकी आँखों में प्रेम की लाली छाई रहती है और प्रकृति के स्वच्छ वातावरण में जीवन व्यतीत करता हुआ सदैव स्वस्थ रहता है। वह खुली प्रकृति में जीवन–यापन करता है। उसके बच्चे भी अत्यंत शुद्ध हृदय वाले हैं। लेखक ने 'मजदूर की मजदूरी' का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि जो मजदूर कठिन परिश्रम करके सारे दिन काम करता है, उसे हम उसके परिश्रम के अनुकूल मजदूरी नहीं देते। यदि कोई अनाथ एवं विधवा स्त्री सारी रात बैठकर किसी कमीज को सीती है और सीते–सीते थक जाती है किंतु, पैसों के लोभ में सोती नहीं, अपितु उसे सी कर ही चैन की सांस लेती है, तो उसके इस अटूट परिश्रम की मजदूरी भला थोड़े पैसों से कैसे चुकाई जा सकती है? वास्तव में ऐसा परिश्रम प्रार्थना, संध्या या नमाज से कम नहीं है। मनुष्य के हाथ से बनी हुई वस्तुओं में निश्चय ही उसकी प्रेममय पवित्र आत्मा निवास करती है। हाथ से जो परिश्रम किया जाता है, उसमें एक अद्‌भुत रस होता है, जीवन रहता है उसके हृदय का प्रेम रहता है, मन की पवित्रता रहती है, आभा एवं कान्ति रहती है। 'मजदूरी और कला' का निरूपण करते हुए लेखक ने मशीनों के प्रयोग की भर्त्सना की है और उन्हें मजदूरी की मजदूरी छीनने वाली बताया है। लेखक तो मशीनों के स्थान पर मजदूरी के हाथ से होने वाले काम को महत्व देता है, क्योंकि मशीने निकम्मा और अकर्मण्य बना देती है। हाथ से काम करने से मनुष्य सदैव परिश्रमी, उद्योग एवं पवित्र रहता है। मजदूरी और फकीरी का वर्णन करते हुए लेखक ने इन्हें मानव के विकास के लिए परमावश्यक बतालया है। बिना परिश्रमी के फकीरी व्यर्थ है और बुद्धि शिथिल पड़ जाती है। अतः किसी को भी भीख माँगना उचित नहीं, अपितु परिश्रम करके खाना चाहिए। 'समाज का पालन करने वाली दूध की धारा' का वर्णन करते हुए लेखक ने परिश्रम एवं हाथ से काम करने की प्रवृत्ति एक ऐसी पवित्र दूध की धारा बताया जो मानव के हृदय को पवित्र बनाती हुई इसे सच्चे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। 'पश्चिम

सभ्यता के एक नये आदर्श' का वर्णन करते हुए लेखक ने पाश्चात्य देशों में उस नये मोड़ की ओर संकेत किया है, जिसके फलस्वरूप पश्चिम में अब लोग मशीन की अपेक्षा मजदूरी को महत्त्व देने लगे हैं। मशीनों के कारण पूंजीपति पनपा है और मजदूर दरिद्र हुआ है। अन्त में लेखक यही सलाह देता है कि जड़ मशीनों की पूजा छोड़कर सचेतन मजदूरों को गले लगाना चाहिए उन्हें महत्व देना चाहिए, क्योंकि इसी से मानव का कल्याण होगा और समाज समृद्ध होगा, खुशहाल होगा।

4. 'आचरण की सभ्यता' में मनुष्य के किन–किन गुणों की ओर संकेत किया गया है?

पूर्ण सिंह ने इस निबंध में विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन, और राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को महत्व दिया है। इसके लिए लेखक ने नम्रता, दया, प्रेम और उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम और धर्म से सारे जगत का कल्याण होता है। सभी व्यक्तियों को सुख, शांति और आनंद की प्राप्ति होती है। वे शान्त एवं मौन रहकर जगत की भलाई में लगे रहते हैं। सच्चे आचरण का प्रभाव सदैव मानव हृदयों पर पड़ता है। जो पुजारी मुल्ला या पादरी सच्चे आचरण वाला होता है, उसकी बातें सभी के हृदयों को प्रभावित करती हैं। लेखक ने गरीब पहाड़ी किसान और शिकारी राजा के उदाहरण द्वारा सच्चे आचरण का रूप स्पष्ट किया है कि किस तरह वह किसान अपने पवित्र आचरण द्वारा शिकारी के दूषित हृदय को बदल देता है। इस तरह पवित्रता और अपवित्रता दोनों से ही आचरण का निर्माण होता है। भले–बुरे विचार आचारण को बनाने में सहायक होते हैं। बाह्य जगत के व्यापार सदैव अन्तरात्मा को प्रभावित किया करते हैं। और उन प्रभावों से ही आचरण का निर्माण होता है। अच्छे–अच्छे धार्मिकों, महात्माओं एवं ऋषियों की बातें तभी हमारे अन्तःकरण को स्पर्श करती हैं, जब हम उनके से आचरण करने लगते हैं। कोई भी धर्म–सम्प्रदाय आचरण हीन व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता और आचरण वाले व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता और आचरणवाले व्यक्तियों के लिए सभी धर्म सम्प्रदाय कल्याकारी होते हैं। लेखक ने इसी कारण आचरण के विकास को जीवन का परम उद्देश्य बतलाया है। आचरण के विकास के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सामग्री के जुटाने पर बल दिया है। निष्कपट एवं सतत परिश्रमी किसान को अच्छे आचरण वाला माना है। लेखक का स्पष्ट विचार है कि केवल धर्म किसी जाति को उन्नत नहीं बनाता, अपितु कठोर जीवन, परिश्रम, खोज एवं सतत् प्रयत्न किसी जाति को उन्नत बनाते हैं। साथ ही संसार में सतत् परिश्रम ही आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। कभी अकर्मण्य एवं आलसी आचारण की सभ्यता को प्राप्त नहीं कर पाते। आचरण की प्राप्ति केवल स्वप्न देखने से नहीं होती, अपितु लगातार परिश्रम करने से होती है। धर्म–पुस्तकों से कुछ नहीं होता और न आडम्बरों से शुद्ध आचरण की प्राप्ति होती है। इसलिए पहले प्राकृतिक सभ्यता प्राप्त करो, प्राकृतिक सभ्यता से मानसिक सभ्यता आयेगी और मानसिक सभ्यता के आते ही आचरण की सभ्यता प्राप्त होगी। इस आचरण की सभ्यता के प्राप्त होते ही शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी संकट समाप्त हो जायेंगे। द्वेष–विद्रोह, ऊँच–नीच की भावना आदि का भेद समाप्त हो जाएगा, मानवतावाद की स्थापना होगी। सर्वत्र प्रेम और एकता का अखण्ड राज्य स्थापित हो जाएगा।

5. 'नयनों की गंगा' में भारतीय परम्परा का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

अध्यापक पूर्ण सिंह ने 'नयनों की गंगा' निबन्ध में भारत वर्ष में प्रचलित कन्यादान की रीति का अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। जिसमें विवाह की पद्धति, बारात का आगमन, यज्ञ अग्नि

के चारों ओर घूमकर वर–कन्या की भाँवर की प्रथा, विदा की करूण बेला आदि का निरूपण करते हुए भारतीय कन्यादान पद्धति की गरिमामयी प्रस्तुति है। जिसमें भारतीय परम्परा का मोहक चित्रण और प्रेरक रंग है।

'नयनों की गंगा' निबंध में पूर्णसिंह ने मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक भावों की अभिव्यक्ति की है। कुछ विद्वान तो 'नयनों की गंगा' को इनका स्वतन्त्र निबंध ही मानने लगे थे, जब कि यह 'कन्यादान' निबन्ध का एक अंश मात्र है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'नयनों की गंगा' के अन्तर्गत लेखक ने अपना हृदय उड़ेल दिया है। आचार्य पदमसिंह शर्मा ने लिखा ''सरस्वती में उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ था, जिस का शीर्षक 'कन्यादान' था और जिसका दूसरा नाम नयनों की गंगा है इस लेख की उस समय धूम मच गई थी। यह लेख सचमुच नयनों की गंगा है। इसे पढ़कर पाषाण हृदय भी पिघल उठते हैं। इस विषय का ऐसा लेख हिन्दी में आज तक दूसरा नहीं देखा गया।'' लेखक का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि 'नयनों की गंगा', से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य जीवन को आग और बर्फ से नया जन्म होता है। प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए इस नयन–नीर के रूप में मसीहा भेजा है। लेखक ने सर्व साधारण के नयनों से बहने वाले उन प्रेमाश्रुओं का निरूपण किया है, जिसके बहने से अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। ये प्रेम अश्रु, सभी कला निपुण पुरूषों के चरणों में गंगा की तरह बहा करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का विधाता ने प्रेमाश्रु प्रदान किये हैं, परन्तु उन प्रेमाश्रुओं का अत्यधिक महत्व है। जो कन्यादान के समय एक पिता अपनी पुत्री का आलिंगन करके बहाया करता है। कन्यादान की प्रथा विश्व में भिन्न–भिन्न रूपों में प्रचलित हैं। भारत में माता–पिता योग्य वर के हाथों में अपनी कन्या सौंपते हैं और कन्या यज्ञाग्नि की परिक्रमा करके विवाह के पवित्र–बन्धन में बंधकर अपने पति को अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। पाश्चात्य देश में कन्या चुपके–चुपके किसी युवक के प्रेम में लीन होती है और उसे योग्य समझकर फिर उसके साथ विवाह कर लेती है। वहाँ पर विवाह एक ठेकेदारी है। इसलिए कन्या यदि यह देखती है कि उसका गृहस्थ जीवन सुखमय नहीं है, तो वह अपने पति का परित्याग भी कर देती है। कुछ लोग कहते हैं कि यूरोप में कन्यादान नहीं होता, किन्तु ऐसा नहीं है। वहाँ पहले कन्या अपने को दान करती है और फिर गिरजे में जाकर माता–पिता या अन्य कोई सम्बन्धी फूलों से सुसज्जित कन्या का उसके प्रेमवर को दान करता है।

इस प्रकार लेखक ने 'नयनों की गंगा' में कन्यादान के समय बहने वाले आँसुओं को नयनों की गंगा कहकर मार्मिक चित्रण किया है।

6. वाल्ट हिटमैन से सरदार पूर्णसिंह के व्यक्तित्व की तुलना कीजिए–

पूर्ण सिंह ने इस निबंध में वाल्ट हिटमैन का एक भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है, जिसे पढ़कर एक गत्यात्मक जीवन आँखों के सामने चित्रपट की तरह गतिमान हो उठता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो वाल्ट हिटमैन हमारी आँखों के सामने चलता–फिरता व्यक्ति विद्यमान है। यह नाटकीय शैली में लिखा अनुपम एवं अद्वितीय निबंध है। जिसमें धवल केशधारी वृद्ध वाल्ट हिटमैन के शारीरिक गठन, वेश–भूषा, लोक–व्यवहार, आचरण आदि का सजीव निरूपण किया गया है। यह भावात्मक संस्मरण एवं अलौकिक दृश्य उपस्थित करता है, जिसमें हमें उस योगी की मस्त हँसी एवं खिलखिलाहट स्पष्ट सुनाई देती है, उसके नेत्रों के संकेत स्पष्ट होते हैं। उसके बहते हुए आंसू साफ प्रतीत होते हैं। उनकी सौन्दर्य–दृष्टि का हमें बोध होता है। उसके लिए प्रत्येक वस्तु सुंदर है। उसमें जंगल के जोगी एवं अमेरिका के स्वतंत्र एवं मस्त कवि के भी दर्शन किये जा सकते हैं। इतना ही नहीं, यहां उसके काव्य में विद्यमान चर–अचर एवं

नर–नारी को दमकते हुए तारों की तरह देख सकते हैं। उसके 'आनंद–काव्य' की वे पंक्तियाँ भी सुनी जा सकती है, जिनमें कवि हिटमैन ने आनंदभरी, रस–भरी और दिलभरी कविता प्रस्तुत है। उसकी यह कविता रागभरी, अन्नभरी, फलभरी और पुष्पभरी है। इसमें चराचर जगत् की पवित्रता भरी हुई है। यह एक में अनेक तथा अनेक में एक का साक्षात्कार कराती हुई मानव को हिटमैन की तरह ही ब्रह्मनिष्ठ बनने की प्रेरणा प्रदान करती है।

वाल्ट हिटमैन के समान सरदार पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व भी भावुक तथा संवेदनशील है। वे भी प्रकृति प्रेमी तथा अपनी संस्कृति के उपासक हैं। इनकी रचनाओं में भी वाल्ट में समान जनकल्याण की भावना का मनमोहक रंग है। मनुष्य को श्रेष्ठ बनने की प्रेरणा देती है। लेखक की यह मान्यता है कि पूर्वजों का उदास व्यक्तित्व हमारे हृदय में सात्विक गुणों का संचार करता है। वाल्ट के आचरण के अनुसार ही है। इस प्रकार दो महान लेखक मानमूल्यों को विकसित करने की भूमिका में सामने आते हैं।

7. 'सरदार पूर्ण सिंह के निबन्धों में भावात्मकता का सरस निर्वाह हुआ है।'

सरदार पूर्ण सिंह भावात्मक निबन्धकार हैं। इसलिए उनमें विचारों की धारा निरंतर प्रवाह होना स्वाभाविक है। इनके निबन्धों में लेखक के चिन्तन, मनन एवं व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है, जिसमें सच्ची वीरता के प्रति अमित श्रद्धा है। वह भारतीय कन्यादान पद्धति को उत्तम समझता है। निबन्धों में सच्चे आचरण को भारत में देखने की तीव्र चाहत विद्यमान है। उनमें प्रेम–मजदूरी के महत्व को विश्व में फैलाने की प्रबल आकांक्षा भरी हुई है। वह त्योग, पवित्रता, फक्कड़पन और परोपकार से परिपूर्ण है। वह मुर्दा प्रकृति के भी सजीव बनाने की शक्ति रखती है। त्याग, तपस्या एवं सच्ची वीरता का प्रेमी अपने देशवासियों को सम्बोधन करता हुआ पुकार उठा है कि ''प्यारे, अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटो और इसी दिखावटी और बनावटी जीवन को चंचलता में अपने आप को न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे–धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणु को जमा करो।'' लेखक समाज को मानव मूल्यों के प्रति गंभीरता से प्रेरित करता है, ''जिन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी समय जाया न हो। इसलिए बाहर की सतह को छोड़कर जीवन की अन्दर की तहों में घुस जाओ, तब नये रंग खुलेंगे। नफरत और द्वैत दृष्टि छोड़ो, रोना छूट जायेगा। प्रेम और आनन्द से काम लो शान्ति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जायेंगे। जीवन के तत्व का अनुभव करके चुप हो जाओ, धीरे–धीरे गम्भीर हो जाओगे।''

सरदार पूर्ण सिंह ने 'कन्यादान' निबन्ध में बेटी की विदाई के समय माता–पिता के नयनों से बहने वाली गंगा का वर्णन अत्यन्त भावात्मक शैली में किया है। इसे पढ़कर कठोर से कठोर व्यक्ति के नयन भी आँसुओं की गंगा से नहा उठता है। उस ने भावुकता में बहकर अपनी गहन अनुभूति को ऐसे मनोरम और चित्ताकर्षक रूप में चित्र अंकित किए हैं कि पाठक वहाँ पहुंच सब कुछ भूल जाता है। प्रस्तुत है एक किसान का यह भावात्मक चित्र ''भोले–भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य और चन्द्रमा छन–छन कर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बेमुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूं, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है।''

सरदार पूर्ण सिंह के अधिकांश निबन्धों में गंभीर भावात्मकता है। हृदय से निकली भाव गंगा पाठक–श्रोता को प्रबलता से प्रभावित करती है। यह ही इनके निबन्धों की विशेषता है।

8. सरदार पूर्ण सिंह के निबन्धों में मानवीय संवेदना और लोक चेतना का सुन्दर समन्वय हुआ है।

सरदार पूर्ण सिंह एक सहृदय चर्चित निबन्धकार हैं इनके निबन्धों में मानवीय संवेदना और लोक चेतना को विभिन्न स्तरों पर सुन्दर समन्वय होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि इनके निबन्धों में अनूठी संवेदनाशीलता है।

सरदार पूर्ण सिंह ने 'मजदूरी और प्रेम' निबंध में मानवीय संवदेना के संदर्भ में लोक चेतना का आकर्षक रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक भेड़–बकरी पालक गडरिये के संवेदनात्मक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है, जो घर विहीन है खुले आसामन के नीचे विचरण करता रहता है। प्रकृति के आंगन में इधर–उधर घूमता है वह हृदय से उदार, निष्कपट, और पूरा सहज है। भेड़ों के साथ बहुत लगाव है उसके मन में ईश्वर के प्रति अनूठी भक्ति है। वह कर्म का पुजारी है मजदूरी और प्रेम से जीवन बिताता है वह एक आकर्षक जीवन जीता है।

निबन्धकार सरदार पूर्ण सिंह ने किसान के विषय में भी विस्तृत विचार व्यक्त किया है। किसान बेताज किन्तु खुशियों का बादशाह है, गायों का सेवक है समाज का संरक्षक है वह खेतों को अपना मंदिर और खेती के कर्म को अपनी पूजा समझता है। इसमें उसके सरल, सहज, और आध्यात्मिक जीवन की संवदेनशीलता उभरती है।

'सच्ची वीरता' निबंध में मानवीय संवेदना और लोक चेतना का आकर्षक रूप सामने आता है। इस निबंध वीरता, जोश, उमंग आदि के दर्शन होते हैं जिसमें देवी शक्ति का आभास होता है। वीरता में पवित्र हृदय और आदर्श प्रेम का रंग होता है। इसमें विलक्षण, आनंद की प्राप्ति होती है, जो पूरी तरह मानवीय संवेदना से भरी होने का आभास देती है। सच्ची वीरता निश्चय ही लोक चेतना को दिशा और गति प्रदान करती है।

'कन्यादान' में बहने वाली नयनों की पावन गंगा मानवीय संवेदना को जगाकर लोक चेतना के विकास का समन्वित रूप प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार भाव प्रधान निबन्धों के रचयिता सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों के विश्लेषण से स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि इनके निबंधों में मानवीय संवेदना और लोक चेतना का आकर्षक एवं अनुकरणीय समन्वय है।

9. सरदार पूर्ण सिंह के निबन्ध की भाषा

सरदार पूर्ण सिंह हिन्दी के चर्चित निबंधकार हैं। उन्हें हिन्दी के साथ संस्कृत, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त था। विविध भाषाओं के विद्वान होने के कारण इनके निबंधों में इन भाषाओं का प्रभाव यन्त्र–तन्त्र अवश्य दिखाई देता है। भाव प्रधान निबंधों में संस्कृत निष्ठ भाषा उभर आई है। उन्होंने यन्त्र–तन्त्र संस्कृत के सूत्रों या सूक्ति वाक्यों का सहज प्रयोग किया है; जैसे –''अहं ब्रह्ममास्मि''। कहीं–कहीं पर अंग्रेजी के वाक्य भी उभर आए हैं; जैसे "We shall beat the world with the tips of our fingers."

विभिन्न भाषाओं के शब्दों का बहुरंगी मणि–माल इनके निबंधों की शोभा के रूप में सामने आया है जैसे– प्रेमाश्रु, परीक्षा, श्रम, अजीब, गुलाम, बेजान, हीरो, मोटर आदि।

सरदार पूर्ण सिंह की भाषा की सहजता और स्वाभाविकता उनके छोटे–छोटे वाक्यों से अनुकूल विकास प्राप्त कर सकी है। छोटे–छोटे वाक्य अर्थ गम्भीरता और संप्रेषणीयता की अनूठी विशेषताओं से युक्त हैं। जैसे –''वीर पुरूष का दिल सबका दिल हो जाता है। उसका मन

सबका मन हो जाता है। उसके ख्याल सबके ख्याल हो जाते हैं। उसके संकल्प सबके संकल्प हो जाते हैं। उसका बल सबका बल हो जाता है। वह सबका और सब उसके हो जाते हैं।''

सरदार पूर्ण सिंह की भाषा भावानुकूल सरल अथवा साहित्यिक है। उसमें मुहावरे और कहावतों का आकर्षक प्रयोग मिलता है। 'आँखों का तारा', 'आँखों में धूल झोंकना, कान का कच्चा, दर–दर भटकना, चिकनी चुपड़ी बातें मुहावरों के साथ जिस डाल पर बैठे उसी को कुल्हाड़ी से काटना, ऊँची दुकान फीका पकवान आदि कहावतों के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। इनसे भाषा में आकर्षक रूप आया है तो भावों में प्रभावोत्पादक रूप विकसित हुआ है।

प्रश्नवाचक, सम्बोधनात्मक शैली, से भावाभिव्यक्ति अधिक प्रभावी हो गई है। भाषा की चित्रमयता और बिम्बविधान उनके निबंधों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। एक किसान का चित्रण प्रस्तुत वाक्य में सजीव हो उठा है – ''नंगे सिर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कंबली कंधे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये गायों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज ..... खेतों का माली जा रहा है।'' यह भाषायी प्रखरता उनके निबंध को गतिशील और जीवंत बनाती है।

इस विवेचन से सुस्पष्ट होता है कि सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों को भाषा स्वाभाविक, साहित्यिक और अनुकूल है। श्रेष्ठ संप्रेणीयता इनकी निबंध भाषा की प्रमुख विशेषता है।

10. सरदार पूर्ण सिंह के निबन्धों की शैली

हिन्दी के भावात्मक निबन्धकारों में सरदार पूर्ण सिंह का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। इनके निबंधों की शैली में पर्याप्त विविधता के दर्शन होते हैं। इनकी निबंध शैली में लक्षणिक प्रयोग, चमत्कारिक रूप और अर्थ–गंभीर प्रयोग विशेष रूप में प्रभावी हुए हैं।

निबंध में भावात्मक चमत्कारिकता उसके स्वरूप को उत्कर्ष प्रदान करती है। यह चमत्कारिक रूप शब्दों या अलंकारों से संभावित होता है। इनके निबंधों में अलंकारिक चमत्कार विशेष रूप में उल्लेखनीय है, ''वह देवी तो यहाँ संसार रूपी सिंह पर सवारी करती है। वह अपने प्रेम–सागर की लहरों में सदा लहराती है।'' यहाँ पर 'सिंह की सवारी करना', 'प्रेमसागर की लहरों में लहराना' मुहावरों के चमत्कार से भाषा को चमत्कारिक रूप और शैली में प्रभावोत्पादक विकास हुआ है। इसी प्राकर 'मीठी वायु' दर्शनानन्द से चूर हो मारे खुशी के लोटती–पोटती नाचते चली जा रही है।' यहाँ पर आनंद से चूर होना और खुशी से लोटना मुहावरों के आकर्षक प्रयोग के साथ 'लोटती, ओटती, लड़खड़ाती नाचती आदि' क्रियाओं के लगातार चमत्कारिक रूप में प्रयोग से परिगणन शैली के साथ चमत्कारिक शैली का प्रयोग सामने आता है।

सरदार पूर्ण सिंह के निबन्धों में भावों की प्रबलता के साथ यंत्र–तंत्र उभरी व्यंग्य शैली में सुधार की विशेष भागीमा प्रकट होती है। निबंधकार सहज चिन्तन के साथ सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाता है जिससे व्यंग्य प्रधान शैली का उपयोगी रूप सामने आया है। यथा ''जिस तरह रिश्वत देकर धन एकत्रित होता है उसी तरह ईश्वर को भी रिश्वत देकर स्वर्ग की मनसा हो रही है'' 'आजकल भारत वर्ष में परोपकार करने का बुखार फैल गया है। इस प्रकार चुटीले व्यंग्य से निबंध में गम्भीरता वादी मनोरंजन उभरता है।''

सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों की शैली धारा मानी गयी है जिसमें भाव संदर्भों की प्रधानता है इस शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों की सम्पन्नता दिखाई देती है। कन्यादान निबंध में

नयनों से बहने वाली पावन गंगा के संदर्भ में प्रसाद और माधुर्य गुण विकसित शैली का रूप सामने आता है; तथा ''धन्य है वे नैन की धारा में कभी स्नान किया है वही जानता है कि इस स्नान से मन के मलिन भाव किस तरह बह जाते हैं, अन्तःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है।''

प्रस्तुत विवेचन से इनके निबंधों की धारा शैली में चमत्कारिकता, व्यंग्य प्रधानता, भावात्मकता और प्रसाद माधुर्य और ओजगुण सम्पन्न रूप सामने आता है।